अथ

आयुर्वेद का इतिहास

(पाश्चात्य कल्पनाओं का निराकरणात्मक तथा कालक्रम-प्रदर्शक)

प्रथम भाग

लेखक

कविराज सूरमचन्द्र बी० ए० वैद्यवाचस्पति

प्रकाशक

कविराज सूरमचन्द्र

१२४/१ लोअर बाजार

शिमला

प्रकाशक

कविराज सूरमचन्द्र
१२४/१ लोअर बाज़ार
शिमला

प्रथमबार : सं० २००६
मूल्य
आठ रुपया

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली ६

विषय-सूची

भूमिका

संवत् १९९४ में दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर से मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् तीन वर्ष पर्यन्त इतस्ततः संस्कृत तथा आयुर्वेद का अध्ययन करता रहा। इस अन्तर में गाजियाबाद में श्री आनन्द स्वामी जी के सहवास से आयुर्वेद में अभिरुचि होगई। फलतः संवत् १९९७ में लाहौर पहुँच दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज में प्रविष्ट हुआ। बी० ए० के दिनों से लाहौर के प्रसिद्ध अनुसन्धान-कर्ता तथा संस्कृत-विद्या के असाधारण ज्ञाता श्री पण्डित भगवद्दत्तजी से समय-समय पर सत्संग करता था। संवत् २००१ से उनका संपर्क अधिक बढ़ा। उन्होंने आयुर्वेद का इतिहास लिखने की प्रेरणा की। तब से इस विषय की थोड़ी-थोड़ी सामग्री एकत्रित करता रहा। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने अपने वर्षों के अध्ययन की फलरूपी सामग्री अत्यन्त उदारता से मुझे सौंप दी।

उन्हीं दिनों आयुर्वेद के स्तम्भ वैद्यवर श्री यादवजी ने मुम्बई से ४।१२।४४ को पण्डित भगवद्दत्त जी को एक पत्र लिखा।

उसमें लिखा था—

आपकी सेवा में पचास रुपये मनिआर्डर से आयुर्वेद के इतिहास के मुद्रण कार्य में सहायतार्थ भेजे थे। इति।

पण्डित जी को अन्य स्थानों से भी इस काम के लिए पत्र आते थे। मैं इस काम में लगा रहा। सन् १९४७ में भारत के विभाजन के कारण मेरी सब सम्पत्ति और मेरे सब ग्रन्थ पाकिस्तान में नष्ट हो गए। सन् १९४७ के अक्तूबर में मैं शिमला में स्थिर हो गया। वहीं सन् १९४८ के अन्त से मैंने इस कार्य को पुनः आरम्भ किया।

मेरे से पूर्व के एतद्विषयक लेखक—इस महान् काम के लिए अपने से पूर्व के एतद्विषयक लेखकों के ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक था। अतः उनके ग्रन्थों का मैंने पाठ किया। उनमें से प्रधान लेखकों और उनकी कृतियों के नाम निम्नलिखित हैं -

१. फ्रांस के डा० पामिर कारडियर के लेख, युर्नल एशियाटीक में, सन् १९०१ से आगे।

२. जर्मनी के डा० जूलिग्रस जालि का ग्रन्थ Medicin, सन् १६०१ ।
३. बंगाल के श्री प्रफुल्लचन्द्र रे की हिस्टरी ग्राफ हिन्दू कैमिस्टरी, सन् १६०२ में प्रकाशित ।
४. इंगलैंड के डा० रुडल्फ हुर्नलि का लेख—सुश्रुत के टीकाकार, रायल एशियाटिक सो० के जर्नल सन् १६०६ में मुद्रित । तथा ग्रास्टिग्रालोजि ग्रन्थ, सन् १६०७ में मुद्रित ।
५. बंगाली विद्वान् श्री गिरिन्द्रनाथ जी की हिस्टरी ग्राफ इण्डियन मैडिसिन, तीन भागों में, सन् १६२३, १६२६, तथा १६२६ ।
६. नेपाल देशस्थ श्री राजगुरु हेमराज जी लिखित, काश्यप संहिता का उपोद्‌घात, सन् १६३८ ।
७. महाराष्ट्र वैद्य श्री हरिशास्त्री पराडकर लिखित, ग्रष्टांग-हृदय की भूमिका, सन् १६३६ ।
८. पंजाबान्तर्गत लाहौर-निवासी श्री हरिदत्त शास्त्री लिखित चरक-संहिता, प्रथम भाग, द्वितीयावृत्ति की भूमिका, सन् १६४० ।
९. मुम्बई-निवासी, श्री यादव शर्मा जी की चरकसंहिता, तृतीयावृत्ति की भूमिका, सन् १६४१ ।
१०. बंगदेशीय श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य जी का लेख—New Light on Vaidyaka Literature, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग ३३, जून १६४७ में मुद्रित।
११. मुम्बई-स्थित श्री महेन्द्रनाथ कृत ग्रायुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास, सन् १६४८ में प्रकाशित ।
१२. जर्मन-देशीय, ग्रमरीका-यूनाइटिड स्टेट्स-विनिर्गत श्री हैनरी ग्रार० सिम्मर कृत—Hindu Medicine, बाल्टीमोर, सन् १६४८।
१३. फ्रांस देशवासी श्री जीन फिलिग्रोजट कृत, LA Doctrine Classique De LA Medicine Indienne, सन् १६४६।
१४. श्री रघुवीर शरण वैद्य कृत, धन्वन्तरि परिचय, सन् १६५० ।

इन में से कारडियर (१), जालि (२) हुर्नलि (४) ग्रौर सिम्मर (१२) लगभग एक ही प्रकार के ऐतिहासिक तिथि-क्रम को मानते हैं। हुर्नलि का यत्न बहुत ग्रधिक है, पर तिथि-क्रम के समझने में वह सर्वथा ग्रसफल रहा है। श्री प्रफुल्लचन्द्र रे (३) जी का यत्न बहुत स्तुत्य है, पर उनका स्वीकृत तिथि-क्रम भी प्रायः ग्रशुद्ध है। श्री गिरिन्द्रनाथ (५) जी का परिश्रम महान् हैं। यदि वे वेद के सामान्य-नामों का इतिहास के नामों से सम्मिश्रण न करते, तो

उनके परिणाम सत्य के अधिक निकट होते। अगला यत्न श्री राजगुरु हेमराज (६) जी का है। राजगुरु जी ने असाधारण पाण्डित्य का परिचय दिया है। उन के प्रायः निष्कर्ष सत्य और युक्त हैं। उनकी सेवा महती है। पराड़कर (७) जी का संक्षिप्त लेख भी उपादेय है। उन्हों ने आयुर्वेद के अष्टाङ्ग-विभाग के ग्रंथकारों का जो वर्गीकरण लिखा है, वह यदि सप्रमाण होता तो वास्तविक महत्त्व का होता। वाग्भट-विषयक उन का मत सर्वथा प्रशस्त है। पण्डित हरिदत्त (८) जी का छोटा लेख भी उपयोगी है। श्री यादव शर्मा (६) जी की आयुर्वेद के प्रति सेवा का वर्णन असम्भव है। उन्होंने अनेक पाश्चात्य-कल्पित मतों का सहेतुक खण्डन किया है। श्री दिनेशचन्द्र (१०) जी का लेख अति उपादेय है, पर वाग्भट आदि के तिथि-क्रम-विषय में उनके विचार निराधार हैं। श्री महेन्द्रनाथ (११) जी का ग्रंथ अच्छा संग्रह है। श्री सिम्मर (१२) पाश्चात्यों में अकेला व्यक्ति है, जिस ने आयुर्वेद के अध्ययन में सहानुभूति प्रकट की है, पर माईथोलोजि के भूत ने उस के सारे परिश्रम पर मट्टी डाल दी है। श्री फिलिओजट (१३) जी ने अभी परिश्रम आरम्भ किया है। यदि वे पाश्चात्य पक्षपातों को त्याग सकें, तो उन के भविष्य के लेख मूल्यवान हो सकते हैं। श्री रघुवीर शरण (१४) जी का ग्रंथ बहुत श्रेष्ठ है। उन्हों ने यथेष्ट सामग्री पण्डित भगवद्दत्त जी के ग्रन्थों से ली है, पर दो-एक स्थानों पर उनका लेख सर्वथा मौलिक है। काल-क्रम का स्पष्ट चित्र वे नहीं खींच सके। धन्वन्तरि अनेक थे, उनका यह पक्ष बहुत अस्पष्ट रहा है। अस्तु।

इतने महानुभावों के ग्रन्थों का पर्यालोचन, उपलब्ध आयुर्वेदीय सम्पूर्ण ग्रन्थों का पाठ तथा पूर्ववर्ती लेखकों की भूलों का प्रदर्शन करके यह इतिहास लिखा गया है। आर्य इतिहास सम्मत काल-क्रम का स्पष्ट चित्र इसमें प्रथमवार उपस्थित होता है।

इस तिथि-क्रम की आधारशिला श्री पण्डित भगवद्दत्त जी के वैदिक वाङ्मय का इतिहास, तीन भाग, भारतवर्ष का इतिहास तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास प्रथम भाग हैं। पक्षपाती पाश्चात्य लेखकों के विचारों से आवृत वर्तमान अन्धकारमय भारत में ये ग्रन्थ हैं, जो यथार्थ भारतीय इतिहास को स्पष्ट कर रहे हैं। मेरे अध्ययन ने उनका तथ्य मेरे मन पर अधिकाधिक प्रकाशित कर दिया है।

आयुर्वेद एक महान विज्ञान है। ऐलोपैथी आदि अधूरे-विज्ञान इसके समीप भी नहीं पहुंच पाए। आयुर्वेद की इस महत्ता को मैं इस इतिहास में प्रकट नहीं कर सका। स्थानाभाव इसका मुख्य कारण है। इस इतिहास में

संक्षिप्त रूप से तिथि-क्रम ही अधिक स्पष्ट किया गया है। यह तिथि-क्रम इतिहास का एकमात्र आधार है। अतः इसे शुद्ध रूप में रखने का मेरा पर्यास है। तिथि-क्रम को ठीक समझने के लिए आयुर्वेद के संग्रह-ग्रन्थों के लेखकों तथा टीकाकारों के यथार्थ काल का समझना अत्यावश्यक है। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने इस विषय पर एक संक्षिप्त लेख भा० बृ० इ०, प्रथम भाग, पृ० ३१७, १८ पर किया है। मैंने उसका परिवर्धित रूप इस इतिहास के अन्तिम अध्याय के पश्चात् परिशिष्ट रूप में लिखा है। उसकी विशेष व्याख्या इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में करूँगा।

आयुर्वेद का इतिहास भारतीय ऋषियों का इतिहास है। इसकी छटा इस पुस्तक में मिलेगी। प्रत्येक ऋषि कितने विषयों का पारंगत पण्डित था, वह कितना दीर्घजीवी हुआ, यह इस ग्रन्थ से ज्ञात हो जाएगा। उन परम-पुनीत ऋषियों को पाश्चात्य लेखकों ने असत्य-वक्ता और अल्पज्ञानी ठहराया था, इसका ज्वलन्त निराकरण इस पुस्तक में है। विकासमत की निराधारता और आदि से सारे ज्ञान की पूर्णता का सिद्धान्त इस ग्रन्थ से समझ में आएगा। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण और अनेक संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाणों से यह पुस्तक अलंकृत है। पूरा आनन्द लेने वालों को उन ग्रन्थों का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करना चाहिए। तदर्थ संस्कृत विद्या का गम्भीर परिचय अभीष्ट है। आयुर्वेद का ज्ञान भी संस्कृत-विद्या के विना नहीं हो सकता। तथापि मैंने इस सब सामग्री को हिन्दी भाषा में कर देने का कठिन काम किया है।

चिकित्सा के काम में संलग्न रहने के कारण मैं इस काम को शनैः शनैः कर रहा हूँ। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र न छप सकता, यदि मेरी धर्मपत्नी पण्डिता सूनृता शास्त्री, बी० ए० इसकी प्रेस कापी प्रस्तुत न कर देतीं। उन्होंने मेरी सारी सामग्री को क्रम देकर पुस्तकाकार बना दिया और ग्रन्थ में उद्धृत सब प्रमाण मूल पुस्तकों से मिला लिए।

आशा है इस ग्रन्थ के पाठ से आयुर्वेद के विद्यार्थियों को पर्याप्त लाभ और उनके हृदय में आयुर्वेद में गहरी गवेषणा करने का उत्साह उत्पन्न होगा।

जिन महानुभावों के ग्रन्थों से मैंने लाभ उठाया है, उन सबका मैं धन्यवाद करता हूँ। आदरणीय पंडित भगवद्दत्त जी के प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूँ। उनकी प्रेरणा, सहायता और उत्साह-प्रदान के विना यह ग्रन्थ कभी पूर्ण न हो सकता। श्री पण्डित देशराज शास्त्री, एम०ए० पुस्तकाध्यक्ष, आर्किओलोजिकल लाएब्रेरी, देहली का भी हार्दिक धन्यवाद है। इनकी कृपा से उपयोगी ग्रन्थ यथा समय उपलब्ध होते रहे हैं।

शिमला, जुलाई ३१, १९५२ सन् — कविराज सूरमचन्द्र

अथ

आयुर्वेद का इतिहास

प्रथम अध्याय

नमस्कार प्रयोजन तथा वर्तमान सृष्टिचक्र का आरम्भ

नमस्कार—सर्वज्ञानमय स्वयंभू ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति, देवभिषक् अश्विनि-कुमार, अमरगुरु इन्द्र, भगवान् कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि, भृगु, धन्वन्तरि, भरद्वाज तथा पुनर्वसु आत्रेय आदि महर्षियों और विज्ञान के अपरिमित भण्डारों को भक्तिपुरःसर कोटि कोटि नमस्कार हैं, जिनकी महती कृपा और अपार दया से संसार को आयु प्रदान करने वाला आयुर्वेद का शाश्वत और परम निर्मल ज्ञान उपलब्ध हुआ।

प्रयोजन—पुण्यभूमि भारत में गत अनेक शताब्दियों में राजाश्रय के अभाव से आयुर्वेद रूपी जो अमृत ज्ञान ह्रास को प्राप्त हुआ है, उसके पुनरुद्धार, तथा संसार में आयुर्वेद के अलौकिक और स्वतः सिद्ध तथ्यों के प्रचार, अपिच पश्चिम के कतिपय अल्प-संस्कृतविद्या-विद जर्मन, फ्रैञ्च, अंग्रेज और अमरीकी आदि लेखकों द्वारा प्रसारित बहुविधा भ्रान्तियों के उन्मूलन तथा पुरातन आचार्यों के सत्य काल-प्रदर्शन के निमित्त यह हमारा प्रबन्ध है।

संवर्तकाग्नि और जलप्लावन—इस पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति कई वार हो चुकी है। गत सृष्टि के अन्त में संवर्तकाग्नि के प्रभाव से सम्पूर्ण पशु, पक्षी और वनस्पति आदि दग्ध हो गए। पृथ्वी का जल ताप के अत्यधिक होने से धूम्राकार होकर आकाश में लीन हो गया। इस भयंकर अग्निदाह के पश्चात् आँधियाँ आईं। वायु का प्रकोप अत्यन्त बढ़ा। तब कई मास तक धारासार वर्षा हुई। पृथ्वी जल-निमग्न हो गई।

आर्य शास्त्र और मानव सृष्टि—पृथ्वी की पूर्वोक्त दशा केवल आर्य शास्त्रों में वर्णित है। यह वृत्त तथा इसके पश्चात् मानव के पुनः प्रादुर्भाव का

सत्य इतिहास युक्तियुक्त है, और आत्मसत्ता पर आश्रित है। इस विषय में वेद और सम्पूर्ण आर्यशास्त्र का ऐकमत्य है। निर्मल ज्ञान से ओत-प्रोत आर्य शास्त्र के आधार पर इसका उल्लेख आगे होगा।

डार्विन आदि पाश्चात्यों का विकासमत—आत्मा के अस्तित्व में संशयशील, आत्मस्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ तथा आत्मवैभव से अपरिचित इङ्गलैण्ड-देशोत्पन्न डार्विन ने प्राणियों आदि में कतिपय सादृश्यों के आधार पर एक मत चलाया कि सृष्टि में मनुष्य का प्रादुर्भाव विकासमत के अनुसार हुआ। पहले अति सूक्ष्मकाय प्राणी उपजे। तदनु कालान्तर में परिवर्त्तन होते होते प्राणियों की अनेक जातियाँ बनीं। एक जाति के प्राणियों से दूसरी जाति के प्राणियों का उद्गम हो गया। इस प्रकार परिवर्त्तन के फलस्वरूप अन्त में मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य पर पहुँच कर जाति परिवर्त्तन सदा के लिए रुक गया। योरुप का यह मत स्थूल दृष्टि से रोचक होता हुआ भी युक्ति तथा प्रमाण विरुद्ध है। आदि में चेतन की इच्छा के विना जड़ प्रकृति का सजीव होना असम्भव है। पुरुष तथा प्रकृति पर आश्रित सांख्य-सिद्धान्त पूर्ण प्रशस्त तथा सत्य तर्क पर आश्रित है। सांख्य आदि सम्पूर्ण शास्त्रों में महदादि तथा पञ्चभूत-विशेषान्त सृष्टि का वर्णन मिलता है। पुरुषाधिष्ठित महान् से समस्त जड़ विकृति बनी। तब प्राणी-सृष्टि हुई। उसके मूल तत्त्व के विषय में श्री० पं० भगवद्दत्त जी द्वारा रचित भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग प्रथम पृ० ५५-६० पर डार्विन मत की तर्क-विरुद्धता का संक्षिप्त वर्णन द्रष्टव्य है।

आर्ष सिद्धान्त—विकास मत में प्रकृति और उसके सत्व, रजस, तम गुणों का अणुमात्र उल्लेख नहीं। इन गुणों के विना मनुष्य के क्रोध आदि का यत्किञ्चित् विश्लेषण नहीं हो सकता।[१] पाश्चात्य मनोविज्ञान (psychology) के ग्रन्थ इसी कारण अधूरे हैं।

महामुनि चरक ने चरकसंहिता, सूत्रस्थान में लिखा है—नांकुरोत्पत्तिरबीजात्।[२] कर्मसदृशं फलं। नान्यस्माद् बीजाद् अन्यस्योत्पत्तिः। ११।३२॥

---

१. कामक्रोधौ मनस्तापो लोभो मोहस्तथामृषा।
प्रवृद्धे परिवर्धन्ते रजस्येतानि सर्वशः॥
अनुशासनपर्व २४२।१५॥

२. तुलना करो, चरक, शारीर० ३। १५॥

अर्थात् नहीं अंकुर की उत्पत्ति विना बीज से। कर्म के सदृश फल होता है। नहीं अन्य के बीज से अन्य की उत्पत्ति।

इससे ज्ञात होता है कि ऋषि लोग डार्विन के जाति-परिवर्त्तन के मत को अवैज्ञानिक समझते थे। इसी भाव से न्याय शास्त्र में महान् वैज्ञानिक गौतम मुनि लिखते हैं—

समानप्रसवात्मिका जातिः ।२।२।७१॥

अर्थात्—जाति वही है जिससे आगे तद्रूप समान प्रकार की परम्परा चले।

चतुर्विधाः प्रजाः—इस भूतल पर सम्पूर्ण प्राणियों का जो वैज्ञानिक विभाग आर्य शास्त्रकारों ने किया है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। यह विभाग चार प्रकार का है—

चतुर्विधं प्रजाजातं निर्दहत्याशु तेजसा।
जराय्वण्डस्वेदजातमुद्भिज्जं स नराधिप॥
शान्तिपर्व ३१७।९॥

आयुर्वेद शास्त्रों में भी इसी विभाग की मान्यता है—

भूतानां चतुर्विधा योनिर्भवति। जराय्वण्डस्वेदोद्भिदः। तासां खलु चतसृणामपि योनीनामेकैका योनिः अपरिसंख्येयभेदा भवति। भूताना-माकृतिविशेषपरिसंख्येयत्वात्॥ चरक सं० शारीर स्थान ३।२३॥

अर्थात्—इन चारों जातियों में एक-एक जाति अपरिसंख्येय भेद वाली हो जाती है।

वायुपुराण भी इसी वैज्ञानिक वर्गीकरण का संकेत करता है—

ततः प्रवृत्तो दक्षस्तु प्रजाः स्रष्टुं चतुर्विधाः।
जरायुजाण्डजाश्चैव उद्भिज्जाः स्वेदजास्तथा॥
दश वर्ष सहस्राणि तप्त्वा घोरं महत्तपः।
संभावितो योगबलैरणिमाद्यैर्विशेषतः[1] ॥६५।१२२, १२३॥

---

१. देवल धर्मसूत्र में अणिमा का लक्षण—

तेषामणिमा-महिमा-लघिमास्त्रयः शारीराः।.........तत्र स्वशरीरस्य-मणिमा। अणुभावात् सूक्ष्मामप्याविशति। कृत्यकल्पतरु, मोक्ष-काण्ड, पृ० २१६।

परमयोगी भगवान् सनत्कुमार भी अणिमा आदि अष्टगुणयोग का वर्णन करते हैं। महाभारत, अनुशासनपर्व, अ० १६७ में लिखा है—

अणिमा लघिमा भूमा प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च।

अर्थात्—जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज रूप से सम्पूर्ण प्राणी चार प्रधान जातियों के हैं।

मनुस्मृति १। ४६-४९। में स्थावरों की ओषधि, वनस्पति आदि जातियों का विभाग पूर्ण वैज्ञानिक प्रकार से वर्णित है—

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्स्मृताः।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः॥
गुच्छगुल्मं च विविधं तथैव तृणजातयः।
प्रतानाश्चैव वल्ल्यश्च वीरुधः परिकीर्तिताः॥
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः॥

ओषधि उत्पत्ति—ऋग्वेद में लिखा है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।१०।९७।१॥

अर्थात्—जो ओषधियाँ पूर्व उत्पन्न हुई। देवों से तीन युग पूर्व। प्रश्न होता है उद्भिज अर्थात् ओषधि,[1] वनस्पति, वृक्ष तथा वीरुध सृष्टि कैसे हुई।

कलल अवस्था—गर्भकाल में सम्पूर्ण बीजों की कलल नामिका एक विशेष अवस्था सर्व-पूर्व होती है। सुश्रुतसंहिता शारीर स्थान में लिखा है—

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ।३।१८।।

चरक सं० शा० ४।१० में भी ऐसा ही उल्लेख है।

इसी तत्त्व का संकेत वायु पुराण में है—

ततस्तु गर्भकाले तु कललं नाम जायते ।१४।१८॥

ईशित्वं च वशित्वं च यत्र कामावसायिता।
एतदष्टगुणं योगं योगानाममितं स्मृतम् ॥४३॥

इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि महिमा और भूमा शब्द पर्यायवाची हैं।

आठ प्रकार का योगी का ऐश्वर्य चरक सं० शारीरस्थान १।१४०, ४१ में वर्णित है।

१. ओषधियाँ ग्राम्य और आरण्य हैं। उनका विस्तृत वर्णन वायुपुराण ८।१४३-१६० में है।

ओषधि आदि की उत्पत्ति में भी यही पूर्वावस्था थी। पराशर के वृक्ष आयुर्वेद में लिखा है—

आपो हि कललं भूत्वा यत् पिण्डस्थानुकं भवेत्।
तदेवं व्यूहमानत्वात् बीजत्वमधिगच्छति ॥

बीजोत्पत्तिकाण्ड, बीजोत्पत्तिसूत्रीयाध्याय, [प्रथम]।[1]

ईश्वर प्रेरणा से प्रारम्भिक बीज जल और पृथ्वी में कलल रूप से उत्पन्न हुए। योगदर्शन पर व्यासभाष्य ३।१४ में पञ्चशिख का प्राचीन वचन उद्धृत है—

जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टं तथा स्थावराणां जङ्गमेषु जङ्गमानां स्थावरेषु।

शारीरोपनिषद् में लिखा है—

आप एव कललीभूतं भवति। पिण्डं तदा सञ्जायते।

वायुपुराण अध्याय ८ में भी इसी तत्त्व का निदर्शन है—

ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवी तले।
अपां भूमेश्च संयोगाद् ओषध्यस्तासु चाभवन् ॥१३२॥

इस सम्पूर्ण क्रिया का इतिवृत्त विस्तरभय से यहाँ नहीं लिखा जाता। शास्त्रों में अण्डज और स्वेदज की उत्पत्ति का भी अत्यन्त विषद वर्णन है।

चारों जातियों का वर्णन करते हुए महाभारत, अनुशासनपर्व अध्याय २२७ में महेश्वर जी उसका संकेत करते हैं—

एवं चतुर्विधां जातिमात्मा संसृत्य तिष्ठति।
स्पर्शनैकेन्द्रियेणात्मा तिष्ठत्युद्भिदजेषु वै ॥१३॥
शरीरस्पर्शरूपाभ्यां स्वेदजेष्वपि तिष्ठति।
पञ्चभिश्चेन्द्रियद्वारैर्जीवन्त्यण्डजरायुजाः ॥१४॥
तथा भूम्यम्बुसंयोगाद् भवन्त्युद्भिदजाः प्रिये।
शीतोष्णयोस्तु संयोगाज्जायन्ते स्वेदजाः प्रिये।
अंडजाश्चापि जायन्ते संयोगात् क्लेदबीजयोः ॥१५॥
शुक्लशोणितसंयोगात् संभवन्ति जरायुजाः ।१६।

अर्थात्—प्राणियों की चारों जातियों में आत्मा रहता है। उद्भिजों में आत्मा केवल स्पर्शेन्द्रिय से काम करता है। स्वेदजों में शरीर स्पर्श रूप से।

---

1. जर्नल एशि० सो० बंगाल, लैटर्स, भाग १६, संख्या १, सन् १९५० । नित्येन्द्रनाथ सरकार का लेख, पृ० १२६ ।

भूमि और जल के संयोग से उद्भिज तथा जल और गरमी के योग से स्वेदज जन्मते हैं। क्लेद और बीज-वीर्य के योग से अण्डज तथा शुक्र और शोणित के योग से जरायुज जन्मते हैं।

ऋषि उत्पत्ति—जरायुज मनुष्यों में ऋषि और देव परम उत्कृष्ट थे। उनकी उत्पत्ति के वर्णन में भृगु कहता है—

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।१।८॥

अर्थात्—जल में रस एकत्र हुआ। पञ्चभूत और उनके गुण युगपद् उत्पन्न हुए। इसी प्रकार पांच बुद्धीन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय युगपद् उत्पन्न हुए। (शान्ति-पर्व ३०८।२५-२८॥) वहीं उस महान् आत्मा की प्रेरणा से पूर्ण योगशक्ति युक्त आत्माओं ने शरीर निर्माण किए।

अथर्ववेद में लिखा है—

यत्र ऋषयः प्रथमजाः। ७।१४॥

अर्थात्—ऋषि प्रथम उत्पन्न होते हैं।

आत्म-प्रवेश—आत्मा के बिना शरीर-निर्माण नहीं होता। इस विषय में महाभारत, अनुशासनपर्व अध्याय २२८ में उमा-महेश्वर-संवाद में भगवान् शिव कहते हैं—

सोयं चतुर्विधां जातिं संविशत्यात्ममायया।
मैथुनं शोणितं बीजं दैवमेवात्र कारणम्।१३॥
बीजशोणितसंयोगो यदा संभवते शुभे।
तदात्मा विशते गर्भमेवमण्डजरायुजे ॥१४॥
एवं संयोगकाले तु आत्मा गर्भत्वमेयिवान्।
कललाज्जायते पिण्डं पिण्डात् पेश्यर्बुदं भवेत् ॥१५॥

वायुपुराण में पूर्वोक्त वेदमन्त्र का कुछ अभिप्राय स्पष्ट किया गया है—

ततो युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः।
प्रतिलभ्य पुनर्योगं मोक्षं गच्छन्त्यमूर्तयः॥
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन वा।
नश्यन्त्युल्केव गगने क्षीणविद्युत्प्रभेव च॥
उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च!
निराख्योपाख्यतां यान्ति सरितः सागरे यथा॥

७१।६१—६३॥

अर्थात्—महायोग की विभूति से आदि सृष्टि में शरीरों का निर्माण होता

है। विकासमतानुयायी नास्तिक आश्चर्य करता है और इस तथ्य को स्वीकार करने में हिचकिचाता है, परन्तु जब योगी वर्त्तमान काल में भी—

यदा तु योगी बहून्कायान्निर्मिमीते।

योगसूत्र व्यासभाष्य ४।४॥

अनेक शरीर निर्माण कर सकता है तो आदि में महायोगियों ने आकर्षण शक्ति से अपने शरीर निर्मित किए, इसमें कोई सन्देह नहीं।

परमर्षि कपिल के प्रप्रशिष्य, ब्रह्मिष्ठ आसुरि के प्रशिष्य, और दीर्घजीवी भिक्षु पञ्चशिख के शिष्य (व्यास से पूर्वकालिक) भगवान् देवल ने योग विभूति का वर्णन अपने धर्मसूत्र में किया है।

उसके उद्धरण से आगे लक्ष्मीधर अपने कृत्यकल्पतरु में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करता है—

आत्मानं तु सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ।
योगं कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥
प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिःदुग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यस्तेजोगणानिव॥

कृत्यकल्पतरु अन्तर्गत मोक्षकाण्ड पृ० २१६, १७,

इन श्लोकों की प्राचीनता का प्रमाण वायुपुराण तथा महाभारत के निम्नलिखित श्लोकों से मिलता है—

इमौ चोदाहरन्त्यत्र श्लोकौ योगेश्वरं प्रति॥
आत्मनः प्रतिरूपाणि परेषां च सहस्रशः।
कुर्याद्योगबलं प्राप्य तैश्च सर्वैः सहाचरेत्॥
प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव तथैवोग्रतपश्चरन्।
संहरेच्च पुनः सर्वान् सूर्यतेजोगुणानिव॥६६।१५०-१५२॥

यहाँ उदाहरन्ति पद स्पष्ट करता है कि वायुपुराण का प्रतिसंस्कर्ता ये श्लोक अपने किसी पूर्वज से ले रहा है। वह पूर्वज व्यास था।

महाभारत में लिखा है—

आत्मानं च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ।
योगः कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥२६॥
प्राप्नुयाद् विषयान् कश्चित् पुनश्चोग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तात सूर्यस्तेजोगुणानिव॥२७॥

शान्तिपर्व ३०६।

विविध शरीर—सर्गादि में विविध प्राणियों के शरीर कैसे उत्पन्न हुए

इस विषय में निम्नलिखित वर्णन उपलब्ध होता है। श्री प्रशस्तपादाचार्य वैशेषिक दर्शन ४।२।६ के भाष्य में लिखते हैं—

शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च। योनिजशरीरो हि महता गर्भवासादिदुःखप्रबन्धेन विलुप्तसंस्कारो जन्मान्तरानुभूतस्य सर्वस्य न स्मरति। ऋषयः प्रजापतयो मनवस्तु मानसा अयोनिज-शरीरविशिष्टा दृष्टसम्बन्धिनो दृढसंस्काराः कल्पान्तरानुभूतं सर्वमेव शब्दार्थ-व्यवहारं सुप्तप्रतिबुद्धवत्प्रति सन्दधते।

अर्थात्—शरीर दो प्रकार का होता है। योनिज और अयोनिज। वर्तमान समय में प्रायः शरीर योनिज होते हैं। अयोनिज शरीर सर्गादि में ऋषियों, प्रजापतियों और मनु आदि के थे। वे मानस शरीर थे।

देवल कहता है, अयोनिज शरीर योगी बनाते हैं—

विशन्ति परभोगार्थम्—मोक्षकांड पृष्ठ २१८।

अर्थात्—भोगयोनियों के शरीर परम योगियों द्वारा निर्मित हुए।

अयोनिज शरीर के भेद—परम विद्वान् महर्षियों ने अयोनिज शरीरों का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है—

१. **सांकल्पिक**—सांख्य दर्शन ५।१११ में इसका उल्लेख है।

२. **सांसिद्धिक**—सांख्य दर्शन ५।१११ में इसका भी उल्लेख है।

३. **योगशरीर**—सभापर्व ८।२६ में ,, वर्णन है।

४. **मन्त्र शरीर**—वायु पु० ६६।५,६।।६७।४ में यह द्रष्टव्य है।

अयोनिज का अन्य अर्थ—शकुन्तला, सीता, द्रौपदी अयोनिजा अर्थात् मनुष्येतर अप्सराओं की सन्तान थीं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में—ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में अनेक गम्भीर संकेत हैं। उनमें से एक नीचे उद्धृत किया जाता है—

प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् सोऽकामयत प्रजाः पशून्त्सृजेयेति स आत्मनो वपामुदक्खिदत् तामग्नौ प्रागृह्णात् ततोऽजस्तूपरः समभवत् तं स्वायै देवताया आऽलभत ततो वै स प्रजाः पशूनसृजत यः ऽजाकामः पशुकामः स्यात् स एतं प्राजापत्यमजं तुपरमालभेत प्रजापतिमेव स्वेन भाग-धेयेनोपधावति स एवास्मै प्रजां पशून् प्रजनयति यच्छ्मश्रुणस्तत् पुरुषाणां रूपं यत् तुपरस्तदश्वानां यदन्यतोदन्तद् गवां यदव्या इव शफास्तदवीनां यदजस्तदजानामेतावन्तो वै ग्राम्याः पशवः ॥　　तै. सं. २।१।१॥

अर्थात्—प्रजापति-ब्रह्मा ? एक ही था। उसने कामना की, प्रजा और पशु उत्पन्न करूं। उसने अपनी (विराट् स्थित समष्टि) वपा को अग्नि में

डाला। उससे अजस्तूपर जन्मा। इत्यादि।

इस प्रकरण में वपा तथा अग्नि आदि से समष्टि वपा आदि का ग्रहण है। यह वर्णन असत्य भी नहीं। इसके रहस्यमय अर्थ की पूर्ण खोज आवश्यक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार के अन्य अनेक वचन भी हैं। उनके अर्थ अन्वेषणीय हैं। इन अर्थों के खुलते ही सृष्टि उत्पत्ति का वैज्ञानिक प्रकार पूर्ण स्पष्ट हो जाएगा। इस विषय पर भृगु ने निम्नलिखित श्लोक में अद्वितीय प्रकाश डाला है—

तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम्।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥१।१६॥

अर्थात्—[समष्टि में जो मन तथा सूक्ष्म इन्द्रियां उत्पन्न हो चुकी थीं] उन छः के सूक्ष्म अवयवों को अपनी उत्पन्न की सूक्ष्म तन्मात्राओं में युक्त करके [सत्त्व रजस तम के योग से] ब्रह्मा और तत्पश्चात् अवान्तर प्रलयों में महायोगियों ने सृष्टि-रचन किया। समष्टि रूप की सूक्ष्म इन्द्रियों का निर्माण महाभारत, शान्तिपर्व, २१५। १७-२२ में सुन्दर रूप में उपलब्ध होता है। सत्त्व, रजस, तम से ही वात, पित्त और कफ की उत्पत्ति होती है। इनके यथार्थ ज्ञान विना शरीर-रचन समझ में नहीं आ सकता। वर्तमान योरुपीय ग्रन्थों में इस विद्या के अभाव के कारण दूषित और मिथ्या मत प्रचरित हो रहे हैं।

विश्वसृज ऋषि—स्वयंभू ब्रह्मा और विश्वसृज ऋषियों ने सारी सृष्टि योगबल से उत्पन्न की।

वायुपुराण में विश्वसृजों का संकेत है—

विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव। २। २७॥

वस्तुतः यह सृष्टि आत्मा की विभूति है। नास्तिक विकासमत का इसमें स्थान नहीं।

ऋषियों के लक्षण—महाभारत अनुशासनपर्व १३६। २१, २२ में पितामह पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह अङ्गिरा, क्रतु और महानृषि कश्यप का उल्लेख है। ये महायोगेश्वर और पितर कहे गए हैं। सृष्टि-उत्पत्ति का अति संक्षिप्त वर्णन हो चुका। इस वर्णन में ऋषि शब्द का बहुधा उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद के मूलग्रन्थों में भी आर्ष-अनार्ष का विवेचन और ऋषियों की प्रामाणिकता स्वीकृत की गई है। अतः ऋषि कौन होते हैं, इसका यथार्थ ज्ञान परम आवश्यक है। कालक्रमानुसार उद्धृत विभिन्न प्रमाणों द्वारा इस विषय का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है।

(क) दशरथ के समकालिक आदि कवि भगवान् बाल्मीकी बालकाण्ड में लिखते हैं—

यदि प्राप्तं मया ब्रह्मन् ब्राह्मण्यं तपसो बलात् ।
ततो ब्रह्म च वेदाश्च सत्यं च वरयन्तु माम् ॥ १३ ॥
सिद्धिर्धृतिः स्मृतिश्चैव विद्या मेधा यशः क्षमा ।
तपो दमश्च शान्तिश्च सर्वज्ञत्वं कृतज्ञता ॥ १४ ॥
असंमोह इति प्राहुर्ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।
अद्रोहः सर्वभूतानामपकल्मषसंज्ञितः ॥ १५ ॥
तन्मा भजतु विप्रेश ब्रह्माव्ययमनुत्तमम् ।
तपसा च यदि प्राप्तं ब्राह्मणत्वं यथेप्सितम् ॥ १६ ॥
तमेवं वादिनं ब्रह्मा प्रत्युवाच तपोनिधिम् ।
प्रतिभास्यन्ति ते वेदा ब्रह्म चाव्ययमुत्तमम् ॥ १७ ॥
अधिकस्त्वं मतो मेऽद्य सर्वब्रह्मविदां मुने ॥ १८ ॥
सर्ग ६१

जनकों के पुरोहित शतानन्दजी निश्वामित्र की कथा के प्रसंग में विश्वामित्र और ब्रह्मा का संवाद सुना रहे हैं। विश्वामित्र भगवान् ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं—

अर्थात्—हे ब्रह्मन् यदि तप के बल से मैं क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया हूं तो वेद, ब्राह्मण और सत्य मुझे वरें। आठ सिद्धियां, धृति, स्मृति, विद्या, मेधा, यश, क्षमा, तप, दम, शान्ति, सर्वज्ञत्व तथा कृतज्ञता आदि मुझे प्राप्त हों।

विश्वामित्र को ये गुण प्राप्त हुए और वे ब्रह्मर्षि बन गए।[1] ऋषि सिद्धि-संपन्न, सर्वज्ञ तथा सत्यनिष्ठ होते हैं। वेद उनको स्वयं उद्भासित होते हैं।

(ख) ऋषि का एक और लक्षण मानव धर्मशास्त्र की भृगुप्रोक्त संहिता में उपलब्ध होता है—

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ।[2]
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥अ० ४।६४॥

अर्थात्—ऋषि लोग लम्बी संध्या करने के कारण अर्थात् योगाभ्यास से दीर्घायु हुए।

---

१. ब्रह्मर्षे विनिवर्तस्व तपसोऽस्मादितः परम् ।
ब्रह्मर्षिस्त्वमनुप्राप्तस्तपसा ह्यसि दुर्लभम् ॥ ६१ । १० ॥

२. इस श्लोक का निम्नलिखित रूपान्तर महाभारत अनुशासनपर्व में है—
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ।१६१।१८॥

यदि ऋषियों का आयु मनुष्यों के समान तीन वा चार सौ वर्ष तक का होता तो भृगु पूर्वोद्धृत श्लोक न लिखता। पूर्वयुगों में भी मनुष्य की आयु ४०० वर्ष से अधिक नहीं हुई। परन्तु ऋषि तथा देव ४०० वर्ष से अधिक अथवा कई सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवित रहे हैं। ऋषियों की दीर्घायु के रहस्य को न समझ कर अंग्रेज न्यायाधीश अपिच परिश्रमी ऐतिहासिक पार्जिटर महोदय लिखता है—

It is generally rishis who appear on such occasions in defiance of chronology, and rarely that kings so appear (A. I. H. T. p. 141)

ये प्रायः ऋषि हैं, जो ऐसे अवसरों पर दिखते हैं और जिनके जीवन-परिमाण से पुरातन भारतीय इतिहास का तिथि-क्रम भंग हो जाता है। राजाओं के विषय में तिथि-भंग अत्यल्प है।

यदि पार्जिटर पर योरुपीय क्षुद्र-विद्या का प्रभाव न होता तो उन्हें मनुष्य और ऋषि का भेद ज्ञात होता, तब वे ऐसा सारहीन लेख न करते। दीर्घजीवी महापुरुषों का सुन्दर वर्णन भारतीय इतिहास के महान् आचार्य श्री० पं० भगवद्दत्तजी कृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास प्रथम भाग अध्याय षष्ठ में देखें।

(ग) भारतयुद्ध से लगभग १५० वर्ष पूर्व सामशाखाकार एक उपमन्यु ऋषि थे। उनकी शाखा औपमन्यव शाखा कहाती थी।[१] उनके निरुक्त का वचन यास्कीय निरुक्त में उद्धृत है—

स्तोमान्ददर्श इत्यौपमन्यवः ॥नि०, २।११॥

अर्थात्—जिस पर स्तोम प्रकट हों वह ऋषि होता है।

(घ) उसी काल का तैत्तिरीय शाखा का प्रवचनकर्त्ता तित्तिरि मुनि अपने आरण्यक में लिखता है—

तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम् इति ।२।११॥

अर्थात्—जिन तप करते हुओं को स्वयंभू ब्रह्म दीखा वे ऋषि हो गए। ऋषियों का ऋषित्व यही है।

(ङ) भारतयुद्ध के काल में होने वाले उदारधी आचार्य यास्क लिखते हैं—

---

१. देखो पं० भगवद्दत्त कृत, वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग, पृ० २०४, २०५।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्संप्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। इति ।१।२०॥

अर्थात्—साक्षात्कृतधर्मा ऋषि थे। उन्होंने अवरकाल के असाक्षात्कृत-धर्मा श्रुतर्षियों को उपदेश द्वारा मन्त्र कहे। उपदेश ग्रहण करने में असमर्थ क्षीण शक्ति वालों के लिए विद्वानों ने निघण्टु, वेद तथा वेदाङ्गों को ग्रन्थ रूप में उपनिबद्ध किया।

पूर्वोक्त (ग) (घ) (ङ) भाग में उपमन्यु, तित्तिरि तथा यास्क, ऋषि-पद का समान लक्षण करते हैं।

टिप्पण—

आदिकाल से आर्यों को लिपि का ज्ञान था। लिपि ब्रह्मा की देन है। अतः यह ब्राह्मी कही जाती है। आदिकाल में स्मृतिशक्ति के अपरिमित होने से ग्रन्थों के लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। उपदेशमात्र से काम चलता था। ज्ञान के अबाध होने से उसमें भूल असम्भव थी।

गांधीजी का विचार—अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित, ऋषि तथा मनुष्य के भेद से अनभिज्ञ, अपरञ्च ऋषियों के अलौकिक ज्ञान से अपरिचित श्री० मोहनदास कर्मचन्द जी गांधी ने लिखा है—

सब धर्म ईश्वर-प्रदत्त हैं, पर मनुष्य-कल्पित होने के कारण, मनुष्य द्वारा उनका प्रचार होने के कारण, वे अपूर्ण हैं। ईश्वरदत्त धर्म अगम्य है। उसे भाषा में मनुष्य प्रकट करता है, उसका अर्थ भी मनुष्य लगाता है। इति।[1]

आलोचना—वेद और परमर्षि-प्रणीत आर्षशास्त्र मनुष्य की देन नहीं हैं। वे नीरजस्तम ऋषियों की देन हैं। वे कल्पित भी नहीं, अपितु साक्षात्कृत-धर्म का फल हैं। उनकी भाषा दैवी, आर्ष तथा नित्य है। मनुष्य बहुत पश्चात् हुए। अतः आर्ष ज्ञान बाईबिल, कुरान के सदृश नहीं। आयुर्वेद का सम्पूर्ण मूलशास्त्र आर्षज्ञान है। योरुप, अमरीका तथा गांधीजी का ज्ञान मनुष्य-प्रदर्शित और मनुष्यकृत अर्थों द्वारा स्पष्ट किया जाता है, अतः अधिकांश भ्रान्त है।

(च) वैशम्पायन चरक, अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कार में लिखते हैं—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥१८॥

---

1. मंगल प्रभात पृ० ४५, सातवीं बार, सस्ता साहित्य मण्डल, नई देहली।

आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते, तेषां वाक्यमसंशयम् ।
सत्यं, वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ॥१६॥
अ० ११। पृ० १४७ ॥

अर्थात्—रजस्तम मुक्त, तपोज्ञान युक्त, त्रिकालज्ञ, अमल और अव्याहत-ज्ञान-सम्पन्न आप्त, शिष्ट, परमज्ञानी ऋषि थे । उनका ज्ञान तथा उपदेश निर्भ्रान्त और सत्य था ।

अन्यत्र भी चरक-संहिता में भगवान् पुनर्वसु को प्रत्यक्षधर्मा कहा गया है—

पुरा प्रत्यक्षधर्माणं भगवन्तं पुनर्वसुम् ।
समेतानां महर्षीणां प्रादुरासीदियं कथा ॥ सू० २५।२ ॥

(छ) मुनि आपस्तम्ब अपने धर्मसूत्र में लिखते हैं—

तस्मादृषयोऽवरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात् ।

अर्थात्—उत्तरकाल में ऋषि उत्पन्न नहीं होते । तप आदि के नियमों के अतिक्रमण से ।

अर्थापत्ति से स्पष्ट हुआ कि ऋषि आचार-नियमों का पूर्ण पालन करते हैं ।

(ज) वायुपुराण (भारत युद्ध से ३०० वर्ष पश्चात्) में लिखा है—

ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्संनियतस्तस्मिन्ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ॥अ. ५६ । ७६ ॥

अर्थात्—'ऋष' धातु गति, श्रुति, सत्य, तथा तप अर्थक है । इस धातु में ब्रह्मा ने ये अर्थ संनिहित किए । जिसमें ये सब गुण हों वह ऋषि होता है ।

पाणिनीय धातुपाठ में 'ऋष्' धातु के इतने अर्थ नहीं दिए । वायु-पुराण का यह श्लोक प्राचीन ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है । व्याकरण-रचन में वायु, इन्द्र का सहायक था ।[1] वर्तमान वायु-पुराण में उसी ऐन्द्र-परम्परा का निदर्शन है ।

(झ) गौतम मुनि (भारतयुद्ध से २०० वर्ष पूर्व) का न्यायदर्शन में सूत्र है—

आप्तोपदेशः शब्दः ।१।१।७॥

इस पर वात्स्यायन मुनि (संभवतः विष्णुगुप्त कौटल्य) लिखते हैं—

आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा।·········ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम् ।

---

1. देखो पं० युधिष्ठिर मीमांसक-कृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ६४, संवत् २००७ ।

अर्थात्—ऋषि, आर्य (भारतीय मनुष्य) और म्लेच्छों (अपभ्रंश भाषाएं बोलने वाली भूगोल की इतर जातियों) में आप्त अर्थात अपने-अपने विषय में साक्षात्कृतधर्मा होते हैं।

वात्स्यायन के वचन में ऋषि तथा आर्य अर्थात् मनुष्यादि का भेद सुव्यक्त है। ऋषि बहुविध विद्याओं के साक्षात्कृतधर्मा तथा अन्य अनेक गुण युक्त थे।

ऋषि युग—श्री ब्रह्मा जी के काल से विक्रम संवत् के आरम्भ तक भारत की पुण्यभूमि में आर्ष-ज्ञान का प्राबल्य था। तथागत बुद्ध और महावीर स्वामी का प्रामाण्य आर्यभूमि में अधिक नहीं हुआ। इस क्षति को देख बौद्ध और जैन आचार्यों को उन्हें भी सर्वज्ञ सिद्ध करने की चेष्टा करनी पड़ी। वराहमिहिर, वाग्भट तथा कालिदास भयभीत थे कि आर्षज्ञान के साम्राज्य में उनके ग्रन्थ कौन पढ़ेगा। वे लिखते हैं—

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम्।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥ २ ॥
मुनिविरचितमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम्।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ ३ ॥[1]

अर्थात्—प्रथम मुनि ब्रह्मा के (तथा अन्य अनेक मुनियों के) विस्तृत ग्रन्थों के अवितथ अर्थ को देख स्पष्टीकरण के लिए इस न बहुत छोटी तथा न बहुत बड़ी रचना करने को उद्यत हुआ हूं। चिरन्तन काल का मुनिविरचित ही साधु है तथा मनुष्य विरचित नहीं। मैंने यथासंभव अर्थ नहीं बदला, संक्षेप किया है। अतः इस मनुष्यरचित ग्रन्थ को भी पाठक पढ़ें।

अष्टाङ्ग हृदय की समाप्ति पर वाग्भट लिखता है—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

अर्थात—चरक, सुश्रुत तथा भेडादि सब तन्त्र ऋषिप्रणीत हैं। आर्ष-विद्या के प्रेमी लोग केवल चरक और सुश्रुत संहिताओं को पढ़ते हैं, भेडादि के ग्रन्थों को नहीं। अतः मेरे सुभाषित ग्रन्थ का पाठक ग्रहण करें। कोई हानि नहीं कि मैं मनुष्य हूं।

कवि कालिदास लिखता है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

---

१. वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता प्रथमाध्याय।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

अर्थात्—पुराना है इसी लिए साधु है और नया नहीं, पर नया होने पर भी मेरे ग्रन्थ की परीक्षा करके उसे ग्रहण कीजिए।

पूर्वोक्त तीनों ग्रन्थकार विक्रम प्रथम शति के कुछ पहले और कुछ पश्चात् के थे। उनके वचनों से प्रतीत होता है कि उनके काल तक आर्षज्ञान का महान् आदर था। मनुष्यकृत ग्रन्थों के पठन-पाठन का युग उसके पश्चात् आरंभ हुआ।

प्रश्न होता है कि मनुष्य-कृत ग्रन्थों के युग से आर्ष-विद्या की रक्षा किस प्रकार हुई। इस का उत्तर स्पष्ट है। ऋषियों ने आर्यों का चार वर्णों में जो विभाग किया, उनमें ब्राह्मण अतिमानुष है। ब्राह्मण की कृपा से आर्ष-ग्रन्थों की परम्परा सुरक्षित रही। आयुर्वेद का विद्यार्थी जानता है कि सुश्रुत संहिता पर डल्हण की टीका में अनेक पाठों के आर्षानार्षत्व का पर्याप्त विचार किया गया है।

ऋषि और परमर्षि-प्रणीत आयुर्वेद शास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास अगले अध्याय से आरम्भ किया जाएगा।

इति कविराज सूरमचन्दकृते आयुर्वेदेतिहासे प्रथमोऽध्यायः

द्वितीय अध्याय

महर्षि ब्रह्मा=स्वयंभू ब्रह्म

आदिकाल

विक्रम से १५ सहस्र वर्ष से पूर्व अथवा भारतयुद्ध से १२ सहस्र वर्ष से पूर्व

भूतल पर ऋषियों का प्रादुर्भाव—संवर्तकाग्नि से पूर्व-सृष्टि का समूल नाश हुआ। इस भयंकर अग्निदाह के पश्चात् जलप्लावन की घटना घटी। तदनु जल थोड़ा थोड़ा नीचे हुआ। जल से बाहर निकलने वाली पृथ्वी पर ओषधियां और अन्न उपजे। इन ओषधियों के रस को योगैश्वर्य की आकर्षण शक्ति से श्री ब्रह्माजी ने कलल रूप दिया। वृद्धि को प्राप्त होकर वह कलल एक महान् अण्डाकार हो गया। यही ब्रह्माजी का शरीर था। इस शरीर के साथ ब्रह्माजी प्रकटे। उनके साथ अन्य परम ऋषि भी इस कमलाकारा पृथ्वी पर इसी प्रकार प्रकट हुए। ब्रह्माजी का यह सातवां जन्म था।[1]

नाम—ब्रह्मा के गुणों के प्रदर्शक निम्नलिखित नाम भिन्न-भिन्न संस्कृत ग्रंथों में मिलते हैं। हमने ये नाम भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, द्वितीय भाग. अध्याय तृतीय से लिए हैं—

१. अमरकोष—ब्रह्मा, आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठि, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, धाता, अब्जयोनि, द्रुहिण, विरंचि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, वेधा, विधाता, विश्वसृक्, विधि। इति। ये बीस नाम अमरकृत लिङ्गानुशासन १।११।५६,५७ में मिलते हैं।

२. रभसकोष—हंसगो, सनद् इति। टीका सर्वस्व पृ० ३८। यहां सनद् पद सतत् का पर्यायवाची प्रतीत होता है।

३. शब्दार्णव कोष—विरिञ्चि, द्रुघण, सञ्ज। इति।[2]

---

१. यदिदं सप्तमं जन्म पद्मजं ब्रह्मणो नृप। हरिवंश

२. अमर पर सर्वानन्द कृत टीकासर्वस्व १।१।१६,१७ पर उद्धृत॥

'सञ्ज' पाठ सर्वानन्द की मुद्रित टीका में उद्धृत है। इसका एक पाठान्तर 'संज्ञ' भी वहां उद्धृत है। वस्तुतः यह पाठ 'यज्ञ' चाहिए। आयुर्वेद की चरक संहिता चिकित्सा स्थान १।५० में लिखा है कि यज्ञ का कटा हुआ

४. शेष कोष—जैन आचार्य हेमचन्द्र द्वारा अभिधानचिन्तामणि की स्वोपज्ञ टीका में शेषकोष का पाठ उद्धृत है। उसमें ये नाम भी हैं—क्षेत्रज्ञ, पुरुष, सतत।

५. वायुपुराण—योगेश्वर, आत्मा, ऋषि, सर्वज्ञ, नारायण, महादेव, पुरुष, यज्ञ, कवि, आदित्य। इति। ५।३२-४५॥

६. ऋक्प्रातिशाख्य—शौनक मुनि ने अपने ग्रंथ के आरम्भ में ब्रह्मा को वेदात्मा, वेदनिधि, पद्मगर्भ तथा आदिदेव कहा है।

७. चरकसंहिता—सूत्रस्थान १।२३ में 'पितामह' नाम मिलता है। सिद्धिस्थान ३।३०,३१, पृ० १६५१ पर जज्जट की टीका में 'पैतामहाः' का वचन मिलता है। पृ० १६७१ पर जज्जट टीका में पितामह का पाठ उद्धृत है। सूत्रस्थान २५।२३ में लिखा है—

स्रष्टा त्वमितसंकल्पो ब्रह्मापत्यं प्रजापतिः।

यहां प्रजापति शब्द ब्रह्मा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। स्वयंभू ब्रह्मा के कतिपय अन्य नाम भी हैं। इनमें से अनेक नाम वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में ईश्वर के भी हैं।

ऐतिहासिक व्यक्ति—आधुनिक पाश्चात्य तथा अनेक एतद्देशीय लेखक कहते हैं कि ब्रह्मा ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं प्रत्युत कल्पित (mythical) व्यक्ति है। आयुर्वेद की संहिताओं तथा अन्य समस्त आर्ष शास्त्रों में ब्रह्माजी को ऐतिहासिक व्यक्ति माना है। जिन आप्तपुरुषों (ऋषियों) ने चरक और सुश्रुत सदृश वैज्ञानिक ग्रन्थों द्वारा संसार का महान् उपकार किया, तथा उपनिषदों के अद्वितीय अध्यात्मज्ञान से संसार को पावन किया, वे ऐकमत्य होकर असत्य का प्रचार करने में अग्रसर हुए, ऐसा कथन कोई बुद्धि-विहीन और आर्यपरम्परा अनभिज्ञ व्यक्ति ही कर सकता है।

वास्तव में ब्रह्माजी को कल्पित व्यक्ति मानने वाले स्वयं कल्पना में निमग्न हैं।

आयुर्वेद का प्रथम उपदेश—आयुर्वेद की सभी संहिताओं तथा संग्रह-ग्रन्थों में ब्रह्माजी को आयुर्वेद का आदि-प्रवक्ता कहा है। यथा—

शिर अश्वियों ने जोड़ा था। उसकी टीका में जज्जट लिखता है कि यज्ञ ब्रह्मा का नाम था। वायुपुराण ५।४४ में भी ब्रह्मा का एक नाम यज्ञ है।

शतपथ ब्राह्मण १४।१।१।१८ के पाठ से प्रतीत होता है कि शिरःसन्धान आलंकारिक घटना है। फिर भी तथ्य के समझने के लिए यत्न करना चाहिए।

(क) स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजा सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेद-मेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित् ततो विश्वानि भूतानि । इति । काश्यपसंहिता, विमानस्थान ।

(ख) इह खल्वायुर्वेदो नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोक-शतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः । इति । सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, १।६॥

(ग) त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः । इति । चरकसंहिता, सू० १।२४॥

अर्थात्—सर्ववित् स्वयंभू ब्रह्माजी ने आदि में समग्र आयुर्वेद का उपदेश एक सहस्र अध्यायों तथा एक लक्ष श्लोकों में किया ।

उपवेद—आयुर्वेद उपाङ्ग अथवा उपवेद है, अथर्ववेद का । प्रतिज्ञा-परिशिष्ट की पंचत्रिंशी कण्डिका में कात्यायन मुनि (भारत युद्ध के २०० वर्ष पश्चात्) लिखते हैं—

हस्तिशिक्षा सलक्षणा । आयुर्वेदविद्यास्तथा ।..........
सर्वे ते अथर्ववेदस्योपवेदा भवन्ति ।

अर्थात्—हस्तिशिक्षा, आयुर्वेद आदि अथर्ववेद के उपवेद हैं ।

चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय ३० में अथर्ववेद में वैद्य की भक्ति का आदेश है । यथा—

अथर्ववेदभक्तिरादेश्या ।

काश्यपसंहिता पृ० ४१ पर भी ऐसा मत प्रदर्शित है—

अथर्ववेदोपनिषत्सु प्रागुत्पन्नः ।

अर्थात्—आयुर्वेद अथर्व-उपनिषत् के रूप में पहले उत्पन्न हुआ ।

अतः निर्विवाद है कि अथर्ववेद में आयुर्वेद-विद्या का मूल-बीज प्रधान रूप से उपस्थित है ।

अथर्ववेद विषयक भ्रान्तमत—आथर्वण शान्ति, स्वस्त्ययन, अभिचार, उद्वासन, वशीकरण आदि को यथार्थ रूप से न समझ कर अनेक लोगों ने आथर्वण मन्त्रों की निन्दा की है । अभी-अभी प्रकाशित होने वाले एक ग्रन्थ में लिखा है—

The crudity of early Indian medicine can be judged from the Atharvaveda, which betrays belief in the demons of disease and prescribes spells as cures.

The Age of Imperial Unity, Nov. 1951, p. 276; Ch. XVI, by M.A. Mehendale M.A., Ph. D.

अर्थात्—अथर्वान्तिर्गत पुरातन वैद्यक अनघड़ थी। उसमें रोग-उत्पन्न करने वाले राक्षसों में विश्वास है और मन्त्रों द्वारा रोग-नाश बताया गया है।

अथर्ववेद में रोग के कीटाणु ही राक्षस हैं। इस तथ्य को न जान कर अध्यापक मेहेण्डेल ने अपने अज्ञान का प्रदर्शन किया है। तथा आत्म-तत्त्व को न समझ कर अध्यापक ने लिखा है कि मन्त्र-द्वारा रोग-नाश का विश्वास भ्रम है। मन्त्र-द्वारा रोग-नाश-विद्या पर पृथक् ग्रन्थ में प्रकाश पड़ सकता है।

अथर्ववेद का काल पाश्चात्य और उनके शिष्य वैज्ञानिकब्रुव एतद्देशीय लेखकों ने बहुत अर्वाचीन लिखा है। यथा, ईसा से लगभग १२०० वर्ष पूर्व। यह मत युक्तिरहित अतः अमान्य है।

द्वितीय प्रवचन—कालान्तर में ब्रह्माजी ने जब मनुष्य की मेधा और आयु का ह्रास देखा तो पूर्व-उपदिष्ट आयुर्वेद को आठ अङ्गों में विभक्त कर दिया। यथा—

ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चालोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान्। इति। सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान १।६॥

आठ अंग—काश्यपसंहिता विमानस्थान पृ० ४२ पर लिखा है—

नस्य कौमारभृत्यं, कायचिकित्सा, शल्याहर्तृकं, शालाक्यं, विषतन्त्रं, भूततन्त्रमगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रमिति।

सुश्रुतसंहिता, सूत्र १।७ में इन आठ तन्त्रों का निम्नलिखित क्रम है—

शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगद, रसायन तथा वाजीकरण।

चरकसंहिता, सूत्र ३०।२८ में लिखा है—

कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्यापहर्तृक, विष-गर-वैरोधिक-प्रशमन, भूतविद्या, कौमारभृत्य, रसायन, वाजीकरण।

क्रम-कारण—काश्यपसंहिता कौमारभृत्य तन्त्र है, उसमें कौमारभृत्य तन्त्र को अष्टाङ्ग परिगणन में प्रथम स्थान दिया है। सुश्रुत शल्यतन्त्र है, अतः उसमें शल्यतन्त्र का प्रमुख स्थान है। चरकसंहिता में इसी कारण से कायचिकित्सा का प्रथम उल्लेख है।

त्रेतायुग के आरम्भ में ये तन्त्र विद्यमान थे, इसका प्रमाण छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।२ में मिलता है—

भगवान् सनत्कुमार से नारद कहता है—

ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां······भगवोऽध्येमि।

यह भूतविद्या अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक अङ्ग है। इस एक अङ्ग के

विद्यमान होने से आयुर्वेद के अन्य अङ्ग भी तब उपलब्ध थे, यह स्वतः सिद्ध है।

सर्वज्ञानवित् ब्रह्मा—समस्त प्राचीन शास्त्रों में ब्रह्मा जी को सर्वज्ञानमय कहा है। सब वैज्ञानिक तथा दार्शनिक शास्त्र इस विषय को प्रमाणित करते हैं कि इस सृष्टि में सर्वप्रथम ब्रह्माजी द्वारा ज्ञान का प्रकाश हुआ। ब्रह्माजी ने चारों वेदों के अतिरिक्त आयुर्वेद, व्याकरण-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, ब्रह्मज्ञान, धनुर्वेद, पदार्थ विज्ञान, राजनीति-शास्त्र, अश्वशास्त्र, हस्ति-शास्त्र, वृक्ष-आयुर्वेद आदि अनेक प्रकार के शास्त्रों का ज्ञान संसार को दिया। इनका विस्तृत वर्णन प्राचीन इतिहास विशेषज्ञ श्री पं० भगवद्दत्त कृत 'भारत-वर्ष का बृहद् इतिहास' भाग द्वितीय अध्याय तृतीय में देखें।

प्रजोत्पादन से पूर्व आयुर्वेदोपदेश—सुश्रुत तथा काश्यपसंहिता के पूर्व-लिखित प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रजाओं की उत्पत्ति से पूर्व, जब न रोग था न रोगी, तब निदान और चिकित्सा सहित समस्त आयुर्वेद के ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। विकासमत की भित्ति पर स्थित वर्तमान चिकित्सा पद्धति को यह एक भारी चुनौती है। सुश्रुत ही नहीं परन्तु अनेक आर्ष-ग्रन्थों से इस ऐतिहासिक सत्य को प्रमाणित किया जा सकता है कि रोगों का निदान और चिकित्सा का ज्ञान रोगों की उत्पत्ति से पूर्व मिल चुका था। यह बात त्रिकाल-ज्ञान के कारण हुई।

ऐलोपैथी की अपूर्णता—ऐलोपैथी गत दो-तीन सौ वर्ष में प्रायः अधूरे अनुभवों के आधार पर खड़ी हुई है। इसके सिद्धान्त अभी तक निश्चित नहीं हो सके। विकासमत की भित्ति पर खड़े होने के कारण इसमें आए दिन परि-वर्तन हो रहे हैं और होते रहेंगे।

आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त निर्भ्रान्त-सत्य पर आश्रित होने के कारण आदि-सृष्टि से आज तक अपरिवर्त्तित हैं। इसी कारण गत कई सौ वर्षों की भया-नक विघ्न-बाधाओं के होने पर भी आयुर्वेद संसार का उपकार कर रहा है।

ग्रन्थ नाम—भावप्रकाश में भावमिश्र लिखता है—

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम्॥१।१॥

अर्थात्—विधाता की संहिता का नाम ब्रह्मसंहिता था।

ब्रह्मतन्त्र की दो शाखाएँ—आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा ने दक्ष और भास्कर को दिया। दक्ष की परम्परा में सिद्धान्त का प्राधान्य था, तथा भास्कर की परम्परा में व्याधिनाश अर्थात् चिकित्सा-पद्धति का। चिकित्सापद्धति का उल्लेख हम यथा-स्थान करते जाएंगे।

काल—ब्रह्माजी इस कल्प के आरम्भ में जलप्लावन के पश्चात् आदिकाल में हुए।

संधिसहित कृतयुग के ४८००, त्रेता के ३६००, द्वापर के २४००, कलि के १२००, तथा महाकलियुग के लगभग ४००० वर्ष अब तक हो चुके हैं। इनका सम्पूर्ण योग हुआ १६००० वर्ष। इससे पहले आदिकाल का न्यूनातिन्यून परिमाण १००० वर्ष था। इस प्रकार ब्रह्माजी आज से न्यूनातिन्यून १७००० सत्रह सहस्र वर्ष पूर्व हुए।

यह अवधि अधिक खोज के पश्चात् इतने वर्षों से अधिक सिद्ध हो सकेगी, न्यून कदापि नहीं। भारतीय इतिहास की काल-गणना के विषय में सम्पूर्ण पाश्चात्य अनुमानित-मत, जिन्हें वृथा ही वैज्ञानिक कहा जाता है, सर्वथा भ्रान्त हैं।

आयु—ब्रह्माजी की आयु के विषय में अभी तक पूर्णतया कुछ नहीं कहा जा सकता। अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है कि ब्रह्माजी ने आदिकाल के आरम्भ में प्रथम वार आयुर्वेद का प्रवचन किया। त्रेता युग के आदि में उन्होंने अष्टाङ्ग विभागपूर्वक इसका पुनः उपदेश किया। अतः आदिकाल, कृतयुग, तथा त्रेता के कुछ काल पर्यन्त अर्थात् ६००० वर्ष तक ब्रह्माजी अवश्य जीवित थे।

गुरु और शिष्य—ब्रह्माजी सर्ग के आदि में हुए, अतः उनका गुरु ईश्वर था। उन्होंने आयुर्वेद का उपदेश अपने शिष्य दक्ष-प्रजापति को किया।

अश्विद्वय भी कभी-कभी ब्रह्माजी से साक्षात् उपदेश-ग्रहण कर लेते थे। गदनिग्रह में इसका प्रमाण है। वह स्थल अश्वि-प्रकरण में लिखा जाएगा।

भास्कर ने भी ब्रह्मा जी से आयुर्वेद शास्त्र सीखा, परन्तु उसने स्वतन्त्र-संहिता में चिकित्सा-पद्धति का अधिक विस्तार किया।

ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्ड अध्याय १६ में लिखा है—

> कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।
> स्वतन्त्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः॥

ब्रह्माजी का पुत्र—ब्रह्माजी का ज्येष्ठ पुत्र आत्म-ज्ञान का प्रदाता अथर्वा था।[1] अन्य अनेक ऋषि उनके मानसपुत्र अर्थात् वरे हुए पुत्र थे।

विशेष घटनायें—चरकसंहिता चिकित्सास्थान के प्रमाण से हम पूर्व लिख चुके हैं कि यज्ञ का कटा हुआ शिर अश्वियों ने जोड़ा। इस स्थल की टीका में आचार्य जज्जट 'यज्ञ' का अर्थ 'ब्रह्मा' करता है। चरकसंहिता क

---

१. मुण्डक उपनिषद् १।१।१॥

यही वचन अष्टाङ्गसंग्रह, उत्तर स्थान, पृ० ४७७ पर उद्धृत है। सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, १।१७ में भी इसी घटना का उल्लेख है —

श्रूयते हि यथा–रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति।
.........। ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितम्। इति।

इस प्रमाण से प्रतीत होता है कि ब्रह्माजी का शिर रुद्र द्वारा काटा गया था। यह घटना अभी विचारणीय है। सर्वज्ञानमय ब्रह्मा को अपना शिर कट जाने का पूर्वज्ञान न होना समझ में नहीं आता। संभव है यह अलंकार हो अथवा रुद्र द्वारा यज्ञ-भंग का वर्णन हो।

ब्रह्माजी के योग —यद्यपि ब्रह्माजी का मूल उपदेश अब सुरक्षित नहीं है, तथापि उनके उपदिष्ट सोलह से अधिक योग आयुर्वेद ग्रन्थों में अब भी उपलब्ध होते हैं। उनमें से तीन नीचे लिखे जाते हैं—

चन्द्रप्रभावटी, गदनिग्रह, भाग १, पृ० ११६।

ब्राह्मी तैल।

अष्टाङ्गः हृदय, चि० ६।५५ तथा उत्तर ३६।१५ में ब्राह्म-रसायन वर्णित है। इसका उल्लेख गिरिन्द्रनाथ जी ने नहीं किया।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे
द्वितीयोऽध्यायः

तृतीय अध्याय

२. दक्ष प्रजापति

देवयुग तथा कृतयुग

भारतीय इतिहास में दक्ष नाम के तीन से अधिक व्यक्ति हुए हैं।

१. मानसपुत्र दक्ष।

२. प्राचेतस दक्ष।

३. पार्वति अर्थात् पर्वत-पुत्र दक्ष।

वायुपुराण में ब्रह्मा के नव-मानस-पुत्र तथा मत्स्यपुराण में दश मानस अपिच कई शारीर-पुत्र कहे गए हैं। मानसपुत्रों में एक दक्ष भी था।

भारतीय इतिहास में इक्कीस प्रजापति वर्णित हैं। दूसरा दक्ष इन प्रजापतियों में से एक था। महाभारत आदिपर्व ७०।४ में उसे प्राचेतस दक्ष कहा है। आयुर्वेद की परम्परा में वर्णित दक्ष-प्रजापति प्राचेतस-दक्ष था। अष्टाङ्ग-संग्रह निदानस्थान अ० १ पृ० २ पर इसका प्रमाण है—

> ज्वरस्तु स्थाणुशापात् प्राचेतसत्वमुपागतस्य प्रजापतेः
> क्रतौ······निश्चचार।

अर्थात्—प्रजापति [दक्ष] प्राचेतसपन को प्राप्त हुआ था।

महाभारत आदि. में उल्लिखित है कि मानसपुत्र दक्ष ही दूसरे जन्म में प्राचेतस दक्ष हुआ।

गुरु और शिष्य—दक्ष प्रजापति ने श्री ब्रह्माजी से आयुर्वेदाध्ययन किया—

> ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः।
> जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥

चरकसंहिता, सू० १।४॥

अर्थात्—प्रजापति ने ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट निखिल अर्थात् सम्पूर्ण आयुर्वेद ग्रहण किया। अश्विनीकुमारों ने दक्ष प्रजापति से आयुर्वेद पढ़ा। समस्त उपलब्ध आयुर्वेदीय संहिताओं में यही परम्परा उल्लिखित है।

काल—दक्ष प्रजापति के काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, इतना निश्चित है कि ये कृतयुग के अन्त में हुए।

नाम अथवा नामपर्याय—महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २०७ में लिखा है—

प्राचीनबर्हिर्भगवांस्तस्मात् प्राचेतसो दश ।
दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः ।
तस्य द्वे नाम्नी लोके दक्ष क इति चोच्यते ॥७॥

अर्थात्—प्राचेतस दक्ष को लोक [भाषा] में क भी कहते हैं ।

इसका अभिप्राय यह है कि वेदमन्त्रों में जो क है, वह ऐतिहासिक दक्ष नहीं ।

लोकभाषा में दक्ष कुक्कुट का भी पर्याय है । देखो चरक सं० चि० २।१३ पर जज्जट टीका ।

विशेष वृत्त—आयुर्वेदीय चरकसंहिता चिकित्सास्थान ३।१५,१६ में लिखा है—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।
दिव्यं सहस्रं वर्षाणामसुरा अभिदुद्रुवुः ॥१५॥
तपोविघ्नाशनाः कर्तुं तपोविघ्नं महात्मनः ।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे दक्षः प्रजापतिः ॥१६॥

अर्थात्—द्वितीय-युग अथवा त्रेता (के आरम्भ) में दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में शिव की उपेक्षा की ।

दक्ष-मत निदर्शन—काश्यपसंहिता में चिकित्सासंपत् के चार पादों (भिषक्, भेषज, आतुर, परिचारक) के सम्बन्ध में दक्ष प्रजापति का मत दिया है—

नेति प्रजापतिः प्राह भिषङ्मूलं चिकित्सितम् ।
भिषग्वशो त्रिवर्गो हि सिद्धिश्च भिषजि स्थिता ॥

अर्थात्—चिकित्सासंपत् में आतुर प्रधान नहीं है। चिकित्सा का मूल भिषक् है । शेष तीनों भिषक् के वश में हैं ।

दक्ष प्रजापति के योग—भावप्रकाश में प्रजापति के नाम से महारास्नादि क्वाथ का उल्लेख है ।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे
तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थ अध्याय

३. अश्वि-द्वय

कुल परिचय—कश्यप प्रजापति परमर्षि था। वह अनेक वेदमन्त्रों का द्रष्टा ऋषि दैत्यों, दानवों तथा देवों (आदित्यों) आदि का पिता था। दैत्य, दानव और देव (आदित्य) क्रमशः दिति, दनु और अदिति-नाम्नी दक्ष-प्रजापति की प्रसिद्ध कन्याओं के सन्तान थे। डायोनिसियस (Dionysius) (दानवासुर) और हरकुलीज (Hercules) (=विष्णु) जो कि प्राचीन यवन-साहित्य में अनेक बार वर्णित हैं, दानवों और देवों के नेता थे।

देव अथवा आदित्य संख्या में १२ थे। यवन-लेखक हैरोडोटस (४०० वर्ष ई० पू०) लिखता है—हरकुलीज द्वितीय श्रेणी के १२ देवों में से एक था। इन १२ में से ३ प्रसिद्ध देव विवस्वान्, इन्द्र और विष्णु थे। विवस्वान् (पारसी अथवा ईरानी इतिहास में विवह्वन्त) के चार पुत्र थे, मनु, यम और अश्विद्वय। निरुक्तकार यास्कमुनि (विक्रम से ३१०० वर्ष पूर्व) विवस्वान् आदित्य के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। तदनुसार—
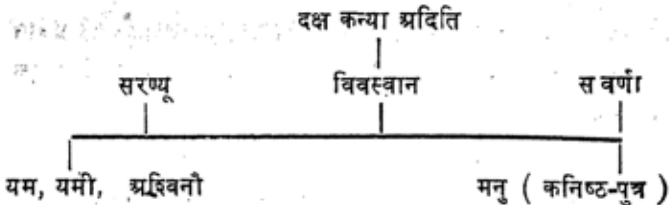
इनमें से मनु भारतवर्ष का और यम ईरान देश का राजा बना। अश्वि-द्वय देव-भिषक् बने।

विद्या-ग्रहण—अश्वियों ने आयुर्वेद शास्त्र अपने मातामह दक्ष-प्रजापति से पढ़ा। शास्त्रों में लिखा है—

(क) अश्विभ्यां कः प्रददौ। काश्यपसं० विमानस्थान, पृ० ४२।

(ख) प्रजापतिः जग्राह निखिलेनादौ, अश्विनौ तु पुनस्ततः।

चरकसंहिता १।४॥

नाम अथवा नाम-पर्याय—अश्विद्वय के पृथक्-पृथक् नाम इतिहास में सुरक्षित हैं। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २०७ में लिखा है—

नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ॥१६॥

यही श्लोक हरिवंश पर्व १, अध्याय ६, संख्या ५५ तथा वायुपुराण अध्याय ८४, श्लोक २४ और ७७ है ।

इस प्रकार इनके प्रमुख नाम अश्विनौ, नासत्यौ, दस्रौ, देवभिषजौ, यज्ञवहौ इत्यादि हैं । मन्त्रों में ये पद व्यक्ति-विशेषों के नाम नहीं हैं ।

काल—विवस्वान् और उसके पुत्र देवयुग में जन्मे ।

आयु—अश्वियों की आयु का पूर्ण-ज्ञान हमें नहीं हो सका, परन्तु थे ये दीर्घजीवी । प्रतीत होता है कि वे कई सहस्र वर्ष जोवित रहे । ब्रह्माजी द्वारा उपदिष्ट दीर्घायु-विषयक गहन-तत्त्वों का ज्ञान तथा अमृतपान इनकी दीर्घायु के कारण थे । आज के युग में आश्चर्यजनक होते हुए भी उस समय यह तथ्य सामान्य था । जो व्यक्ति आयुर्वेद-विशेषज्ञ हैं उनकी आयु अवश्य दीर्घ होनी चाहिए ।

जीवन घटनाएं

१. ओषधि-संस्थान तथा अमृत सृजन—मध्य एशिया में 'वक्षु' नाम की नदी बहती है। अंग्रेजी में इसे 'ऑक्सस' (Oxus) तथा फारसी में 'जेहूं' कहते हैं। इसकी पश्चिम दिशा में कैस्पियन (Caspian) समुद्र विद्यमान है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में वर्णित क्षीर अथवा क्षीरोद सागर ही कैस्पियन समुद्र है ।[1] यह दैत्यों, दानवों, देवों तथा मानवों (मनु की सन्तान) का प्रधान निवास-स्थान था । क्षीरोद-सागर के चारों ओर पर्वत थे । उन पर्वतों में से एक का नाम था चन्द्र-पर्वत । वायुपुराण में लिखा है—

द्वितीयः पर्वतश्चन्द्रः सर्वौषधिसमन्वितः ।
अश्विभ्याममृतस्यार्थे ओषध्यस्तत्र संस्थिताः ॥७॥
पञ्चमः सोमको नाम देवैर्यत्रामृतं पुरा ।
संभृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥१०॥
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यः महाबलाः ।
विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा ॥३५॥ अ० ४६।

अर्थात्—इस पर्वत पर सब प्रकार की ओषधियाँ थीं। अश्विद्वय ने अमृत-सृजन के लिए वहाँ विशेष ओषधियाँ उगाईं । सोमक पर्वत भी वहाँ

---

१. प्राचीन-भारत का भौगोलिक कोश के लेखक श्री० नन्दूलालदे ने यह खोज की है ।

था। उस पर यज्ञ के संभारों में अमृत भी रखा गया। वहीं द्रोणपर्वत पर विशल्यकरणी और मृतसञ्जीवनी ओषधियां थीं।[1]

अमृत के प्रादुर्भाव के लिए ओषधियों का चुनना और उनका युक्त स्थान में उगाना अश्विद्वय का विशेष कार्य था।

अमृत-विषयक आवश्यक बातें—यह प्रसंग अधूरा रहेगा, यदि यहां अमृत-विषय की कुछ आवश्यक बातें न लिखी जाएं। अतः उनका वर्णन आगे किया जाता है।

अमृत-प्रयोजन—काश्यपसंहिता के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट हो जाएगा कि अमृत कब और क्यों उत्पन्न किया गया—

ये देवाश्चासुराश्च कालेन भक्ष्यमाणाः प्रजापतिमेव शरणमीयुः। स एभ्योऽमृतमाचख्यौ। तेऽमृतं ममन्थुस्तदभवदिति कोन्विदमग्रे भक्षयिष्यतीति। तं देवा एवाभक्ष्यन्त। ततो देवा अजराश्चामराश्चाभवन्। ते देवा अमृतेन क्षुधं कालं चानुदन्त। काश्यप सं०, रेवतीकल्प, कल्पस्थान, पृ० १५३।

अर्थात्—देव और असुर मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे। वे प्रजापति अर्थात् ब्र[illegible] की शरण में आए। उसने उन्हें अमृत-प्राप्ति का उपदेश किया। उन्होंने अमृत-मन्थन किया। अमृत प्राप्त कर लिया गया। इसे सबसे पहले कौन खाए। देवों ने ही उसे खाया। उससे देव जरारहित तथा मृत्युमुक्त हो गए। उन देवों ने अमृत से भूख तथा मृत्यु को परे कर दिया।[2]

---

१. वाल्मीकीय रामायण में वहीं से विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी ओषधियां लाने के लिए हनुमान् को आदेश दिए जाने का वर्णन है। देखो, दाक्षिणात्य पाठ, युद्धकाण्ड ५०।२६-३२॥ तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४२।

२. स्पष्ट है कि जितनी ओषधियाँ क्षुधा को जितने काल के लिए शान्त कर दें और शरीर में किसी प्रकार की शिथिलता न आने दें उनमें उतना ही अमृतपन है। अपामार्ग के बीजों में यह गुण है। मत्स्यपुराण अध्याय २१६ के एतद्विषयक दो श्लोक द्रष्टव्य हैं—

शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम्।
क्षुद्योगः कथितो राजन् मासार्धस्य पुरातनैः॥२॥
कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम्।
दूर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः॥३॥

अमृत का स्वरूप तथा सृजन—याजुष काठक ब्राह्मण के वचन से अमृत के यथार्थ रूप तथा सृजन-विधि का कुछ संकेत मिलता है—

देवाश्च वा असुराश्चापां रसममन्थंस्तस्मान्मथ्यमानादमृत-मुदतिष्ठत्ततो यः सर्वतो रसः समस्रवत् स सोमस्तत्सोमस्य सोमत्वम् । इति । काठकब्राह्मणसंकलन पृ० २३ ।

अर्थात्—देव वा असुरों ने जलों के तत्त्वों को (जो अद्वितीय प्रभावयुक्त ओषधियों से निकाला गया था) मिश्रित किया। उस मिश्रण से अमृत उत्पन्न हुआ।

वायुपुराण, ६२।१७५-१९३ में पृथ्वी के दश बार दोहन का बड़ा सुन्दर वर्णन है। तृतीय बार का दोहन देवों ने इन्द्र नेतृत्व में किया—

पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरंदरपुरोगमैः ।
सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ॥१७६॥

अर्थात्—ओषधियों का अमृतरस मही [अमृतालय] की स्तुति के पश्चात् सुवर्ण-पात्र में एकत्र किया गया।

अमृतालय—क्षीरोद के पास अमृतालय एक स्थान-विशेष था। वहीं दक्ष का जन्म हुआ—

स्रग्वी कुकुद्मी द्युतिमानमृतालयसंभवः॥ वायु० ६६।७६॥

विष-उत्पत्ति—अमृतमन्थन के समय ओषधि-रस के ऊपर जो प्रथम फेन आया, वह विष था। आलंकारिक भाषा में उसका विग्रहवान् रूप चरकसंहिता आदि में वर्णित है—

अमृतार्थं समुद्रे तु मथ्यमाने सुरासुरैः ।
जज्ञे प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥४॥

आयुर्वेद-विशेषज्ञों को इस विषय की खोज करनी चाहिए। योरुपीय जातियों में दिन में चार बार खाने का जो प्रकार बन गया है, वह हानिकर है। वारम्बार भूख का लगना और उसे वारम्बार मिटाना इस मौलिक सिद्धान्त के विरुद्ध अपिच आयु को न्यून करने वाला है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

तस्माद् सायं प्रातराश्येव स्यात्स यो हैवं विद्वान्त्सायंप्रातराशी भवति सर्वं हैवायुरेति ।२।४।२।६॥

अर्थात्—सायं और प्रातः दो काल खाने वाला होवे। पूर्ण सौ वर्ष का आयु प्राप्त करता है।

दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरिकेशोनलेक्षणः ।
जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनासौ विषसंज्ञितः ॥५॥　　च० चि० २३ ।

अर्थात्—देवासुरों द्वारा अमृत-सृजन करते समय अमृतोत्पत्ति से पूर्व विष उत्पन्न हुआ ।

घोर नाम का एक भयंकर दैत्य भी था । वह हालाहल नामक अन्तिम देवासुर संग्राम में मारा गया ।

घोरो हालाहले हतः ॥ मत्स्यपुराण ४७ ।५१॥

वायुपुराण अध्याय ५४ में भी इसी अभिप्राय के श्लोक दो पाठों में उपलब्ध हैं । यथा—

(क)　सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः ।
भुजङ्गभृङ्गसंकाशं　नीलजीमूतसंभवम् ॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥५७॥

इसी प्रकरण में इससे कुछ आगे इसका दूसरा पाठ निम्नलिखित है—

(ख)　सुरासुरैर्मथ्यमाने　पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम् ॥८५॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्योरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ॥८६॥

अमृत उपलब्ध हो गया । उसके महान् प्रभाव को आदि के असुर अथवा देव-शरीर ही सह सकते थे । अश्वि इसके सहस्रों वर्ष पश्चात् तक जीते रहे । देवशरीर अमृत-शरीर हो गए । जैमिनीय ब्राह्मण १।३ में लिखा है—

तेऽब्रुवन् देवशरीरैर्वा इदममृतशरीरैस्समापयाम । न वा इदं मनुष्यास्समाप्स्यन्ति ।

अर्थात्—देव बोले । हम इस [सहस्र संवत्सर के यज्ञ को] देवशरीर अथवा अमृत-शरीर के कारण समाप्त कर सके हैं । मनुष्य [अल्प आयु के कारण] इसे समाप्त नहीं कर सकेंगे ।

परन्तु देव-शरीरों वाले व्यक्ति संसार में पुनः उत्पन्न नहीं हुए, और उतनी बलवीर्ययुक्त ओषधियां भी संसार में न रहीं, अतः दूसरी बार संसार में अमृत उत्पन्न नहीं किया गया । पितरों ने जो स्वधा उत्पन्न की, वह कवि उशना अथवा ईरान के कैकोस के पास थी । उसी स्वधा का उल्लेख सोहराब-रुस्तम की कथा में शाहनामा में फिरदौसी ने पुराने ईरानी इतिहासों के आधार पर किया ।

अवरकाल के ऋषि लोगों ने रसायन आदि के प्रयोग से दीर्घायु प्राप्त

की । मनुष्य उन रसायनों को भी पूरा नहीं सह सकते ।

चतुर्थ देवासुर-संग्राम—बारह संग्रामों में से चौथा देवासुर संग्राम इसी अमृतमन्थन अवसर पर हुआ । अमृत कौन ले, इस पर घोर युद्ध हुआ । इन्द्र विजयी हुआ और प्रह्लाद आदि दैत्य परास्त हुए ।[1]

२. **च्यवन का वार्द्धक्य नाश**—भारतवर्ष के पश्चिम में पुरातन सुराष्ट्र (वर्तमान गुजरात) था । उसका राजा था शर्याति मानव । उसकी सुकन्या नाम्नी कन्या का विवाह भार्गवकुलोत्पन्न जरा-प्राप्त च्यवन नामक महर्षि से हुआ । वृद्ध च्यवन अश्विद्वय की चिकित्सा से यौवन को प्राप्त हो गया । फिर वह दीर्घकाल तक जीवित रहा । यह आख्यान शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१–१२ में उल्लिखित है । जैमिनीय ब्राह्मण और शाट्यायन ब्राह्मण में भी यह आख्यान उपलब्ध होता है । चरक सं० चिकित्सास्थान १।४४ में भी इस घटना का संकेत है । "च्यवनप्राश" नामक प्रसिद्ध औषध च्यवन के नाम से प्रचलित है ।

३. **श्वेतकेतु आरुणेय का किलास-हरण**—याज्ञवल्क्यस्मृति का पुरातन टीकाकार आचार्य विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका १।३२ में याजुष चरक-संहिता का निम्नलिखित वचन उद्धृत करता है—

श्वेतकेतुं ह्यारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह । तमश्विनावूचतुः "मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्" इति ।

अर्थात्—अरुणकुलोत्पन्न किलास-ग्रस्त श्वेतकेतु की चिकित्सा अश्विद्वयने की ।

४. **यज्ञशिरःसंधान**—प्राचीन वाङ्मय में यज्ञशिरःसंधान की कथा प्रसिद्ध है । शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१५ का पाठांश नीचे लिखा जाता है—

तावेतद्यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्ताम् तदद्स्तद्दिवाकीर्त्यानां ब्राह्मणे व्याख्यायते यथा यज्ञस्य शिरः प्रतिदधतुः । इति ।

अर्थात्— उन्होंने यज्ञ का शिर जोड़ दिया । यज्ञ का शिर जैसे जोड़ा गया वह दिवाकीर्त्तियों के ब्राह्मण में व्याख्यात है । प्रतीत होता है यज्ञ की कोई क्रिया भूल गई थी, अश्वियों ने उसे ठीक किया, यही यज्ञशिरःसंधान था । निश्चय नहीं कि इस कथा में अलङ्कार कितना है तथा ऐतिहासिक अंश कितना । महाभारत, पुराण तथा चरकसंहिता आदि में इसी प्रकार की कथा का संकेत है । वहाँ अश्वियों द्वारा यज्ञ (ब्रह्मा) का सिर जोड़े जाने का वर्णन है । इस विषय के प्रमाण पूर्व पृ० १६, १७ पर लिख चुके हैं ।

५. **पूषा की दन्तचिकित्सा**—ब्राह्मण ग्रन्थों में अदन्तकः पूषा वचन

---

१. प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने । मत्स्यपुराण ४७।४८॥

मिलता है। चरक चिकित्सास्थान, रसायनपाद १।४२ में उल्लेख है कि पूषण के प्रशीर्ण दांतों की चिकित्सा अश्वियों ने की।

६. **भग-नेत्र-चिकित्सा**—दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शिव ने भग-नेत्र हरे।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में **अन्धो भगः** पाठ मिलता है। चरक चि०, रसायनपाद, १।४२ से ज्ञात होता है कि उनकी चिकित्सा अश्वियों ने की।

७. **भुज-स्तम्भ-चिकित्सा**—चरक चि०, रसायनपाद १।४२ से यह विदित होता है कि अश्वियों ने इन्द्र की स्तब्ध-भुजा को रोगमुक्त किया।

८. **चन्द्र-यक्ष्म-मोचन**—चन्द्र यक्ष्मारोग से आक्रान्त हुआ। चरक चिकित्सास्थान, रसायनपाद १।४२ से स्पष्ट होता है कि उसे भी अश्वियों ने नीरोग किया।

वेदमन्त्रों में वर्णित **अश्विनौ** यास्क के अनुसार द्यावापृथ्वी, अहोरात्र, सूर्य-चन्द्र आदि हैं, अतः तत्सम्बन्धी घटनाएं मानव-इतिहास-परक नहीं हैं।

९. **नेत्राञ्जन-निर्माण**—अष्टाङ्गहृदय का टीकाकार हेमाद्रि किसी प्राचीन ग्रन्थ के प्रमाण के आधार पर लिखता है—

इन्द्र का वृत्रासुर के साथ युद्ध हुआ। युद्ध-गमन से पूर्व अश्वियों ने इन्द्र के लिए एक विशेष मांगल्य नेत्राञ्जन बनाया। अष्टाङ्गहृदय टीका, सूत्रस्थान ७।२६॥

१०. **त्रिबन्धुर-रथ**—संस्कृत-वाङ्मय के पाठ से ज्ञात होता है कि अश्विद्वय अटनशील थे। बृहद्देवता ३।८६ में लिखा है—

बृहस्पतेरथाश्विभ्यां रथं दिव्यं त्रिवन्धुरम्।

यह रथ उनके लिए आङ्गिरस सुधन्वा के तीन पुत्रों ने बनाया था। ये तीन पुत्र यन्त्र-विद्या-विशेषज्ञ त्वष्टा के शिष्य थे।

गुरु-शिष्य—पूर्व लिख चुके हैं कि अश्विद्वय ने अपने मातामह दक्ष-प्रजापति से आयुर्वेद पढ़ा। समय-समय पर अश्वियों ने साक्षात् पितामह से भी चिकित्सा-क्रिया का उपदेश ग्रहण किया—

सुखोपविष्टं ब्रह्माणमश्विनौ वाक्यमूचतुः।
………कतिजातिश्च कीर्त्यते।
अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥

गदनिग्रह द्वितीय भाग पृ० ६७५ हरीतकीकल्प।

अश्वियों के पितृव्य (चचा) इन्द्र ने उनसे समस्त आयुर्वेद पढ़ा।

---

१. सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र ३७।१३॥

वर्ण—ब्राह्मण अश्वि इन्द्र के समान राज्यशासन में भाग लेकर क्षत्रिय नहीं हुए। चिकित्सा द्वारा धनप्राप्त करने के कारण वे हीन-वर्ण हो गए। महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है—

अश्विनौ तु मतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समाहितौ ।२०१।२३।।

अर्थात्=उग्र तप करने पर भी अश्विद्वय शूद्र माने जाते हैं।

पहले यज्ञ आदि में उनका भाग नहीं था। च्यवन के विद्यादान देने के पश्चात् वे यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी बने।

ग्रन्थ

१. आश्विन संहिता—चिकित्सा-विशेषज्ञ, देवभिषक्, अश्विद्वय ने आयुर्वेद का ग्रन्थ रचा। गदनिग्रह, प्रथमभाग पृ० ६६ पर हिंग्वादिचूर्ण के अन्त में **'आश्विनसंहितायाम्'** पाठ उपलब्ध होता है। यथा—

शूलानि नाशयति वातबलासजानि
हिंग्वाद्यमुक्तमिदमाश्विनसंहितायाम् ।।

गदनिग्रह भाग प्रथम पृ० ६१ ।

नावनीतक में भी आश्विनसंहिता उद्धृत है। अध्याय ११ अंतर्गत हरीतकी कल्प आश्विनसंहिता से लिया गया है। यह मूल संहिता इस समय प्राप्त नहीं, परन्तु किसी किसी ग्रन्थ में इसके उद्धरण मिलते हैं। भावप्रकाश में भी आश्विनसंहिता उद्धृत है।

पं० भगवद्दत्त जी को कांगड़ान्तर्गत ज्वालामुखी पर्वत से अश्विसंहिता के ज्वरप्रकरण के कतिपय पत्रे प्राप्त हुए थे। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये पत्र मूलसंहिता का अंश रखते थे वा नहीं।

बड़ोदा के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचिपत्र के पृ० १२६२ तथा संख्या ६२८ पर १० पत्रात्मक आश्विनेयसंहिता का हस्तलेख सन्निविष्ट है।

२. चिकित्सासार तन्त्र—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार अश्वियों ने चिकित्सा-पद्धति पर एक ग्रन्थ रचा। यथा—

चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नञ्चाश्विनीसुतौ।

ब्रह्मखण्ड अ०, १६ ।

३. भ्रमघ्न—पूर्वोक्त प्रमाण के अनुसार यह भी चिकित्सा-पद्धति का ग्रन्थ था। ब्रह्मवैवर्त पुराण में आयुर्वेद की परम्परा में चिकित्सा-पद्धति के ग्रन्थों का उल्लेख प्रतीत होता है।

चरकसंहिता आदि प्रधानतया सिद्धान्त ग्रन्थ हैं और आमूलचूल चिकित्सातन्त्र इनसे पृथक् थे।

४. **नाडी परीक्षा**—मद्रास सरकार के हस्तलिखित पुस्तकालय की सूची, भाग २३, संख्या १३१५१ में यह लघुग्रन्थ सन्निविष्ट है। तदनुसार इसके अन्त में लिखा है—

अश्विनीदेवताकृतौ नाडीपरीक्षा सप्त-
विंशतिश्लोकाः समाप्ताः।

संभवतः यह किसी बृहद् ग्रन्थ का एक भाग है।

५. **धातुरत्नमाला**—बीकानेर राज के संग्रह में यह ग्रंथ संख्या १३६३ के नीचे निविष्ट है। वह प्रति संवत् १७१७ की लिखी हुई है। इसके अंत में लिखा है—

इति वैद्यकशास्त्रे अश्विनीकुमारसंहितायां
रत्नमाला समाप्ता।

इस ग्रन्थ में सुवर्ण, रजत, ताम्र, यशद आदि का वर्णन है। संभवतः यह भी स्वतन्त्र ग्रन्थ न था।

योग— **अश्वि-निर्दिष्ट ४० योग गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ में एकत्र किए हैं।**

वृन्द ७४।६ में अश्विदृष्ट रसायन उल्लिखित है। वङ्गसेन (हेमाद्री, पृ० ५८१) में अश्विविहित रक्तपित्तनाशन तथा (हेमाद्री, पृ० ६००) वाजिगन्धासर्पि उल्लिखित हैं। मुखोपाध्याय जी ने इनका उल्लेख नहीं किया।

नेपाल के राजगुरु श्री पं० हेमराज शर्मा काश्यपसंहिता के परिशिष्ट पृ० २३४ पर लिखते हैं कि ज्वरसमुच्चय नामक पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थ में अश्वियों के ज्वर-विषयक अनेक श्लोक उद्धृत हैं। संभव है, वहां ज्वर-चिकित्सा के अश्वि-निर्दिष्ट योग भी हों।

पाश्चात्य भाषा-मत—आयुर्वेदीय ब्रह्मतन्त्र और आश्विनसंहिता आदि का अति पुरातन काल में अस्तित्व, भाषा-विषयक कल्पित जर्मनमतों पर एक वज्र प्रहार है। वैज्ञानिक-ब्रुव ऐतिहासिक इसका उत्तर दें। उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों से सहस्रों वर्ष पूर्व लोकभाषा के ये ग्रन्थ विद्यमान थे।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चम अध्याय

देवराज इन्द्र

कृतान्तर्गत देवयुग

वंश—इन्द्र कश्यप प्रजापति का पुत्र था। इसकी माता-दक्ष-प्रजापति की कन्या अदिति थी। कौटल्य के अर्थशास्त्र में बाहुदन्ती-पुत्र का मत दिया है। प्राचीन टीकाकारों के अनुसार बाहुदन्ती-पुत्र इन्द्र ही था। हो सकता है अदिति का अपरनाम बाहुदन्ती हो। इन्द्र आदि बारह भ्राता थे। यथा, महाभारत शान्तिपर्व (पूना सं०) अ० २०१ में लिखा है—

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥१४॥
भगोंऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा।
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ॥१५॥
पूषा त्वष्टा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते।
त एते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥१६॥

अर्थात्—भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, इन्द्र, विष्णु ये बारह आदित्य थे।

अदिति के पुत्र होने से ये आदित्य कहाते थे।[1] श्रेष्ठ गुण-युक्त होने से वे देव कहाते थे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि और सोम भी इन्द्र के भाई थे, परन्तु सहोदर नहीं। इन्द्र भास्कर से छोटा तथा विष्णु सबसे छोटा था। यह वही इन्द्र था जिसने देवासुर संग्रामों में भाग लिया। इन्द्र की धर्मपत्नी शची थी। निम्नलिखित वंशवृक्ष से पूर्वोक्त सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो जायगा—

कश्यप + अदिति

भग | अंश | अर्यमा | मित्र | वरुण | सविता | धाता | विवस्वान् | पूषा | त्वष्टा | इन्द्र | विष्णु

1. दिति–अदिति–आदित्य–पति-उत्तरपदाण्ण्यः। अष्टाध्यायी ४।१।८५॥ पाणिनि ने किन्हीं कल्पित (mythical) व्यक्तियों के लिए यह सूत्र नहीं बनाया। वह वेद और लोक में इनके अर्थ जानता था।

नाम तथा पर्याय—इन्द्र, शक्र, शतक्रतु, अमरप्रभु, अमरेश्वर, शचिपति, सहस्राक्ष आदि नाम अथवा नामपर्याय विशेष कारणों से बने हैं। आयुर्वेद की परम्परा में वर्णित इन्द्र का मूलनाम क्या था, इसका अभी निश्चय नहीं। इन्द्र गुणनाम है। महाभारत शान्तिपर्व २१७। ५४ में लिखा है—

बहूनीन्द्रसहस्राणि समतीतानि वासव।

अर्थात्—अनेक इन्द्र हो चुके हैं।

तैत्तिरीय संहिता ७।२।१० का प्रमाण इस बात को और भी स्पष्ट करता है—

तेनेन्द्रं प्रजापतिरयाजयत् ततो वा इन्द्र इन्द्रोऽभवत्
तस्मादाहुर् आनुजावरस्य यज्ञः। इति।

अर्थात्—प्रजापति कश्यप ने इन्द्र का यज्ञ कराया। तब इन्द्र इन्द्र बना।

वेद में इन्द्र शब्द के भिन्न अर्थ हैं। ऐतिहासिक इन्द्र का उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

चरकसंहिता सूत्रस्थान में इन्द्र के निम्नलिखित विशेषण हैं—

१. शचीपति १।१८॥
२. बलहन्ता १।२०॥
३. सुरेश्वर १।२१॥
४. अमरप्रभु १।२२॥
५. शतक्रतु[1] १।२३॥

चरक चि० १।४।३—८ में तीन अन्य विशेषण प्राप्त होते हैं। अमराधिपति, सहस्रदृक्, अमरगुरु।

विष्णुगुप्त कौटल्य का सहस्राक्ष का अर्थ—मौर्य-साम्राज्य का महामन्त्री ब्राह्मण-प्रवर आचार्य चाणक्य अर्थशास्त्र में लिखता है—

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषद् ऋषीणां सहस्रम्। स तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः। आदि से अध्याय १५।

हे पाश्चात्य ऐतिहासिकब्रुवो सोचो, क्या वह महापुरुष मिथिकल (mythical) था।

कौटल्य अर्थशास्त्र १।८ में इन्द्र का एक पर्याय "बाहुदन्ती-पुत्र मिलता है।

---

१. अष्टांग संग्रह सूत्रस्थान में—शतक्रतवे ददौ ततः, पाठ मिलता है। शान्तिपर्व २२०।२६ अनुसार अनेक शतक्रतु।

पिंगल छन्द का टीकाकार यादवप्रकाश इन्द्र का एक नाम "दुश्च्यवन" लिखता है।

अर्जुन—माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण २।१।२।११ तथा ५।४।३।७ में लिखा है—

अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम।

अर्थात्—इन्द्र का गुह्य नाम अर्जुन है।

पारसी-धर्म-पुस्तक अवेस्ता में इन्द्र का द्रुजेम् नाम वर्णित है। द्रुजेम् नाम का अंग्रेजी रूपान्तर Dragon है। हओम यस्त में लिखा है—

यो जनट अज़ीं दहाकेम्, थ्रि जफनेम् थ्रि कमेरेधेम् ख्शवस् अशीम्, हजन् यओख्शतीम् अश अओजन्हेम् दस्वीम् द्रुजेम् (Dragon) अघेम् गाएथाव्यो।[१]

Who killed Azi dahaka three-jawed, three headed; six-eyed and with one thousand powers (of deceit) the very strong devilish, druj, evil to the living creatures.[1]

अर्थात्—जिस द्रुजेम्=अर्जुन नें त्रिशीर्ष और षडक्ष अहिदानव का वध किया।

काल—इन्द्र ने जिन देवासुर संग्रामों में भाग लिया वे त्रेता के आरम्भ में हुए। त्रेता के अन्त में इन्द्र ने आयुर्वेदोपदेश किया, अतः त्रेता के लगभग ४०० वर्ष व्यतीत होने पर अर्थात् विक्रम से लगभग ८५०० वर्ष पूर्व इन्द्र अवश्य था। यहां हमने काल का न्यूनतम मान लिखा है। बहुत संभव है, इन्द्रादि देव इस से सहस्रों वर्ष पूर्व हुए हों।

यवन ऐतिहासिक हेरोडोटस (विक्रम से लगभग ४०० वर्ष पूर्व) मिश्र की अनवच्छिन्न परम्परा के आधार पर लिखता है—

Seventeen thousand years before the reign of Amasis, the twelve gods were, they affirm, produced from the eight and of these twelve Herculese is one.

(Book II, Ch. 43)

अर्थात्—एमिसिस (विक्रम से लगभग ५०० वर्ष पूर्व) के काल से सत्रह सहस्र वर्ष पूर्व आठ अथवा बारह देव हुए। हरकुलीज=विष्णु उनमें से एक था।

---

1. A. I. O. C., Mysore, 1937, p. 147.

पं० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग[1] में हेरोडोटस के इस वचन की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। पं०जी प्रबल प्रमाणों से सिद्ध करते हैं कि ये बारह देव विवस्वान्, इन्द्र आदि बारह भ्राता थे। अतः इन्द्रादि का काल आज से लगभग २० सहस्र वर्ष पूर्व है। आयुर्वेद विद्या तब से संसार का कल्याण कर रही है।

वेदों को ईसा से २००० वर्ष पूर्व मानने वालों के पास इसका कोई उत्तर नहीं।

आयु—ब्रह्मा के पश्चात् दूसरा दीर्घजीवी ऋषि इन्द्र हुआ। बहुशास्त्रवित् इन्द्र की आयु का ठीक अनुमान अभी कठिन है। इतना अवश्य कह सकते हैं कि वह दीर्घायु था। अध्यात्म-ज्ञान के लिए प्रजापति कश्यप के समीप उसने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य वास किया। इन्द्र ने अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज को तृतीय पुरुषायुष की समाप्ति पर वेद की अनन्तता का उपदेश किया। शांखायन श्रौतसूत्र १४।१२ में लिखा है—

अथातः सौत्रामणः ।१। इन्द्रो हायुष्कामस्तपस्तेपे। स तपस्तप्त्वा एतं यज्ञक्रतुमपश्यत् सौत्रामणम्। तमाहरत। तेनायजत। तेनेष्ट्वा दीर्घायुत्वमगच्छत्। तमु ह भरद्वाजाय जीर्णाय प्रोवाच। अनेन वा अहमिष्ट्वा दीर्घायुत्वमगच्छमनेनापि त्वं यजेति। तेन ह भरद्वाज इष्ट्वा सर्वायुत्वमगच्छत् ॥२॥

अर्थात्—आयुष्काम इन्द्र ने तप तपा। उसने सौत्रमणि यज्ञ देखा। उस यज्ञ को उसने किया। वह दीर्घायु हुआ। उसी यज्ञ का उपदेश उसने अतिवृद्ध भरद्वाज के लिए किया। इसी से मैं दीर्घायु हुआ हूं। भरद्वाज भी उस यज्ञ को करके दीर्घायु हुआ।

जिस इन्द्र ने भरद्वाज को बारम्बार युवा किया, जो स्वयं रसायनज्ञ वैद्य तथा प्रजापति के आयुष्काम ग्रह का ज्ञाता था, वह यदि स्वयं दीर्घजीवी हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

गुरु और विद्याध्ययन—इन्द्र ने अनेक गुरुओं से विविध विद्याएं ग्रहण कीं। विशेष परिश्रम और गुरुपद-सेवन से इन्द्र बहुशास्त्रवित्[2] हो गया। अधो-लिखित पंक्तियों में उसकी गुरुपरंपरा का उल्लेख है—

१. आयुर्वेद—चरकसंहिता आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों के अनुसार इन्द्र ने

---

१. पृ० १२७, २१९–२२८ तथा २६८–२७६।

२. शान्तिपर्व २२१।१७ के अनुसार सर्ववित्।

अपने भ्रातृपुत्र अश्विद्वय से आयुर्वेदज्ञान प्राप्त किया। चरकसंहिता सूत्रस्थान, १ में लिखा है—

अश्विभ्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥५॥

अर्थात्—केवल इन्द्र ने अश्विद्वय से आयुर्वेदज्ञान उपलब्ध किया। इसका अभिप्राय स्पष्ट है। अश्वियों ने इन्द्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण आयुर्वेद और किसी को नहीं पढ़ाया। चरकसंहिता, चि० १।४।४ के अनुसार इन्द्र स्वयं कहता है—

आत्मनः प्रजानां चानुग्रहार्थम् आयुर्वेदम् अश्विनौ मह्यं प्रायच्छताम्।

अर्थात्—आत्मीय तथा प्रजाओं के अनुग्रह के लिए आयुर्वेद को अश्वियों ने मुझे दिया।

सुश्रुतसंहिता १।२० में भी लिखा है—

अश्विभ्यामिन्द्रः

अर्थात्—इन्द्र ने अश्विद्वय से आयुर्वेद सीखा।

२. **आत्मज्ञान**—छान्दोग्य उपनिषद् ८।७-११ के अनुसार इन्द्र ने प्रजापति से आत्मज्ञान प्राप्त किया।

३. **मीमांसाशास्त्र**—श्लोकवार्तिक के टीकाकार पार्थसारथिमिश्र ने मीमांसा की परम्परा के विषय में एक प्राचीन वचन उद्धृत किया है। तदनुसार इन्द्र ने मीमांसादर्शन भी प्रजापति से पढ़ा।[1]

४. **शब्दशास्त्र**—ऋक्तन्त्र तथा पातञ्जल महाभाष्य १।१।१ के अनुसार इन्द्र ने बृहस्पति से शब्दशास्त्र का अध्ययन किया।

५. **पुराण**—वायुपुराण १०३।६० से सिद्ध होता है कि मृत्यु-यम ने इन्द्र को पुराण का उपदेश किया।[1]

६. **नीतिशास्त्र**—बार्हस्पत्य अर्थसूत्र में इन्द्र का बृहस्पति से नीतिशास्त्र पढ़ने का उल्लेख है।[1]

७. **छन्दशास्त्र**—पिंगल छंदशास्त्र के टीकाकार यादवप्रकाश के मतानुसार बृहस्पति ने दुश्च्यवन इन्द्र को छंदशास्त्र पढ़ाया।[2]

---

१. इनके प्रमाणों के लिए देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० ४६ तथा ५७-५८।

२. इसका प्रमाण देखो पं० भगवद्दत्तजी कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग पृ० २४६।

८. मन्त्रद्रष्टा—बहुशास्त्रवित् इन्द्र मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी था। शतपथ ब्राह्मण ६।५।२।१ में लिखा है—

इन्द्र एतत् सप्तर्चमपश्यत्।

अर्थात्—इन्द्र ने यह सात ऋचा का सूक्त देखा।

कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद १०।४८, ४९, ५० का ऋषि इन्द्र वैकुण्ठ है। ऋग्वेद १०।८६ का ऋषि इन्द्र और इन्द्राणी दोनों हैं। शतपथ ब्राह्मण तथा सर्वानुक्रमणी के लेख से स्पष्ट है कि इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति था।

पाश्चात्य लेखक और अनुक्रमणी—योरुपीय लेखकों ने जब देखा कि सर्वानुक्रमणी के प्राचीन लेख में पुरातन इतिहास अत्यन्त स्वच्छरूप में सुरक्षित है, तथा उस इतिहास से उनका कल्पित भाषामत (philology) खंडित होता है, तो उन्होंने सर्वानुक्रमणी के लेख को असत्य कह दिया। यथा—

(क) जर्मन लेखक ओल्डनबर्ग लिखता है—"pseudo-tradition of the Anukramani"

अर्थात्– अनुक्रमणी की ऐतिहासिक-परंपरा असत्य है।

(ख) तत्पश्चात् अमरीकी लेखक ब्लूमफील्ड ने लिखा है—

"The Statements of the Sarvanukramani,......... betray the dubiousness of their authority"—

अर्थात्—सर्वानुक्रमणी का लेख उसकी प्रामाणिकता की संदिग्धता को बुरे रूप से स्पष्ट करता है।

आलोचना—हेतु और उदाहरणरहित योरुपियन लेखकों की पूर्वोक्त प्रतिज्ञाएं उनकी तथा उनके भाषामत के पराजय की द्योतक हैं। सर्वानुक्रमणी का आधार ब्राह्मणग्रन्थ हैं। ब्राह्मणग्रन्थों की आचार्य-परंपरा अनवच्छिन्न रही है। इस योरुपीय पक्ष का खंडन श्री पं० भगवद्दत्तजी ने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, सं० १९८४, पृ० १६४-१६७ पर किया है। उसका उत्तर न देकर जे. ए. फान-वेल्जे ने अपने ग्रन्थ Names of Persons in early Sanskrit Literature, पृ० ३४ पर पुनः इस मत को दोहराया है। पं० भगवद्दत्त जी ने इस मत की निःसारता पर भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २७५-७६ पर कुछ और प्रकाश डाला है।

९. ब्राह्मणप्रवक्ता—सहस्राक्ष इन्द्र ब्रह्मवादी था। महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ५८ में लिखा है—

सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥२॥
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः ॥३॥

अर्थात्—सहस्राक्ष महेन्द्रादि ने राजशास्त्र का निर्माण किया। वे सब ब्रह्मवादी थे।

शास्त्रोपदेश—इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति कश्यप के पास १०१ वर्ष का दीर्घब्रह्मचर्य वास किया तथा अनेक ज्ञानवृद्ध महात्माओं का सत्संग किया। गुरुपद-सेवन से इन्द्र ज्ञानगरिमान्वित हुआ। ज्ञान की प्रवृद्ध-गंगा उपदेशरूप में बह निकली। उसी से इन्द्र देवप्रवर हुआ। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—

इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानाम्। उपदेशनात् ।२।३।१।३॥

अर्थात्—इन्द्र निश्चय ही देवों में श्रेष्ठ है। उपदेश करने से।

शिष्यमंडल—आर्यप्रथा के अनुसार विद्या का संचय उसके अधिकाधिक प्रसार के लिए होता है। इन्द्र ने भी स्थान-स्थान से एकत्रित विद्याधन शिष्यमंडल में वितरण किया। इन्द्र के बहुश्रुत होने के कारण उसके शिष्य भी अनेक थे।

इन्द्र से आयुर्वेद-अध्येता

१—१०. भृगु, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम आदि १० तथा कुछ अन्य ऋषियों को इन्द्र ने अनुष्ठान (practice) के लिए कुछ योग बताए। चरकसंहिता चि० १।४।३–६ में लिखा है—

अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यः संक्राम्योवाच-एतत् सर्वमनुष्ठेयम् ।इति।

अर्थात्—तब इन्द्र उस आयुर्वेदामृत को ऋषियों के लिए देकर बोला, यह सब अनुष्ठान-योग्य है।

काश्यपसंहिता, वि० पृ० ४२ पर भी ऊपर वाले दश ऋषियों में से चार के नाम मिलते हैं। यथा—

इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः काश्यपवशिष्ठात्रिभृगुभ्यः।

अर्थात्—इन्द्र ने कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि तथा भृगु, इन चार ऋषियों को आयुर्वेद का उपदेश किया।

११. भरद्वाज—चरकसंहिता सू० १।१६–२३ में लिखा है—

भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादृषिभिः स नियोजितः ॥१६॥
तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः।
पदैरल्पैर्मतिं बुद्ध्वा विपुलां परमर्षये ॥२३॥

अर्थात्—आयुर्वेद-सम्मेलन में भृगु आदि ऋषियों ने परमर्षि भरद्वाज को इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहणार्थ नियुक्त किया। भगवान् शतक्रतु ने परमर्षि की विपुला बुद्धि को जान कर अल्प-शब्दों में उसे आयुर्वेद का उपदेश किया।

इस प्रकार इन्द्र से आयुर्वेद सीखने वाले शिष्यों में भरद्वाज भी एक थे। ऋक्तन्त्र के उद्धरण से ज्ञात होता है कि भरद्वाज के लिए व्याकरण शास्त्रोपदेष्टा भी इन्द्र ही थे।[1]

१२. पुनर्वसु आत्रेय—आत्रेय पुनर्वसु का इन्द्रशिष्यत्व विवादास्पद है। चरक, सू० १।२७–३० के अनुसार आत्रेय पुनर्वसु भरद्वाज का शिष्य है, परन्तु अष्टाङ्गहृदय १।३ में वाग्भट ने लिखा है—

सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्।

अर्थात्—सहस्राक्ष=इन्द्र से आत्रेय आदि मुनियों ने आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

इस उद्धरण से स्पष्ट हुआ कि वाग्भट आत्रेय पुनर्वसु को भरद्वाज का नहीं, अपितु साक्षात् इन्द्र का शिष्य मानता है।

१३. धन्वन्तरि—सुश्रुत, सू० १।२० में लिखा है—

इन्द्रादहम्

अर्थात्—धन्वन्तरि ने इन्द्र से आयुर्वेद ज्ञान उपलब्ध किया।

५. पुनर्वसु, धन्वन्तरि, भरद्वाज, निमि, काश्यप, आलम्बायन आदि महर्षि संसार के रोगपीड़ित होने पर शतक्रतु=इन्द्र की शरण में आए। प्रतीत होता है वाग्भट ने भिन्न-भिन्न आयुर्वेद संहिताओं के आधार पर ये नाम लिखे।

अभी तक इन्द्र से आयुर्वेद सीखने वाले तेरह शिष्यों की नामावलि लिखी गई है। आगे अन्य विषय पढ़ने वाले चार शिष्यों का उल्लेख होगा। इनमें से प्रथम और चतुर्थ ने आयुर्वेद भी पढ़ा था।

अन्य-विद्या-अध्येता

१. वसिष्ठ—वायुपुराण १०३।६ से ज्ञात होता है इन्द्र ने वसिष्ठ को पुराणोपदेश किया।[2] ब्राह्मणग्रन्थों का उपदेश भी वसिष्ठ को इन्द्र से मिला। तैत्तिरीय संहिता ३।५।२ में लिखा है—

---

१. प्रमाण देखो पं० युधिष्ठिरजी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ० ४६।

२. ,, ,, संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास पृ० ८८ टिप्पणि ११।

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन् तं वसिष्ठः प्रत्यक्षमपश्यत् सोऽब्रवीद्—ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि ।

अर्थात्—इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा कि तेरे लिए ब्राह्मण कहूंगा ।

२. असुरगुरु—पिंगल छन्दशास्त्र के टीकाकार यादवप्रकाश के मतानुसार इन्द्र नें असुरगुरु=शुक्राचार्य को छंदशास्त्र पढ़ाया ।[1]

३. आदित्य—पार्थसारथिमिश्र द्वारा उद्धृत प्राचीन वचनानुसार इन्द्र ने आदित्य को मीमांसाशास्त्र पढ़ाया ।[2]

४. अंगिरा—इन्द्र ने प्रजापति का दीर्घायुप्रद-ग्रह अंगिरा के लिए कहा ।[3]

उपरिलिखित नामसंख्या के अनुसार हम इन्द्र के जिन भिन्न-भिन्न शिष्यों के नाम शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर ढूंढ सके हैं, वे लिख दिए गए । फलतः इन्द्र के अनेक शिष्य थे ।

शास्त्र-रचना

अध्ययनाध्यापन के अतिरिक्त इन्द्र ने कई विषयों पर ग्रन्थ-रचना की ।

१. आयुर्वेद—यद्यपि इन्द्र की आयुर्वेद सम्बन्धी किसी विशेष रचना का नाम हम अभी नहीं लिख सकते, तथापि इन्द्र के विभिन्न योग आयुर्वेद संहिताओं में मिलते हैं । परिणामतः आयुर्वेद सम्बन्धी ऐन्द्र रचना अवश्य थी ।

काश्यपसं० उपो० पृ० २३ पर उद्धृत शालिहोत्र-वचन से इन्द्र का आयुर्वेदशास्त्र-कर्तृत्व सिद्ध है ।

कविराज महेन्द्रनाथ जी का लेख—आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास (सन् १९४८) में शास्त्री महेन्द्रनाथ जी इन्द्र के विषय में लिखते हैं—इस आचार्य की किसी संहिता का नाम ज्ञात नहीं होता । इति । पृ० २१ । इससे आगे अति पुरातन संहिताओं के विषय में वे लिखते हैं—अश्विनी संहिता, बलभित् संहिता । इति । पृ० २२ ।

यह बलभित् संहिता इन्द्र के नाम से सम्बद्ध है ।

२. ज्योतिषान्तर्गत शाकुनशास्त्र—वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता ८५।१५ पर भट्ट उत्पल अपनी टीका में शाकुनविद्या पर प्राचीन आचार्य ऋषिपुत्र का एक वचन उद्धृत करता है । उस उद्धरण के अन्त में लिखा है—

इत्याह भगवान् इन्द्रः

---

१. देखो संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० ४८ टिप्पणी १२ ।

२. ,, ,, ,, ,, पृ० ४१ टिप्पणी १ ।

३. देखो भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० २७० ।

अर्थात्--भगवान् इन्द्र ने यह कहा।

इससे स्पष्ट होता है कि शाकुनशास्त्र पर इन्द्र का ग्रन्थ था।

३. वास्तुशास्त्र—मत्स्यपुराण २५२।२ में लिखा है कि वास्तुशास्त्रोपदेशक १८ आचार्यों में पुरन्दर भी एक था। भट्ट उत्पल ने बृहत्संहिता ५२।४१ की टीका में शक्र का वास्तुशास्त्र विषयक एक श्लोक उद्धृत किया है।

४. अर्थशास्त्र--सहस्राक्ष इन्द्र ने अर्थशास्त्र पर भी ग्रन्थ रचा। उसका नाम बाहुदन्तक था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५९ में लिखा है--

वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत।
दशाध्यायसहस्राणि सुब्रह्मण्यो महातपाः ॥८८॥
भगवानपि तच्छास्त्रं संचिक्षेप पुरंदरः।
सहस्रैः पञ्चभिस्तात यदुक्तं बाहुदन्तकम् ॥८९॥

अर्थात्—इन्द्र ने शिव का दश-सहस्राध्याययुक्त वैशालाक्ष नामक त्रिवर्ग-शास्त्र प्राप्त किया। उसका संक्षेप पुरन्दर ने पांच सहस्र अध्यायों में किया। इन्द्र के अर्थशास्त्र का नाम बाहुदन्तक था। हम पूर्व पृ० ३५ पर लिख चुके हैं कि इन्द्र का एक नाम बाहुदन्तीपुत्र था। इसी कारण यह ग्रन्थ बाहुदन्तक कहलाया।

५. व्याकरण—पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने संस्कृत-व्याकरण के इतिहासान्वेषण का प्रशस्तप्रयत्न किया है। ऐन्द्रव्याकरण का परिचयविशेष तथा उसके सूत्र मीमांसकजी के इतिहास के पृ० ६० पर देखें।

६. गाथाएं—इन्द्र ने गाथाएं भी गाईं। महाभारत वनपर्व अध्याय ८८ में लिखा है—

एतस्मिन्नेव चार्थेऽसौ इन्द्रगीता युधिष्ठिर।
गाथा चरति लोकेऽस्मिन्गीयमाना द्विजातिभिः ॥५॥

अर्थात्—इसी अर्थ में इन्द्रगीत-गाथा ब्राह्मणों द्वारा गाई जाती है।

विशेष घटनाएं

१. ब्रह्मचर्य—कई देवों में कनिष्ठ तथा शरीर में शिथिल होने के कारण इन्द्र आनुजावर कहलाता था। वह प्रजापति कश्यप के पास चार वार ब्रह्मचर्यवास के लिए गया। यह अवधि १०१ वर्ष की थी।[1] इस काल में उसने अपने पिता से आत्मज्ञान तथा मीमांसा का अध्ययन किया। यह सुदीर्घ ब्रह्मचर्य उसके जीवन की एक विशेषघटना हुई। प्रजापति ने इस ब्रह्मचर्यवास के समय

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ८।७-११।

तथा अपरकाल में इन्द्र के कई यज्ञ कराए। इनमें से एक यज्ञ-विशेष के परिणामस्वरूप इन्द्र इन्द्र बना।

२. **देवों का आकृतिसाम्य**—संस्कृत साहित्य अथाह समुद्र है। इसका अनवरत अवगाहन बुद्धि-विकास के साथ-साथ कई आश्चर्यमयी घटनाओं का स्पष्टीकरण भी करता है। तैत्तिरीय संहिता ६।६।८ में लिखा है—

देवता वै सर्वाः सदृशीरासन् ता न व्यावृतम् अगच्छन्।

अर्थात्—सारे देव सदृश अथवा समानाकृति थे। वे एक दूसरे से पहचाने न जाते थे।

इससे आगे तैत्तिरीय संहिता में एक और वचन है—

इन्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत्। स न व्यावृतमगच्छत्। स प्रजापतिमुपाधावत्।७।३।६॥

अर्थात्—इन्द्र शेष देवों के सदृश आकृति वाला था। वह स्पष्ट पहचाना नहीं जाता था। वह प्रजापति के पास गया।

प्रजापति के पास जाने के पश्चात् उसकी आकृति में कुछ अन्तर पड़ा। जैमिनीय ब्राह्मण १।१६० में आदिकाल का एक और ऐतिहासिक तथ्य लिखा है। "तब सारे पशु रोहित वर्ण के थे। उत्तरकाल में श्वेत, रोहित और कृष्ण वर्ण के हुए।"

३. **देवासुर संग्राम**—इन्द्र का देवासुर संग्रामों से घनिष्ठतम सम्बन्ध है। प्रजापति-निर्दिष्ट यज्ञ करने के पश्चात् इन्द्र अधिक बलशाली बना। तत्पश्चात् उसने देवासुर संग्रामों में भाग लिया। हिरण्यकशिपु आदि दैत्य और विप्रचित्ति आदि दानव, देवों को उनका भूभाग तथा अन्य दायभाग नहीं देते थे। इस पर उनमें बारह संग्राम हुए। इन युद्धों में शिव, कार्त्तिकेय-स्कन्द, विष्णु, अन्य देव तथा कई भारतीय सम्राट् इन्द्र के सहायक थे, परन्तु प्रधान भाग इन्द्र का ही था।

बलहन्ता—इन्द्र की जीवन-घटनाएं अनेक हैं, पर विस्तरभय से यहां लिखी नहीं गईं। चरकसंहिता, सूत्रस्थान प्रथम अध्याय में लिखा है—

स शक्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम्।
ददर्श बलहन्तारं दीप्यमानमिवानलम् ॥२०॥

अर्थात्—परमर्षि भरद्वाज इन्द्रभवन में बलहन्ता से मिले।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि त्रेतायुग के अन्त में भरद्वाज जिस इन्द्र से मिला, वह त्रेता युग के आरंभ से पूर्व दैवासुर संग्रामों में विरोचन-पुत्र अथवा

प्रल्हाद-पौत्र बल नामक दैत्य का हन्ता था। वस्तुतः इन्द्र बहुत दीर्घजीवी व्यक्ति था।

वैदिक ग्रन्थों में बलहनन—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता २।१।५ में लिखा है—

इन्द्रो बलस्य बिलमपौर्णोत्।

अर्थात्—इन्द्र ने बल का निवास-स्थान दुर्ग भेदन कर दिया। पुनः ताण्ड्य ब्राह्मण १९।७।१ में बलभिद् क्रतु के वर्णन में लिखा है—

असुराणां वै बलस्तमसा प्रावृतोऽश्मापिधानश्चासीत्।

अर्थात्—असुरों का बल अन्धकार से आवृत प्रस्तर के दुर्ग में बन्द हो गया।

अध्यापक कालेण्ड की भूल—यूट्रेख्ट, हालेण्ड के अध्यापक कालेण्ड ने पञ्चविंश ब्राह्मण के उपर्युक्त संदर्भ का निम्नलिखित अनुवाद किया है—

The cave belonging to the Asuras was enclosed by darkness (and) (its entrance) was covered with stones.

इस अनुवाद में बल का नाम नहीं है। बल का cave अर्थ सर्वथा असंगत है। तैत्तिरीय संहिता का पूर्व-लिखित वचन कालेण्ड के अर्थ का खण्डन करता है।

ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१ में भी बलभिद् नाम की इष्टि है।

बाइबिल में लिखा है—

they hired against thee Balaam the son of Beor of Pethor of Mesopotamia, to curse thee. Deuteronomy XXIII. 4.

अर्थात्—विरोचन-पुत्र बल मैसोपोटेमिया में था।

इस बल को इन्द्र ने मारा। इन्द्र आर्य संसार का परमपूज्य पुरुष था। मैसोपोटेमियां तथा ईरान आदि में असुरजातियां रहती थीं। वे इन्द्र से विरोध करती थीं।

यह रही ऐतिहासिक घटना। हमारा इस लेख से यही प्रयोजन है कि आयुर्वेद का प्रदाता इन्द्र अति प्राचीनकाल में था। उस समय अर्थात् आज से लगभग १२००० वर्ष से पूर्व आयुर्वेद का पुनीत-ज्ञान संसार में विद्यमान था।

वर्णविपर्यय—प्रजापति कश्यप परम वेदज्ञ ब्राह्मण थे। उनका पुत्र इन्द्र अनेक शास्त्रों का ज्ञाता, उपदेष्टा तथा प्रवक्ता था। उसके दीर्घ ब्रह्मचर्य,

अध्ययनाध्यापन तथा यजन-याजन से परिणाम निकलता है कि वह ब्राह्मण-वृत्ति था। असुरपीडन ने इन्द्र को क्षात्रवृत्ति धारण करने पर बाध्य किया। उसका वर्णविपर्यय हो गया।[1] संग्रामों में वह बहुत विद्या भूला। उसने विस्मृत-विद्या की प्राप्ति आवश्यक समझी। अपने शिष्य, कौशिक गोत्रीय विश्वामित्र से उसने विस्मृत विद्या पुनः प्राप्त की।

योग—इन्द्र का ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं। उसके निम्नलिखित पांच योग गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने अंग्रेजी ग्रंथ के प्रथम भाग, पृ० १०७ पर दिए हैं—

१. ऐन्द्रिय रसायन	१. चरकसंहिता, चि० १।४।६ ॥
२. „ „	२. „ „ १।४।१३—२६॥
३. सर्वतोभद्र
४. दशमूलाद्य तैल
५. हरीतक्यवलेह

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे पञ्चमोऽध्यायः

१. देखो पं० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृ० २७२।

षष्ठ अध्याय

प्रकीर्ण उपदेश

६-१५. भृगु आदि ऋषि (त्रेता आरम्भ)

प्रकीर्ण उपदेश—गत चार अध्यायों में देवयुग के उन आचार्यों का वर्णन हो चुका, जिन्होंने ब्रह्मा से आरम्भ होने वाली गुरुपरम्परा में आयुर्वेद का ज्ञान उपलब्ध किया। यह गुरुपरम्परा त्रेता के अन्त में आगे चली। इससे पूर्व त्रेता के आरम्भ में अनेक ऋषियों को आयुर्वेद की अनेक आवश्यक बातों का उपदेश हुआ। उन ऋषियों के कतिपय योग आयुर्वेद के ग्रन्थों में इतस्ततः मिलते हैं। उन्हीं के उपदेश से मिश्र, काल्डिया, सीरिया, यूनान आदि देशों की प्राचीन जातियों में आयुर्वेद का कुछ ज्ञान फैला। इस अध्याय में उन उपदेश-ग्रहीता प्रकीर्ण-ऋषियों का उल्लेख किया जाता है।

त्रेता से पूर्व संसारावस्था—प्रकीर्ण ऋषियों के वर्णन से पूर्व आवश्यक है कि संसार की वह सामान्य अवस्था बताई जाए, जो आदिकाल तथा देवयुग में थी। इसके समझे बिना आयुर्वेद के प्रसार का इतिहास अज्ञात रहेगा। उस काल में चार विशिष्ट बातें थीं।

१. रोगाभाव—आदिकाल तथा कृतयुग में प्रजाएं नीरोग थीं। स्वायंभुव मनु की भृगुप्रोक्त संहिता में लिखा है—

> अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
> कृते त्रेतादिषु ह्येषां वयो ह्रसति पादशः॥१।८३॥

अर्थात्—सतयुग में मनुष्य नीरोग और सर्वप्रकार से पूर्णकाम थे। तब मानव-आयु ४०० वर्ष थी। त्रेता में यह आयु-परिमाण ३०० वर्ष, द्वापर में २०० वर्ष और कलि में १०० वर्ष होगया। प्रतियुग मानव-आयु पाद-पाद न्यून होती जाती है।

महाभारत शान्तिपर्व में भृगुसंहिता के उपरिलिखित श्लोक का निम्न-लिखित रूपान्तर है—

> अरोगाः सर्वसिद्धार्थाः चतुर्वर्षशतायुषः।
> कृते त्रेतादिष्वेते तेषां पादशो ह्रसते वयः॥२४।२४॥

संसार के इतिहास में कैसा सुन्दर काल था। धन्य वे आर्य ऋषि थे,

जिन्होंने इस ऐतिहासिक घटना को सुरक्षित किया। विकासमत पर यह वज्र-प्रहार है।

आचार्य वाग्भट अपने अष्टाङ्ग-संग्रह, निदानस्थान में लिखता है—

इह कृतयुगे······पुरुषा बभूवुः।······। ते···
दीर्घायुषो नीरुजश्च बभूवुः। अध्याय १।

२. अधर्माभाव—महाभारत के पूर्वोक्त प्रकरण में व्यासजी ने लिखा है—

नाधर्मेणागमः कश्चिद् युगे तस्मिन्प्रवर्त्तते ॥२४।२२॥

अर्थात्—उस सतयुग में कोई आगम अधर्मभाव से प्रवृत्त नहीं होता था।

इससे सिद्ध हुआ कि कृतयुग में समस्त शास्त्र सत्य थे, अतः मानवप्रजा ध [illegible]युक्त रहती थी। वर्तमान संसार में मनुष्य की अधिकाधिक हानि, प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त, अनार्ष-साहित्य से हो रही है। कागज काला करना साधारण बात हो गई है।

इसी विषय में अग्निवेश के सतीर्थ्य महामुनि पराशर अपनी ज्योतिष-संहिता में लिखते हैं—

पुरा खलु-अपरिमित-शक्ति-प्रभा-प्रभाव-वीर्य......धर्मसत्त्वशुद्ध-तेजसः पुरुषा बभूवुः।

अर्थात्—आदियुग में अपरिमित शक्ति, कान्ति, प्रभाव, वीर्य, धर्म, सत्त्व, तथा शुद्ध-तेज वाले पुरुष हुए।

ज्ञात हुआ कि कृतयुग में प्रजाएं अपरिमित धर्मादि युक्त थीं।

३. अनिकेताश्रय—कृतयुग में प्रजाएं निकामचारिणी थीं। वायुपुराण अध्याय ८ में लिखा है—

ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वंद्वं नापि च क्रमः ॥५२॥
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजाः ॥५३॥
ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।

अर्थात्—प्रजाओं के विस्तृत होने पर भी उनमें परस्पर टक्कर नहीं होती थी। वे पर्वत और झीलों के पास रहने वाली, गृह आदि में आश्रय न करने वाली, शोकरहित, सत्त्वप्रधान, नितान्त-सुखी, प्रसन्नमना तथा निकाम-चारिणी थीं।

इस वचन से स्पष्ट है कि कृतयुग में भी भूतल पर प्रजाएं अत्यल्प न थीं।

तथापि उस काल के लोग घर बना कर न रहते थे। उन्हें घर बना कर रहने की आवश्यकता न थी। वे शीतोष्ण के प्रभाव से ऊपर थे।

४. निरामिष तथा उत्कृष्ट आहार—कृतयुग में पूर्ण-वीर्य-युक्त उत्कृष्ट सस्य आहार थे। मांसाहार का नाम भी न था। वायुपुराण में स्पष्ट लिखा है—

पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ।८।४८।

अर्थात्—आदियुग में निश्चय ही पृथ्वीरस से उत्पन्न आहार पर लोग निर्वाह करते थे।

पशु-बलि अभाव—न केवल भोजनार्थ अपितु यज्ञार्थ भी पशुवध न होता था। आयुर्वेदीय चरकसंहिता में लिखा है—

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीयाः
बभूवुर्नालंभाय प्रक्रियन्ते स्म ॥ चि० १६।४॥

अर्थात्—आदिकाल में पशु स्पर्शमात्र के लिए लाए जाते थे, वध के लिए नहीं।

उस पावन-काल में जब अधर्म का आभास भी न था, तब पशुवध का होना अमान्य था। महाभारत अनुशासनपर्व में पुरानी अनुश्रुति के आधार पर इसी तथ्य को व्यक्त किया है—

श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।
येनायजन्त विद्वांसः पुण्यलोकपरायणाः ॥१७७।५४॥

अर्थात्—सुना जाता है, पुराकल्प में, यज्ञ में पशु समालभ के लिए भी नहीं लाए जाते थे। व्रीहिमात्र से यज्ञ हो जाता था।

मनुष्य की आयु-दीर्घता, बुद्धि-सूक्ष्मता, आचार-उच्चता तथा नीरोगता का यही मूल है।

पाश्चात्यों की मिथ्या-कल्पना—पूर्वोक्त वर्णन ऐतिहासिक है। इसमें अणुमात्र असत्य नहीं। पाश्चात्य-वैज्ञानिकब्रुवों ने विकासमत को स्वीकार करके कल्पना के आधार पर लिखा है—आदि मानव शिकार खेलता था, मांस खाता था, घर बनाना नहीं जानता था, असभ्य तथा अज्ञानी था। उसे रोग भी होते थे। औषध के अभाव में पहले सहस्रों लोग मर जाते थे। धीरे-धीरे बुद्धि का विकास होने पर औषध-ज्ञान उत्पन्न हुआ।

शिकार में परस्व-हरण का अधर्म है। आदियुग में अधर्म न था, पुनः शिकार की क्या बात।

जब शिकार न था, तो मांसाहार स्वप्न में भी न था।

नगर, ग्राम तथा गृह-निर्माण की विद्या वेद में वर्णित है, पर कृतयुग के सशक्त लोगों को गृह आदि की आवश्यकता नहीं पड़ी।

उस काल के लोग अज्ञानी तथा असभ्य भी न थे। सम्पूर्ण-ज्ञान के निधि वेद का उनमें प्रसार हो चुका था, तथा आयुर्वेदादि अनेक शास्त्र उपदिष्ट हो चुके थे।

उस काल में अधर्माभाव के कारण रोगोत्पत्ति न हुई थी। अतः असामयिक मृत्यु न थी। हम पहले अध्याय में लिख चुके हैं कि आदि में त्रिकालज्ञ, आप्त-पुरुष उत्पन्न हुए, अतः ज्ञान का धीरे-धीरे विकास कैसे माना जाए।

त्रेता का आरम्भ

रोगोत्पत्ति—रोगोत्पत्ति कृत तथा त्रेता की संधिवेला में हुई। उस समय धर्म का एक पाद नष्ट हो गया।

रोगोत्पत्ति के कारण

१. **अधर्म**—रोग का मूल अधर्म है। आयुर्वेदीय चरकसंहिता में अत्यन्त स्पष्ट रूप से रोग की उत्पत्ति का वर्णन है—

आदिकाले हि······व्यपगतभयरागद्वेष······रोगनिद्रातन्द्रा······आलस्यपरिग्रहाश्च पुरुषा बभूवुरमितायुषः ॥२८॥

भ्रश्यति तु कृतयुगे केषाञ्चिदत्यादानात् साम्पन्निकानां शरीरगौरव-मासीत् सत्वानाम्। गौरवाच्छ्रमः, श्रमादालस्यम्, आलस्यात् सञ्चयः, सञ्चयात् परिग्रहः, परिग्रहाल्लोभः प्रादुर्भूतः कृते ॥२६॥

ततस्त्रेतायां लोभादभिद्रोहः।······ततस्त्रेतायां धर्मपादोऽन्तर्द्धान-मगमत्। पृथिव्यादीनां च गुणपादप्रणाशोऽभूत्। तत्प्रणाशकृतश्च सस्यानां[१] स्नेहवैमल्य······गुणपादभ्रंशः। ततस्तानि प्रजाशरीराणि हीयमानगुणपादैश्चाहारविहारैरयथापूर्वमुपष्टभ्यमानानि··········प्राग्व्या-धिभिराक्रान्तानि ॥३०॥ विमानस्थान अ० ३।

अर्थात्—आदिकाल में भय, राग, द्वेष, रोग, निद्रा तन्द्रा, श्रम तथा

---

१. ओषधियाँ ग्राम्य और आरण्य हैं। व्रीहि, यव, गोधूम आदि सप्तदश ग्राम्य ओषधियाँ वायुपुराण ८।१४६—१५२ में वर्णित हैं। अभिधान चिन्तामणि पृ० ४७१ पर भी इस विषय के पुरातन श्लोक उद्धृत हैं। चरकसंहिता आदि ग्रन्थों में भी सूत्रस्थान में अन्नपानविधि का उल्लेख है। ये अन्न ही सस्य कहाते हैं।

आलस्य रहित, तथा किसी से कुछ न लेने वाले अमितायु[1] पुरुष हुए।

कृतयुग के अन्तिम काल में अत्यन्त (पदार्थ) लेने से संपन्न हुए लोगों का शरीर स्थूल हो गया। स्थूलता के कारण उन्हें श्रम करना पड़ा। श्रम से आलस्य, आलस्य से सञ्चय, सञ्चय से परिग्रह तथा परिग्रह से लोभ की उत्पत्ति हुई।

टिप्पण—सञ्चय=hoarding पाप का मूल है। अतः आर्य लोगों में दान का माहात्म्य है। धन के उचित विभाग का ठेका लेने वाले गोमांसभक्षी कार्लमार्क्स तथा उसके अनुयायियों को दान की सुन्दर व्यवस्था नहीं सूझी। अस्तु।

फिर त्रेता में लोभ से अभिद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। तब त्रेता में धर्म का एक पाद लुप्त हो गया। पृथिवी आदि के गुणों का एक पाद भी नष्ट हो गया। गुणों का एक पाद न्यून होने से धान्यों के स्नेह, विमलता आदि गुणों का भी एक पाद नष्ट हो गया। तब आहार-विहार के किञ्चित् उलटा होने से प्रजाओं के शरीर पहली वार ज्वरादि व्याधियों से आक्रान्त हुए।

रोग का सामान्य कारण

इस प्रकरण से ज्ञात हुआ कि लोभ से अधर्म उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् व्याधियों का जन्म हुआ। अष्टांगसंग्रह में अनेक पुरातन आर्ष संहिताओं के आधार पर यही मत संग्रहीत है। यथा—

अत्यति तु कृतयुगे युगस्वभावात् क्रमेण परिहीयमाणसर्वगुणेषु पृथिव्यादिषु शरीरेषु च धर्मातिक्रमात् पुरुषेष्ववश्यंभाविनो निरपेक्ष-रूक्षाभिरुपेक्षिता देवताभिर्ज्वरादयः प्रादुरभूवन्निति सर्वरोगाणां सामान्यतः संभवः। निदानस्थान, अ० १ पृ० २।

अर्थात्—कृतयुग के समाप्ति-काल में, त्रेता के प्रभाव से, पृथिवी आदि तथा शरीरों के, क्रमशः सर्वगुण-न्यून होने पर धर्म के नियमों के अतिक्रमण से पुरुषों में अवश्य होने वाले, निराश तथा निःस्नेह देवताओं द्वारा प्रतिक्रिया न किए गए, ज्वरादि उत्पन्न हुए। यही सब रोगों की उत्पत्ति का सामान्य कारण है।

---

१. मुनि कात्यायन ने लिखा है कि—

जिस युग में मानव-आयु का जितना परिमाण है, उस युग में उस परिमाण से अधिक जीने वाले अमितायु होते हैं।

विशेष कारण

१. दक्षयज्ञ—दक्षयज्ञ एक भयावह घटना थी। वर्तमान समय में प्रकाशित आयुर्वेदीय ग्रन्थों में दक्षयज्ञ का विध्वंस सामान्य-रूप से वर्णित है। ज्वरोत्पत्ति का आलंकारिक वर्णन इसी घटना पर आश्रित है। यह यज्ञ रोगोत्पत्ति का एक विशेष कारण था। चरकसंहिता चिकित्सास्थान अ० ३ में लिखा है—

क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किं करवाणि ते ॥२४॥
तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भविष्यसि।

अर्थात्—दक्षयज्ञ में भय से उत्पन्न क्रोधाग्नि ने शिव को कहा, देव मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं। शिव ने उसे कहा—तू संसार में ज्वर हो जाएगा।

चरकसंहिता निदानस्थान में भी लिखा है—

ज्वरस्तु खलु महेश्वरकोपप्रभवः। अ० १।४०॥

अर्थात्—ज्वर महेश्वर के क्रोध से उत्पन्न हुआ।

वाग्भट ने अष्टांगसंग्रह में इसका विशद वर्णन किया है—

तद्यथा। पाकलो गजेषु अभितापो वाजिषु·········
भूमौ ऊषरो मनुष्येषु ज्वर इति॥

तत्सहजाश्चारोचकांगमर्दशिरोव्यथाभ्रमक्लमग्लानितृष्णासंतापादयः। तत्संतापाच्च रक्तपित्तम्। तत्रैव च यज्ञे क्रोधभयाभिभूतानां परितो विद्रवतां लंघनप्लवनाद्यैर्देहविक्षोभणैर्गुल्मविद्रधिवृद्धिजठरादयः ·············। सोऽपि हि न विना ज्वरेणानुबध्नातीति सकलोऽपि रोगग्रामो ज्वरपूर्वको ज्वरशब्दवाच्यो वा॥ निदानस्थान, अ० १, पृ० ३॥

अर्थात्—ज्वर के नाना नाम होने पर हाथियों में उसका नाम पाकल हुआ, घोड़ों में अभिताप, भूमि में ऊसर तथा मनुष्यों में ज्वर।

अरुचि अंग टूटना शिरःपीड़ा, चक्कर आना, क्लम, ग्लानि, प्यास तथा दाह आदि भी ज्वर के साथ उत्पन्न हुए। उसी यज्ञ में शिव-क्रोध के भय से आक्रान्त हुए चारों ओर दौड़ते हुए लोगों को देह के विक्षोभ से रोगों ने ग्रसा।

सारा रोगसमूह ज्वर के विना नहीं होता। ज्वर रोगों में प्रथम तथा रोग का पर्यायवाची है। काश्यपसंहिता में इसी वर्णन को और भी स्पष्ट कर दिया है—

दक्षयज्ञे वधत्रासाद्देवर्षीणां पलायताम्।
रोगाः सर्वे समुत्पन्नाः संतापाद्देहचेतसोः ॥१४॥

कल्पस्थान, संहिताकल्प।

अर्थात्—दक्ष के यज्ञ में रुद्र द्वारा मारे जाने के भय से देवर्षियों के भागने पर, शरीर और मन के संताप से सब रोग उत्पन्न हुए।

वास्तव में उस यज्ञ में भाग लेने वाले शिव के क्रोध से भयभीत हुए। वे इतस्ततः भागे। उस महान् उद्वेग से अनेक लोगों को ज्वर हो गया। वे अन्य रोगों से भी आक्रान्त हुए। उससे पूर्व दीर्घायु तथा नीरोग पुरुष थे।

पूर्वपक्ष—अधर्मोत्पत्ति से रोगोत्पत्ति हुई यह असत्य है।

उत्तरपक्ष—आयुर्वेद की सारी संहिताएं असत्यप्रचार में लग गईं, तथा ऋषि, मुनि अनृतभाषी थे, ऐसी कल्पना केवल हमारे जातीय-गौरव को नष्ट करने तथा ऐतिहासिक तथ्यों को समाप्त करने के लिए ही की जाती है। योरुप का वर्तमान दृष्टिकोण केवल भौतिक है। उसमें आत्मतत्त्व और पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त का समावेश नहीं। वहां ईसाई-मत के कतिपय श्रेष्ठ उपदेशों का प्रभाव भी लुप्त हो रहा है। अधर्म का प्राबल्य अपने उग्ररूप में दिखाई देने लग पड़ा है। युद्ध का भय स्थायी हो गया है। नए रोग उत्पन्न हो रहे हैं। फलतः भौतिक दृष्टि वाले पाश्चात्य लोगों के वृथा-लेखों का सत्य-इतिहास में कोई प्रमाण नहीं।

२. ग्रामवास—त्रेता के आरम्भ में अधर्म प्रवृत्त हुआ। मात्स्यन्याय के कारण दण्डशासन की आवश्यकता पड़ी। वैवस्वत मनु संसार का प्रथम राजा वरण हुआ। लोगों के क्षीण-शक्ति हो जाने से घर बनाए बिना रहना असंभव हो गया। तब देश, जनपद, राष्ट्र, मण्डल, विषय, उपवर्तन, नगर, पुर, पत्तन, ग्राम तथा कर्वट आदि निर्मित हुए। इनमें से प्रत्येक की जन-संख्या का परिमाण नियत था। जनसंख्या अधिक होने पर वमन-नियम से कुछ लोगों को एक स्थान से ले जाकर दूसरे स्थान पर बसा दिया जाता था। इससे बहुधा नए नगर बन जाते थे। राष्ट्र में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि पर रोक रहती थी। आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य लिखता है—

भूतपूर्वम् अभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्द-वमनेन वा निवेशयेत्। अध्यक्ष-प्रचार, द्वितीयाधिकरण, अध्याय १।

अर्थात्—पूर्व बसे अथवा नए बसाए गए जनपद को, दूसरे देशों से श्रेष्ठ मनुष्यों को लाकर, अथवा स्वदेश से अभिष्यन्द-वमन द्वारा बाहर निकाल कर, स्थापित करे।

कुमारसंभव ६।३७ की टीका में अरुणगिरिनाथ इस अभिष्यन्द अर्थात् वृद्धि-प्राप्त जनसंख्या के वमन के कौटल्य-वचन का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखता है—

ग्रामादिनिवेशने यावत्संख्याको जनो व्यवस्थापितः, तावत् संख्याकाज्जनाद् आधिक्येन यो जनः समुत्पद्यते, सोऽभिष्यन्द शब्देनोच्यते। तस्य वमनमन्यत्रानयनम्।

कुमारसंभव के पूर्वोक्त वचन की टीका में नारायण अभिष्यन्द शब्द का भोज का अर्थ लिखता है—

व्यवस्थितादभ्यधिकोऽप्यभिष्यन्दो जनादिकः ॥

अर्थात्—व्यवस्थित जनसंख्या से अधिक जनों को अभिष्यन्द शब्द से पुकारते हैं।

हिटलर और पाकिस्तान ने अपने दुःख को न्यून करने के लिए अभिष्यन्द-वमन सिद्धान्त वर्ता।

आर्यवर्त्म में पञ्चमहायज्ञादि का विधान नगरवास से उत्पन्न हुई अस्वच्छता को दूर करता है। इस पर भी ग्रामवास रोगोत्पादक माना गया है। महामुनि चरक अपनी आयुर्वेद संहिता में लिखते हैं—

ग्राम्यो हि वासो मूलमशस्तानाम् ॥ चि० १।४।४ ॥

अर्थात्—ग्राम में रहना अवांछित रोगादि का मूल है।

फलतः कह सकते हैं कि रोगों के आरम्भ होने का एक कारण ग्रामवास भी है।

योरुप आदि में अनेक वैज्ञानिकप्रकारों से नगर आदि की स्वच्छता का पर्याप्त प्रबन्ध है, तथापि वेदज्ञान-रहित उन लोगों को अग्निहोत्र से होने वाली परम स्वच्छता का ज्ञान नहीं।

३. ग्राम्याहार—संसार में रोग का तीसरा कारण ग्राम्याहार है। हम पूर्व लिख चुके हैं कि त्रेता में सस्य तथा ओषधियों के गुणों का एक पाद न्यून हो गया। भूमि कृष्टपच्या हो गई। स्वच्छन्दजात वनस्पतियों की शक्ति अधिक होती है। साधारण खेतों के सस्य अल्पबल-वीर्य के हुए। पार्वत्य-सस्य सब को प्राप्त नहीं होते थे। अतः इन ग्राम्य-सस्यों और उनके विविध-रूपों में पका कर खाने से शारीरिक शक्तियां न्यून हुईं। तब रोग शीघ्रता से आक्रमण करने लगे।

हिमालय पर इन्द्र और ऋषियों का समागम

ऐसी अवस्था होने पर भृगु, अंगिरा, अत्रि आदि ऋषि इन्द्राधिकृत हिमालय पर एकत्र हुए। इन्द्र उनसे मिला। उनकी शारीरिक अवस्था की मन्दता देख वह बोला—

स्वागतं ब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणाम् ।

कालश्चायम्-आयुर्वेदोपदेशस्य........भवन्तो मत्तः श्रोतुमर्हत-अथोपधारयितुं प्रकाशयितुं च......। चरकसंहिता, चि०, अ० १।५॥

अर्थात्—हे ब्रह्मर्षियो आयुर्वेदोपदेश का काल आ गया। आप मुझसे यह उपदेश सुनने, धारण तथा प्रकाशित करने के योग्य हैं।

इन्द्र ने यह ज्ञान अनुष्ठान के लिए दिया। चरकसंहिता के इस प्रकरण में इन्द्र उपदिष्ट ऐन्द्रिय-रसायनों का उल्लेख है।

आगे इन्द्र से उपदेश ग्रहण-कर्ता दस ऋषियों का क्रमशः वर्णन किया जाता है।

६. भृगु=प्रथम प्रजापति

प्रजापति—आर्य इतिहास में २१ प्रजापति कहे गए हैं। वायुपुराण ६५।७३ के अनुसार भृगु प्रथम प्रजापति था। कुमारसंभव ६।९ में प्रजापतियों को धातारः तथा ८।५२ में पितरः कहा है। महाभारत आदि में भी प्रजापतियों के युग को पितर-युग तथा प्रजापतियों को पितर(शा०३४३।५४) कहा है।

वंश परम्परा—महर्षि भृगु ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। इस पर भी वे वारुणि कहलाते थे। शतपथ ब्राह्मण ११।६।१।१ में लिखा है—

भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययातिमेने। इति।

अर्थात्—निश्चय ही वरुण भृगु का पुत्र था। वह अपने आपको अपने पिता की अपेक्षा अधिक विद्वान् समझने लगा। भृगु वारुणि कैसे हो गया, इसे महिदासजी ने ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट किया है—

तं वरुणो न्यगृह्णीत। तस्मात् स भृगुर्वारुणिः। १।१३।१०॥

अर्थात्—वरुणने उसे ग्रहण किया। इसी कारण भृगु वारुणि है।

महर्षि भृगु की दो पत्नियाँ थीं। एक हिरण्यकशिपु-कन्या दिव्या तथा दूसरी पुलोम-दुहिता पौलोमी। नीचे महर्षि भृगु का संक्षिप्त वंश-वृक्ष दिया जाता है—

दिव्या　　कवि=भृगु वारुणि=अथर्वा　　पौलोमी

शुक्र=कवि=काव्य=उशना तथा बारह याज्ञिक भृगुदेव[1]　　च्यवन

परशुराम, वाल्मीकि, वृद्धजीवक, तथा शौनक इसी कुल से सम्बद्ध थे।[2]

---
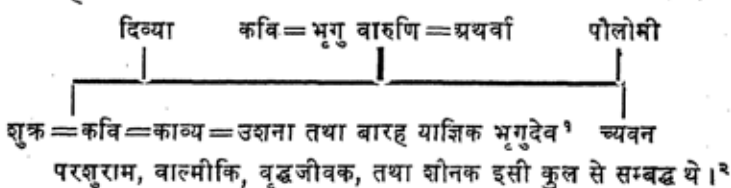
१. तुलना करो वायु पुराण ६५।८६-८७।

२. भृगुवंश के विस्तृत वृत्त के लिए देखो भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० २३७।

पार्जिटर और भृगु—पार्जिटर अपने ग्रन्थ एनशिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन पृ० १८८ पर लिखता है—

Bhrigu and Kavi are purely mythical.

अर्थात्—भृगु और कवि सर्वथा कल्पित हैं।

आलोचना—भृगु का एक नाम कवि है, अतः दोनों को सर्वत्र पृथक् नहीं समझना चाहिए। भृगु शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। जो व्यक्ति आशा रखता है कि भारतवर्षीय विद्वान् उसे कल्पित मानें, वह वृथा आशा करता है। अंग्रेजों के उच्छिष्टभोजी ऐतिहासिकब्रुव भले ही ऐसा मानें। विद्वान् उनकी विद्या को जानते हैं—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति। निरुक्त १।१६॥

देश—भृगु वरुण का उत्तराधिकारी था। वरुण का राज्य गन्धर्व जातियों पर था। अतः अरब, पितरदेश=ईरान, काल्डिया आदि प्रदेशों में भृगुवंशियों का बड़ा विस्तार हुआ। भारत के पश्चिम में जमदग्नि तथा परशुराम आदि रहते थे। भृगुकच्छ अथवा वर्तमान भरोच उन्हीं का स्थान था।

भार्गव अथा आथर्वण श्रुति—वरुण तथा उसकी कुलपरम्परा में आने वाले भृगुवंशियों का अथर्ववेद से घनिष्ट सम्बन्ध था। शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।७ में वरुण की प्रजाओं के लिए अथर्ववेद के उपदेश का वर्णन है। अथर्ववेद का एक नाम भृगु-अंगिरो-वेद है।

बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार भृगु अनेक अथर्ववेदीय सूक्तों का द्रष्टा था। कुछ आथर्वण सूक्तों के द्रष्टा भृग्वंगिरा तथा अथर्वाङ्गिरा सम्मिलित रूप से हैं।

भृगुओं के मन्त्रों का कुरान पर प्रभाव—पं० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४३ पर लिखा है—

कुरान इस समय अरब जाति का मान्य-पुस्तक बन गया है। कुरान की अनेक आयात (वचन) पढ़ कर कुरानाभ्यासी रोगियों की चिकित्सा करते हैं। वे अनेक प्रकार के अन्य टोने आदि भी करते हैं। उन्होंने यह बात भृगुओं के वंशजों में प्रचलित अनेक आथर्वण मन्त्रों से ली है। अथर्ववेद का भृगु-ऋषियों से गहरा सम्बन्ध है। आथर्वण मन्त्रों द्वारा ऐसी क्रियाएं बहुत देर से चल पड़ी थीं। अतः आथर्वण-क्रियाओं की प्रतिध्वनि होने से निश्चय है कि कुरान पर भृगु-प्रभाव अधिक पड़ा है। इति।

स्मरण रहे कि कुरान का सन्देश देवदूत जिबरा-ईल लाता था। जिबरा भृगु का रूपान्तर प्रतीत होता है।

भृगुप्रणीत-शास्त्र—भृगु ऋषि तथा अनूचान था। जैमिनीय ब्राह्मण १।४२ में लिखा है—

भृगुर्ह वारुणिर् अनूचान आस।

अमरसिंह के नामलिङ्गानुशासन में अनूचान के अर्थ में लिखा है—

अनूचानः प्रवचने सांगेऽधीति गुरोस्तु यः।

अर्थात्—जिसने गुरु से सांग वेद पढ़ा है।

प्रतीत होता है भृगु ने अनेक शास्त्र सांग पढ़े थे। उनका अति संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जाता है—

१. धर्मशास्त्र—भृगु ने स्वायंभुव मनु के विशाल धर्म-शास्त्र का संहिता-रूप में संक्षेप किया।

स्वायंभुव मनु ऋषियों से स्वयं कहता है कि मेरे धर्मशास्त्र का कथन भृगु करेगा। उस भृगुप्रोक्त शास्त्र को भार्गव-प्रमति ने पुनः संक्षिप्त किया। वर्तमान मनुस्मृति में कतिपय प्रक्षेप तो हैं, पर मूल ग्रन्थ भार्गव-प्रमति का ही है। इसी कारण इसमें सुदा-पैजवन आदि उत्तर-कालीन राजाओं का उल्लेख है। भृगुप्रोक्त सम्पूर्ण संहिता वर्तमानकाल में उपलब्ध नहीं। कारण, विश्वरूप आदि पुरातन टीकाकारों ने भृगु के नाम से जो अनेक श्लोक अपने-अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं, उनमें से अनेक इस मनुस्मृति में नहीं मिलते।

काणे जी का भ्रम—पाण्डुरंग वामन काणेजी ने अंग्रेजी भाषा में धर्मशास्त्र का इतिहास लिखा है। उसमें वे लिखते हैं—

No one should take very seriously these varying accounts even in the Mahabharata and in the Narada-smriti, as they are intended to glorify some particular text or texts. (p. 138)

The tradition of the Naradasmriti that the shastra of Manu was successively abridged by Narada, Markandeya and Sumati Bhargava is, as has been observed above, not worth much, since it is merely intended to glorify Naradas work (p. 149)

Then between 2nd century B. C. and 2nd century A. D. the Manusmriti was finally recast, probably by Bhrigu. (p. 156)

अर्थात्—महाभारत तथा नारद स्मृति में मूल मानव धर्मशास्त्र के संक्षेप का जो वृत्त लिखा है वह अविश्वसनीय है। वर्तमान मनुस्मृति ईसापूर्व दूसरी शती से ईसागत दूसरी शती में संभवतः भृगु द्वारा रची गई।

आलोचना—महाभारत तथा नारद स्मृति में लिखा इतिहास सत्य है। नारद ने अपने ग्रन्थ के गौरव की वृद्धि के लिए यह इतिहास नहीं लिखा, अपितु काणे जी ने सम्पूर्ण शास्त्रों का अवगाहन न होने से तथा पाश्चात्य-प्रभाव के कारण, ऐसा अप्रशस्त लेख किया है। काणेजी नहीं जानते, कि भारतीय इतिहास में भृगु एक ही था। वह ईसा से २०० वर्ष पूर्व से २०० वर्ष उत्तर तक कभी न था। तब तो भार्गव गोत्रके लोग थे। भृगु तो ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व था। जिस भृगु का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में है, वह उन ग्रन्थों से पूर्व-काल का व्यक्ति था। जैमिनीय ब्राह्मण में उसके लिए—आस, क्रिया का प्रयोग हुआ है, अर्थात् वह दिवंगत हो चुका था। काणे जी को मिथ्या जर्मन-भाषा-मत तंग कर रहा है। अस्तु।

मनुस्मृति के टीकाकार भागुरि, भर्तृयज्ञ, देवस्वामी और असहाय ईसा पूर्व २०० से सैकड़ों वर्ष पूर्व हो चुके थे। काणेजी को इन विवरणकारों के काल का यथार्थ ज्ञान नहीं है।

२. वास्तु शास्त्र—मत्स्यपुराण २५२।२-४ में अठारह विख्यात वास्तु शास्त्रोपदेशकों के नाम लिखे हैं। भृगु उनमें से एक है।

३. शिल्पशास्त्र—विश्वकर्मशिल्पानुसार विश्वकर्मा का गुरु भृगु था। महाभारत शान्तिपर्व २१२।३४ में लिखा है—

शिल्पशास्त्रं भृगुः पुनः।

यह शिल्पशास्त्र वास्तुशास्त्र से कितना अभिन्न था, यह अन्वेषणीय है।

४. ज्योतिष—आजकल ज्योतिष-सम्बन्धी भृगुसंहिता प्रचलित है। इस विषय में हम निश्चितरूप से कुछ नहीं कह सकते। ऐतिहासिक गवेषणा आवश्यक है।

५. आयुर्वेद—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी ने भृगु के किसी योग आदि का उल्लेख नहीं किया। परन्तु अष्टाङ्गहृदय, हेमाद्रि-टीका, चिकित्सास्थान ३।१६७,१६८ पर रसायन के वर्णन में लिखा है—

भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात्।

हेमाद्रि इस यक्ष्मनाशक योग को योगरत्न से उद्धृत करता है। यही योग बंगसेन-संहिता कास-प्रकरण में श्लोक १७० आदि है। जिस संहिता में यह योग था, वह भृगु-संहिता थी।

भृगु की आयुर्वेद-संहिता का अस्तित्व एक अन्य प्रमाण से भी सिद्ध होता है। महाभारत से पूर्वकालीन शालिहोत्र ऋषि के हयशास्त्र[1] के अनेक प्रमाण हेमाद्रि-विरचित लक्षणप्रकाश में मिलते हैं। उनमें से कतिपय श्लोक राजगुरु हेमराजजी ने काश्यपसंहिता, उपोद्घात, पृ० २३ पर टिप्पण १ में उद्धृत किए हैं। यथा—

वसिष्ठो वामदेवश्च च्यवनो भारविस्तथा (भार्गवस्तथा)।
असितोदेवलश्चैव कौशिकश्च महाव्रताः।
अदालिकश्च भगवान् श्वेतकेतुर्भृगुस्तथा ॥
इन्द्रश्च देवराजश्च सर्वलोकचिकित्सकाः।
एते चान्ये च बहव ऋषयः संश्रितव्रताः॥
आयुर्वेदस्य कर्तारः सुस्नातं ते दिशन्तु ते ॥ (१।१५६)

यद्यपि पूर्व उद्धरण के कई पाठ अशुद्ध और टूटे हुए हैं। परन्तु उससे इतना ज्ञात होता है कि औद्दालकि श्वेतकेतु, भृगु तथा देवराज इन्द्रादि अनेक ऋषि सर्वलोकचिकित्सक तथा आयुर्वेद के कर्त्ता थे।

चिकित्सक भृगु—महर्षि भृगु चिकित्सा में प्रवीण थे। इसका प्रमाण वाग्भट-सुत तीसट के ग्रन्थ चिकित्साकलिका में है—

हारीत-सुश्रुत-पराशर-भोज-भेल-
भृग्वग्निवेश-चरकादिचिकित्सकोक्तैः॥ २॥

अर्थात्—हारीत, भृगु, चरक आदि चिकित्सकोक्त वचनों के अनुसार।

६. **सांख्य शास्त्र**—भृगु का सांख्य-शास्त्र पर कोई ग्रन्थ था। महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय १७५ से भृगु-भरद्वाज संवाद में सृष्टि उत्पत्ति का सांख्य-सिद्धांत पर आश्रित अपूर्वज्ञान उल्लिखित है।

योग—भृगु के अन्य योग अभी हमारी दृष्टि में नहीं पड़े।

७. अंगिरा

वंश—प्रजापति अंगिरा भी ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे। उनका आंशिक वंश-विस्तार आगे दिया गया है।

---

१ शालिहोत्र ऋषि का हयशास्त्र महाभारत युद्ध से बहुत पूर्व रचा गया। इस पर मासिक पत्र वेदवाणी, दिसम्बर, १९५१ के अंक में पण्डित भगवद्दत्त जी का लेख देखें।

अत्रि तथा पार्जिटर—पार्जिटर लिखता है—

The mythical rishi Atri was made one with the mythical Atri, who is called a primaeval prajapati and father of Soma, the moon (p. 188)

अर्थात्—कल्पित ऋषि अत्रि और ब्रह्मा के मानस पुत्र प्रजापति अत्रि को, जो सोम अथवा चन्द्रमा (moon) का पिता है, एक बनाया गया है।

आलोचना—वस्तुतः ये दो अत्रि नहीं थे। अत्रि की दीर्घायु देखकर पार्जिटर महोदय घबरा गए हैं। पुरातन आचार्यों ने दो को एक नहीं बनाया, प्रत्युत पार्जिटर ने एक को दो बना दिया है। अत्रि कल्पित (mythical) पुरुष न था, परन्तु सर्वथा ऐतिहासिक पुरुष था। यही अत्रि सम्राट् सोम का पिता था। यह सोम पुरुष-विशेष था, आकाशस्थ चन्द्र नहीं।

बौधायनकल्प के अनुसार अत्रि-गोत्र में—कृष्णात्रेय, गौरात्रेय, रक्तात्रेय, नीलात्रेय, श्वेतात्रेय, श्यामात्रेय आदि हुए हैं।

ऋग्वेद तथा अत्रि—परम तपस्वी अत्रि तथा उन के कुल के कुछ अन्य ऋषि ऋग्वेद के पांचवें मंडल के द्रष्टा थे। महर्षि अत्रि होता था। यथा, शतपथ ब्राह्मण, ४।३।४।२१ में लिखा है—

अत्रिर्वा ऋषीणां होतास।

अर्थात्—अत्रि ऋषियों का होता था।

ज्ञात होता है, अत्रि का ऋग्वेद से विशेष सम्बन्ध था।

अत्रि का मेरुविषयक मत—वायुपुराण ३४।६२ के अनुसार महर्षि अत्रि मेरुरूपी-कर्णिका का विस्तार शताश्रि मानते हैं। इस विषय में भिन्न-भिन्न ऋषियों के पृथक्-पृथक् मत थे। वास्तव में पर्वत के जिस पार्श्व का ज्ञान जिस ऋषि को था, उसी के अनुसार वह उसका परिमाण बताता था।

अत्रि-आश्रम—मत्स्यपुराण ११८।६१-७६ के अनुसार पहले अत्रि का आश्रम हिमालय के पश्चिम में था। दीर्घायु महर्षि अत्रि रामायण के काल में जीवित थे। उस समय चित्रकूट पर उनका निवास था।

अनुसूया का अनुलेपन—दृढव्रता सीता को तपोधना अनुसूया ने नित्य-सौन्दर्य-प्रद अनुलेपन दिया। रामायण अयोध्याकांड सर्ग ११८ में लिखा है—

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्राभरणानि च।
अंगरागं च वैदेहि महार्हं चानुलेपनम् ॥१८॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥१९॥

अर्थात्—हे सीते, यह दिव्य श्रेष्ठ माला, अंगराग तथा बहुमूल्य अनुलेपन तुम्हें भेंट करती हूँ।

प्रतीत होता है, आयुर्वेद-परम्परा-वर्णित महर्षि अत्रि की भार्या अनुसूया पति के महान् आयुर्वेद ज्ञान के कारण अनेक अद्वितीय योग जानती थी।

अत्रि की कृतियाँ

१. **आयुर्वेद**—अत्रि की आयुर्वेद सम्बन्धी रचना का ज्ञान हमें अभी नहीं। इनका कोई योग भी हम अभी तक ढूँढ नहीं सके हैं।

३२०० श्लोकात्मक आत्रेय-संहिता का एक त्रुटित हस्तलेख बड़ोदा के सूचीपत्र पृ० १२६२ पर संख्या २६ पर सन्निविष्ट है।

२. **धर्म शास्त्र**—अत्रि-रचित धर्मशास्त्र गद्य, पद्यमय था। इसके उद्धरण अनेक टीका ग्रन्थों में मिलते हैं।

३. **वास्तु शास्त्र**—मत्स्य पुराण अध्याय २५२।२ के अनुसार अत्रि वास्तु शास्त्र के अठारह उपदेशकों में से एक था।

४. **ज्योतिष शास्त्र**—कश्यप तथा पराशर की संहिताओं के अनुसार ज्योतिष शास्त्र प्रवर्तक अठारह ऋषियों में से अत्रि एक था।

५. **राज शास्त्र**—अत्रि के राज शास्त्र-विषयक कतिपय वचन नीति वाक्यामृत की अज्ञात-नामा टीका में उद्धृत हैं।

६. वसिष्ठ

वंश—प्रजापति वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इनकी गणना सप्तर्षियों में है। ये ही उत्तरकाल में मैत्रावरुणी वसिष्ठ हुए। इनके पुत्र शक्ति तथा पौत्र पराशर थे। पराशर भी आयुर्वेद के महापण्डित थे। संस्कृत-साहित्य में एक आपव वसिष्ठ भी पाए जाते हैं। देवव्रत भीष्म एक वसिष्ठ के शिष्य थे। उत्तरकाल में यह नाम उपाधि हो गया था। दशरथ के मन्त्री-पुरोहित मैत्रा-वरुणी वसिष्ठ थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम अरुंधती था।

स्थान—वसिष्ठ का निवास कई स्थानों पर रहा। रामायण के काल में ये अयोध्या में निवास करते थे।

ब्राह्म रसायन द्वारा दीर्घ जीवन—चरक संहिता, चि० १।३ में लिखा है—

> एतद्रसायनं पूर्वं वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः।
> जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः ॥४॥
> प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्।
> यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥५॥

इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम ।

अर्थात्—इस [बुद्धिबल तथा इन्द्रिय बल-प्रद] रसायन के सेवन से पुराने काल में वसिष्ठ, कश्यप, अङ्गिरा, जमदग्नि, भरद्वाज तथा तादृश अन्य ऋषि श्रम, व्याधि और जरा से मुक्त हुए। वे उसके प्रभाव से इष्ट-काल पर्यन्त तप तपते रहे।

ऋषि सहस्रों वर्ष जीवित रहे, इस विषय में किस विद्वान् को सन्देह हो सकता है।

वसिष्ठ की रचनाएं

१. **आयुर्वेद**—हेमाद्रि के लक्षण प्रकाश में उद्धृत शालिहोत्र के वचन से हम पूर्व पृ० ५९ पर लिख चुके हैं कि आयुर्वेद के कर्ता अनेक ऋषि हुए। वसिष्ठ का नाम भी उनमें है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है कि त्रिमल्ल भट्ट की योग-तरंगिणी में आयुर्वेद सम्बन्धी वसिष्ठ-संहिता उद्धृत है।

वसिष्ठ का वैद्यक-ज्ञान—महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३०८।८ से मैत्रावरुणि वसिष्ठ और करालजनक का सम्वाद उल्लिखित है। सांख्य-ज्ञान-परिपूर्ण इस संवाद में वसिष्ठ—शीर्षरोग, अक्षिरोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वरगण्ड, विषूचक, श्वित्रकुष्ठ, अग्निदग्ध, सिध्म तथा अपस्मार का नाम स्मरण करता है।

२. **वास्तु शास्त्र**—मत्स्यपुराण के २५२।२ में वसिष्ठ को भी वास्तु-शास्त्रोपदेशक कहा है।

३. **ज्योतिष शास्त्र**—गणक तरंगिणी के आरम्भ में कश्यपादि के वचनानुसार अनेक ज्योतिष शास्त्र प्रवर्त्तकों को स्मरण किया है। वसिष्ठ का नाम उनमें है। वसिष्ठ का सिद्धान्त-ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। पराशर लिखता है कि वसिष्ठ ने माण्डव्य तथा वामदेव के लिए ज्योतिष शास्त्र का उपदेश किया। यथा—

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम् ॥

४. **धर्मसूत्र**—वासिष्ठ धर्मसूत्र सम्प्रति उपलब्ध होता है। वह महाभारत-काल के आस-पास की रचना है। उसका सम्बन्ध किस वसिष्ठ से था, यह अभी अज्ञात है।

५. **योग वासिष्ठ**—यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। परन्तु इस ग्रन्थ का यह नाम कैसे हुआ, यह अभी अज्ञात है।

६. सांख्य शास्त्र--वसिष्ठ सांख्यशास्त्र का ज्ञाता था। उसने यह ज्ञान हिरण्यगर्भ से प्राप्त किया। (शान्तिपर्व ३१३।४५।।)

योग—१. अष्टांगहृदय कासचिकित्सा ३।१४० में वसिष्ठ की रसायन के विषय में लिखा है—

रसायनं वसिष्ठोक्तमेतत् पूर्वगुणाधिकम्।

२. अष्टांगसंग्रह, चिकित्सास्थान, अ० १० में लिखा है—

वासिष्ठहरीतकिर्वा

३. गिरिन्द्रनाथ जी ने गदनिग्रह, भाग प्रथम, पृ० १४६ के अनुसार केवल वासिष्ठहरीतक्यवलेह का उल्लेख किया है।

१०. कश्यप

वंश—ब्रह्मा के मानसपुत्रों में एक मरीचि है। महाभारत शान्तिपर्व २००।१८ के अनुसार प्रजापति कश्यप मरीचि के मानसपुत्र थे।

आयुर्वेदीय काश्यप संहिता में कश्यप को मारीच तथा प्रजापति कहा है। यथा—

मारीचमृषिमासीनं सूर्यवैश्वानरद्युतिम्। पृ० १४८
प्रजापतिं समासीनमृषिभिःपुण्यकर्मभिः।
पप्रच्छ विनयाद्विद्वान् कश्यपं वृद्धजीवकः ॥३॥ पृ० ६२।

नाम पर्याय—महाभारत शान्तिपर्व २०१।८ में मारीच-कश्यप का एक नाम अरिष्टनेमि लिखा है—

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी श्रुते।
अरिष्टनेमिरित्येकं कश्यपेत्यपरं विदुः॥

अर्थात्—मरीचि का पुत्र कश्यप है। उसके दो नाम सुने जाते हैं। एक नाम अरिष्टनेमि, दूसरा कश्यप।

मत्स्यपुराण ६।१३ में कश्यप तथा अरिष्टनेमि को पृथक्-पृथक् स्मरण किया गया है। यथा—

प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥

अतः कश्यप का अरिष्टनेमि नाम गौण समझना चाहिए।

कश्यप तथा दक्ष-कन्याएं—महाभारत और पुराणानुसार कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हुआ। इनकी सन्तति दैत्य, दानव, तथा आदित्य आदि हुए। कश्यप का वंश अति विस्तृत हुआ। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति ।७।५।१।५।।

अर्थात्—[इसलिए पुरातन विद्वान् कहते हैं] सारी प्रजाएं कश्यप की हैं।

आज भी कश्यप-गोत्र बहुत प्रसिद्ध है।

कश्यप तथा काश्यप का अन्तर—चरकसंहिता, सूत्रस्थान, १।८, १२ में कश्यप, मारीचि तथा काश्यप इन तीन ऋषियों के नाम स्मरण किये गये हैं। यथा—

अंगिरा जमदग्निश्च वसिष्ठः कश्यपो भृगुः।
कांकायनः कैकशेयो धौम्यो मारीचिकाश्यपौ।

वास्तव में यह पाठ अशुद्ध है। कश्यप मारीच है। अतः यहां दो शुद्ध पाठ हो सकते हैं —

मारीचिकाश्यपः अथवा मरीचिकाश्यपौ।

मरीचि का पुत्र था कश्यप। अतः कश्यप को मारीच कहते हैं। कश्यप का पुत्र काश्यप हुआ, तथा मारीच का पुत्र मारीचि कहलाया। अतः मारीचि और काश्यप एक हैं।

कात्यायन अपनी ऋक् सर्वानुक्रमणी (विक्रम से २७५० वर्ष पूर्व) ८।२९ में लिखता है—

बभ्रुर्दश मारीचः कश्यपो वा द्वैपदम्।

इस पाठानुसार कश्यप मारीच है।

कात्यायन का गुरु शौनक बृहद्देवता ५।१४३ में मारीच-कश्यप का स्मरण करता है—

प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः।

अर्थात्—प्रजापति ब्रह्मा का पुत्र मरीचि है, तथा मरीचि पुत्र मारीच-कश्यप है।

पूर्वोक्त दोनों पाठ प्रामाणिक हैं। अनेक सम्पादकों ने इस पाठ-शुद्धि का विचार किए विना ग्रन्थ मुद्रित किए हैं। यथा—वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्य पाठ, बालकाण्ड ४६।१ में लिखा है—

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता।
मारीचं काश्यपं राम भर्तारमिदमब्रवीत्।।

यहां मारीच काश्यप पाठ अशुद्ध है।

पं० भगवद्दत्त-सम्पादित, वाल्मीकीय-रामायण, पश्चिमोत्तर पाठ, बालकाण्ड ४२।१ में इस श्लोक का निम्नलिखित पाठ है—

हतपुत्रा ततो देवैर्दितिः परमदुःखिता।
मारीचं कश्यपं देवी भर्तारमिदमब्रवीत्॥

यहां मारीच कश्यप शुद्ध पाठ है। पूर्वोक्त विवेचन से निम्नलिखित परम्परा सर्वथा स्पष्ट हो जाती है—

मरीचि
|
मारीच=कश्यप
|
मारीचि=काश्यप

अनेक सम्पादकों ने यह भेद नहीं समझा, अतः अन्य अनेक ग्रन्थों के अशुद्ध पाठ देने अनावश्यक हैं। उनके शुद्ध अशुद्ध पाठों का विवेचन विद्वान् स्वयं करें।

स्थान—हम पूर्व पृ० ४३ पर लिख चुके हैं कि इन्द्र ने अपने पिता कश्यप के आश्रम में रह कर १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य पूर्ण किया। वह आश्रम संभवतः हिमवान् के उत्तर-पार्श्वस्थ चम्पकवन में था।

काल—कश्यप प्रजापति कृतयुग के आरम्भ से जामदग्न्य परशुराम द्वारा इक्कीस वार क्षात्र-नाश के अन्त तक अवश्य जीवित थे। परशु-राम ने उन्हें सारी भूमि दान कर दी।

कश्यप की विशेषता—आयुर्वेदीय काश्यप संहिता में कश्यप का व्यक्तित्व स्पष्ट करने वाले कुछ विशेषण मिलते हैं। यथा—

हुताग्निहोत्रम्, जिसने अग्निहोत्र कर लिया है (पृ०१६), ज्वलनार्कतुल्यम्, जो दीप्त तेज वाले सूर्य-सदृश है (पृ०१६८), तपोदम्, तपोनिधि (पृ० १६८), लोकपूजितम्, संसारपूज्य (पृ० १७६), सर्वशास्त्रज्ञम्, सम्पूर्ण शास्त्र जानने वाला (पृ० १६२), वेदवेदांगपारगम्, वेद तथा वेदांगों का पारग (पृ० १६६), वदतांवर, श्रेष्ठ वक्ता (पृ० १०३), सर्वशास्त्रविदांवरम्, सम्पूर्ण शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ (पृ० २०६), भिषजांश्रेष्ठम्, वैद्यश्रेष्ठ (पृ० २६४)।

टिप्पण—ज्ञात होता है कि कश्यप साधारण व्यक्ति नहीं था। वह केवल एक अथवा दो शास्त्रों का ज्ञाता नहीं अपितु सर्वशास्त्रवित् था। हमारे इतिहास में अनेक ऐसे ऋषियों का उल्लेख है। अतः हम पूर्ण निश्चय से कह सकते हैं कि आर्य वाङ्मय तपोनिधि आचार्यों की देन है। वेद-वेदांग सहित सर्वशास्त्रवेत्ता ऋषिप्रवर संसार की कल्याण-कामना से निश्चित तथ्यों का

उपदेश करते थे। वर्तमानकालीन, शतवर्ष से न्यून जीने वाले, केवल पाश्चात्य ग्रन्थ पठित व्यक्ति के लिए इसको स्वीकार करना कठिन है। इसमें हमारा दोष नहीं।

विशेष घटनाएं

१. कश्यप का रसायन-सेवन—हम पूर्व पृ० ६३ पर लिख चुके हैं कि ब्राह्म-रसायन के सेवन से अनेक ऋषि श्रम, व्याधि तथा जरा-भय मुक्त हुए। कश्यप का नाम भी उन ऋषियों में है। फलतः कश्यप दीर्घजीवी था। वह इष्टकाल पर्यन्त तप करके ऋषि बना। यथा—

तपसा ऋषितां गताः। मत्स्यपुराण १४५।६२–६४॥

अर्थात्—(काव्य, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, वामदेव, अगस्त्य आदि) तप से ऋषि बने।

२. भूमि उज्जहार—नीलमत पुराण में एक पुरातन ऐतिहासिक घटना उल्लिखित है। तदनुसार कश्यप ने काश्मीर की भूमि को जल से बाहर किया। शांखायन श्रौतसूत्र, १६।१६।२–४ में लिखा है—

विश्वकर्मा ह भौवनो अन्तत ईजे। तं ह भूमिरुवाच।
न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन्भौवन मां दिदासिथ-
उप मंक्ष्ये ऽहं सलिलस्य मध्ये मृषैव ते संगरः कश्यपाय॥ इति।
तां कश्यप उज्जहार।

अर्थात्—भूमि नें कहा—मैं जल में डूबी रहूँगी, कश्यप को तेरा [भूमि] दान व्यर्थ है। उस भूमि को कश्यप नें जल में से बाहर निकाला।

शतपथ ब्राह्मण १३।७।१।१५ में भी इसी घटना का संकेत है।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—प्रजापति कश्यप ने अपने पुत्र इन्द्र से आयुर्वेद-ज्ञान-उपलब्ध करके उसका उपदेश कौमारभृत्य-तन्त्र के रूप में अपने प्रिय शिष्य वृद्धजीवक को किया। वह उपदेशामृत काश्यपसंहिता अथवा वृद्धजीवकीयतन्त्र के नाम से उपलब्ध है। आयुर्वेद-संसार, वैद्य श्री यादवजि त्रिकमजि आचार्य तथा नेपाल के राजगुरु श्री पं० हेमराज जी शर्मा का अत्यन्त आभारी है, जिनके अथक परिश्रम से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

काश्यपसंहिता की विशेषताएं

(क) ज्ञान चक्षु तथा तप द्वारा निर्मित—यह तन्त्र कश्यप के तप का फल है। काश्यपसंहिता कल्पस्थान में लिखा है—

ततो हितार्थं लोकानां कश्यपेन महर्षिणा ॥१८॥
पितामहनियोगाच्च दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा ।
तपसा निर्मितं तन्त्रं ऋषयः प्रतिपेदिरे ॥१६॥

अर्थात्—तब संसार के कल्याण के लिए महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा की आज्ञा से, ज्ञान-नेत्रों से देखकर तप से यह शास्त्र [काश्यप तन्त्र] रचा। उसे ऋषियों ने प्राप्त किया।

(ख) सिद्धयोग—कश्यप ने इस ग्रन्थ में सिद्ध प्रयोग बताए हैं। काश्यप-संहिता अष्टज्वरचिकित्साध्याय पृ० ३२१ पर लिखा है—

इति शूलचिकित्सा ते विस्तरेण प्रकीर्तिता।
सिद्धैः प्रयोगैर्विविधैः प्राणिनां हितकाम्यया ॥६७॥

(ग) सूक्ष्म विवेचन—भोजनकल्प प्रकरण में वृद्धजीवक ने कश्यप से पूछा है भूखे तथा प्यासे जन्तु का क्या लक्षण है। इसके उत्तर में प्रजापति कहते हैं—

नासर्वविन्नो खलु मांसचक्षुः प्रश्नानिमान् वक्तुमिहोत्सहेत। पृ० १६८

अर्थात्—असर्ववित् तथा केवल मांसचक्षु इन प्रश्नों के कथन का साहस नहीं कर सकते।

कश्यप सर्वशास्त्रनिष्णात थे, अतः वे सूक्ष्म तत्वों की विवेचना कर सके।

(घ) दन्तोत्पत्ति का वैज्ञानिक विश्लेषण—कश्यप का ग्रन्थरत्न सूक्ष्म तत्वों से भरा पड़ा है। आयुर्वेद की वैज्ञानिकता के उदाहरणार्थ कश्यपसंहिता दन्त-जन्मिकाध्याय का एक वचन उद्धृत किया जाता है। यथा—

यावत्स्वेव च मासेषु जातस्य सत उद्भिद्यन्ते तावत्स्वेव च वर्षेषु पतिताः पुनरुद्भिद्यन्ते। पृ० ६।

अर्थात्—[बालक के] उत्पन्न होने पर जिन जिन मासों में उसके दांत मांस चीरकर बाहर निकलते हैं उन उन वर्षों में गिरकर पुनः उग पड़ते हैं।

आयुर्वेद ज्ञान को अवैज्ञानिक कहने वालों की तुष्टि के लिए ऐसे तथ्यों का परीक्षणों द्वारा पूर्ण प्रमाणित करना आवश्यक है।

(ङ) श्रेष्ठ दांत—कुमार तथा कुमारियों का दन्तजन्म भिन्न-भिन्न महीनों में होता है। कश्यप दन्तोत्पत्ति के लिए आठवां महीना सर्वोत्तम मानते हैं। यथा—

तथाष्टमे मासि सर्वगुणसंपन्ना भवन्ति। काश्यपसंहिता दन्तजन्मि-काध्याय पृ. ६-१०।

अर्थात् आठवें मास में [जन्मे दन्त] सर्वगुणसंपन्न होते हैं।

प्रकरणवश हम यहां अष्टांगसंग्रह का वचन भी उद्धृत करते हैं—

स दीर्घायुषो ऽष्टमान्मासात् परतो वा प्रवर्तते । इतरेषां तु चतुर्थात् । ते अतिबाल्ये दन्तोत्पादवेदनयातिपीडिता न सम्यक् सम्पूर्णधातुबला भवन्ति ।

अर्थात्—दीर्घायु होने वाले बालक का दन्तोद्भेद आठवें मास से अथवा उसके पश्चात् प्रारम्भ होता है। अल्प-आयु बालकों का चौथे [मास] से आरम्भ होता है। अत्यन्त छोटी अवस्था में दांतों के उत्पन्न होने की पीड़ा से आक्रान्त बालक परिपक्व-धातुबल नहीं होते। [अतः उनकी आयु अल्प होती है।]

इस वचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिन बालकों के दन्त छोटी अवस्था में उत्पन्न होते हैं उन बालकों की आयु दीर्घ नहीं हो सकती ।

च. चाक्षुष्य-प्रयोग—वर्तमान युग में छोटे से छोटे शारीरिक कष्ट को शान्त करने के लिए अनेक लोग डाक्टरों के पास भागते हैं। परन्तु आज से कुछ पूर्व तक अधिकांश भारतीय स्त्रियां भिन्न-भिन्न सस्ते तथा अचूक टोटके जानती थीं। ये टोटके कुलपरम्परा से आ रहे थे। वास्तव में ये शास्त्रीय योग थे। अक्षिरोगों में चासकू का प्रयोग ऐसा ही शास्त्रीय योग है। चरक, सुश्रुत आदि में चाक्षुष्य का उल्लेख नहीं है। पर काश्यप संहिता में इसका प्रयोग लिखा है।

एकापि स्तन्यसंयुक्ता चक्षुष्या संप्रशस्यते ।
चक्षुष्याकल्प इत्येष, पुष्पकल्पं निबोध मे ॥२१॥

षड्कल्पाध्याय, पृ० १४६ ।

हमने उदाहरणार्थ दो एक विषयों पर प्रकाश डाला है। वास्तव में सूक्ष्मदर्शी कश्यप का यह ग्रन्थ अद्वितीय है और अन्यत्र अनुल्लिखित अनेक बातों से भरा पड़ा है।

२. धर्मशास्त्र—बौधायन धर्मसूत्र १।२१।४ में कश्यप का वचन उद्धृत है। कश्यप का शास्त्र काश्यप कहाता था। उसके अनेक वचन विश्वरूप आदि की पुरानी टीकाओं में उद्धृत हैं। उस धर्मसूत्र का आंशिक पाठ कुछ हस्तलेखों में अब भी उपलब्ध है।

३. निघण्टु—प्रजापति कश्यप निघण्टु का कर्ता है। महाभारत, शान्ति-पर्व, कुम्भघोण संस्करण, ३५२ में लिखा है—

वृषो हि भगवान्धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत ।
नैघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥२३॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ॥२४॥

अर्थात्—हे भारत, ऐश्वर्य का दाता धर्म, जगत् में वृष प्रसिद्ध है। निघण्टु के पद कथन में मुझे उत्तम वृष जान। कपि नाम वराह और श्रेष्ठ का है। धर्म वृष कहलाता है। अतः प्रजापति कश्यप ने मुझे वृषाकपि कहा है।

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि प्रजापति कश्यप निघण्टु का कर्ता था।

४. **ज्योतिष**—कश्यप तथा पराशरकृत ज्योतिः-संहिताओं में कश्यप का नाम अष्टादश ज्योतिः-शास्त्र प्रवर्तकों में है। वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता में कश्यप को स्मरण करता है। भट्ट उत्पल की टीका में कश्यप के वचन उद्धृत हैं।

५. **मन्त्रद्रष्टा**—कश्यप एक सहस्र ऋक् सूक्तों का द्रष्टा था। ऋक्सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद १।९९ के विषय में लिखा है—

> जातवेदस एका जातवेदस्यमेतदादीन्येकभूयांसि
> सूक्तसहस्रमेतत्कश्यपार्षम्।

६. **शिल्प**—काश्यप-शिल्प सुप्रसिद्ध है।

११. अगस्त्य

वंश—महर्षि अगस्त्य की उत्पत्ति-विषयक घटना अन्वेषणीय है। राम सुतीक्ष्ण-ऋषि से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछता है। सुतीक्ष्ण उसका उत्तर देता है—

> दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः।

वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्य पाठ अरण्य कांड ११।३९॥

अर्थात्—दक्षिण की ओर अगस्त्य के भ्राता का बड़ा सुन्दर आश्रम है।

इससे ज्ञात होता है कि अगस्त्य का एक भाई भी था। इस प्रकरण के अगले श्लोकों से ज्ञात होता है कि अगस्त्य उस भाई का अग्रज था।

बृहद्देवता ५।१४८-१५० के अनुसार अगस्त्य तथा वसिष्ठ मैत्रावरुणि भ्राता थे। बृहद्देवता २।८२ के अनुसार अदिति अगस्त्य-स्वसा थी। इन दोनों कथनों का तथ्य अभी अस्पष्ट है। अगस्त्य की धर्मपत्नी लोपामुद्रा थी।

काल—अगस्त्य ऋषि त्रेता के आरम्भ से राम के काल तक अवश्य जीवित था।

आयु—अगस्त्य की आयु बतानी कठिन है। परन्तु थे वे दीर्घजीवी। मृत्यु उनकी वशवर्त्तिनी थी। वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्यपाठ ११।८२ में राम कहता है—

> निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया।

अर्थात्—संसार की हितकामना से अगस्त्य ने मृत्यु को बलपूर्वक पकड़ कर [परे किया]।

इस प्रकरण में आगे कहा है—

अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ॥८७॥

अर्थात्—विश्रुतकर्मा दीर्घायु [अगस्त्य] का यह आश्रम है।

वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड ११।५५ में अगस्त्य-भ्राता को मृत्युञ्जय कहा है। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा भी दीर्घायु थी। प्रतीत होता है अगस्त्य के पास दीर्घायुप्रद रसायन थी। उसके परिवार में उस रयायन का सेवन होता था। इसी कारण अगस्त्य तथा अगस्त्य- भ्राता मृत्युञ्जय थे।

लोपामुद्रा का एतद्विषयक चमत्कार—हरिवंशपुराण १।३२,३४ में लिखा है—　　लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः।

अर्थात्—लोपामुद्रा की कृपा से उस [अलर्क] ने परम आयु प्राप्त की।

शेष कोशानुसार लोपामुद्रा का एक नाम दस्रदा है।

अगस्त्य के आयुष्य रसायन का ज्ञान लोपामुद्रा को था। उसका प्रयोग लोपामुद्रा ने काशिराज अलर्क को करवाया। इस कारण महाराज अलर्क ने परम आयु प्राप्त की।

कश्यप ने रसायन, जप, तप तथा योग-सिद्धि को मृत्यु-विजय का उपाय माना है। प्रमाणार्थ इसी लेख में आगे पृ० ७५ पर ग्रन्थ-शीर्षकान्तर्गत आयुर्वेद के प्रकरण में अगस्त्य का वचन पढ़ें।

इस विवेचना से निश्चित हो गया कि अगस्त्य दीर्घायु था।

नामपर्याय तथा विशेषण—अगस्त्य के दो नाम-पर्याय अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

अगस्ति, कुम्भोद्भव। शेषानुसार एक नाम **काथि** है।

वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड १।६१ में अगस्त्य का एक विशेषण लिखा है—

अगस्त्यं नियताहारम्।

अर्थात्—नियमित आहार करने वाले अगस्त्य को।

हम पूर्व पृ० २८ के टिप्पण में लिख चुके हैं कि परम आयु भोगने के लिए दो काल खाना चाहिए। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि दीर्घायु-अगस्त्य नियताहार थे। अगस्त्याश्रम के वर्णन में वाल्मीकि लिखता है कि अगस्त्याश्रमवासी भी नियताहार थे।

वस्तुतः वैद्यों की आयु दीर्घ होनी चाहिए तथा उन्हें समीपवर्ती लोगों को भी आयु-सम्बन्धी रहस्यों का ज्ञान कराना चाहिए।

स्थान—वाल्मीकीय रामायण ११।८३ के अनुसार अगस्त्य का आश्रम दक्षिण दिशा में था। सुबन्धु अपनी वासवदत्ता के पृ० २० पर लिखता है—

अगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधकः।

अर्थात्—अगस्त्य के समान दक्षिण दिशा को सुन्दर और पवित्र करने वाला।

दक्षिण दिशा में राक्षसों का प्राबल्य था। परन्तु अगस्त्य के वहाँ बस जाने के कारण राक्षस उस ओर मुख नहीं कर सकते थे। उस दक्षिण दिशा के ऋषियों में अगस्त्य प्रमुख समझा जाता था। भवभूति के उत्तररामचरित में आत्रेयी कहती है—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे, भूयांस उद्‌गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां,……॥

अर्थात्—इस प्रदेश में अनेक सामवेद-ज्ञाता रहते हैं। अगस्त्य उनमें मुख्य है। उनसे वेदान्त विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वाल्मीकि के आश्रम से यहाँ आई हूं।

अगस्त्याश्रम की विशेषता—अगस्त्याश्रम में विनीत, धर्म की आराधना के इच्छुक, नियताहार, देव, यक्ष, नाग, सिद्ध महात्मा तथा परमर्षि निवास करते थे। वहाँ मृषावादी, क्रूर, शठ, नृशंस तथा कामवृत्त जीवित नहीं रह सकते थे। इसी कारण अगस्त्याश्रम अत्यन्त प्रसिद्ध था। राम भी इस प्रसिद्धि को सुनकर अगस्त्य की आराधना के लिए उनके आश्रम में आए।[1]

विशेष घटनाएं

१. **इल्वल-वातापि वध**—वाल्मीकीय रामायण आरण्यकाण्ड ११।५६-६८ के अनुसार अगस्त्य ने इल्वल-वातापि नामक असुर-भ्राताओं का वध किया। अगस्त्य न केवल रसायनज्ञ अपितु धनुर्वेदाचार्य भी था। अगस्त्य के अस्त्र-बल से त्रस्त क्रूरकर्मा राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर मुख करने का भी नाम न लेते थे।

२. **दिव्यास्त्र दान**—शुश्रूषु राम से अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होंने अग्निहोत्रपूर्वक राम को अर्घ्य देकर उसे वानप्रस्थ-धर्मानुकूल भोजन कराया। पुनः वे उस से बोले—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमरत्नविभूषितम् ॥३२॥
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा।
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ॥३३॥

---

१. वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड ८७—९५।

दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ।

... ...

तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्गं च मानद ॥३६॥

अर्थात्—हे पुरुष श्रेष्ठ यह विश्वकर्म-निर्मित, सुवर्ण-रत्न-विभूषित दिव्य धनुष् विष्णु का है। सूर्य-सदृश [उज्ज्वल], व्यर्थ न जाने वाला, उत्तम शर ब्रह्मा का दिया हुआ है। ये अक्षय तीरों वाले तूणीर मुझे महेन्द्र ने दिए।

हे मान देने वाले राम, वह धनुष, दोनों तूणीर, शर तथा खड्ग [तेरी भेंट हैं]।

अगस्त्य धनुर्वेद में परम-प्रवीण था। उसे देवों से दिव्यास्त्र प्राप्त थे। वही अस्त्र उसने राम को दिए।

अगस्त्य के गुरु

१. **इन्द्र**—यहाँ अगस्त्य का वर्णन इन्द्र की शिष्यपरम्परा में कर रहे हैं। इन्द्र से उसने आयुर्वेद के अनुष्ठेय योग सीखे।

इन्द्र ने अध्यात्म-ज्ञान भी अगस्त्य के लिए दिया। तलवकार उपनिषद् ब्राह्मण में लिखा है—

एवं वा एतं गायत्रस्योद्गीथम् उपनिषदम् अमृतम् इन्द्रोऽगस्त्याय्योवाच ।४।६।१॥

२. **भास्कर**—अगस्त्य को आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान भास्कर से प्राप्त हुआ। ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, अ० १६ में वर्णित भास्कर शिष्यों में अगस्त्य का नाम उल्लिखित है।

अगस्त्य के शिष्य

१. **आयुर्वेद में**—अगस्त्य से आयुर्वेद सीखने वाले शिष्य का ज्ञान हमें अभी नहीं हो सका।

२. **धनुर्वेद में**—अग्निवेश ने अगस्त्य से धनुर्वेद सीखा था। महाभारत, आदिपर्व,[1] १५२।१० में लिखा है—

अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा।
अग्निवेश्य इति ख्यातस्तस्य शिष्योस्मि भारत॥

अर्थात् —(द्रोण कहता है) पूर्वकाल में अग्निवेश नामा मेरा गुरु धनुर्वेद में अगस्त्य का शिष्य था। हे भारत मैं उसका शिष्य हूँ।

---

१. कुम्भघोण संस्करण।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—भास्कर से चिकित्सा सीखते समय अगस्त्य ने भास्करतन्त्र पढ़ा। ब्रह्मवैवर्तपुराण, के अनुसार भास्कर के सब शिष्यों नें स्वतंत्र-संहिताएं रचीं। तदनुसार अगस्त्य-तन्त्र का नाम द्वैधनिर्णयतन्त्र था। यथा—

द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसंभवः॥

अर्थात्—अगस्त्य ने (भिषक्क्रिया विषयक) द्वैधनिर्णयतन्त्र बनाया।

यह ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं। चरकसंहिता, सूत्रस्थान, १।६२ की टीका में चक्रपाणि ने अगस्त्य का एक श्लोक उद्धृत किया है—

रसायनतपोजप्ययोगसिद्धैर्महात्मभिः ।
कालमृत्युरपि प्राज्ञैर्जीयते नालसैर्नरैः ॥ इति।

अर्थात्—रसायन, तप, जप तथा योगसिद्धियुक्त महात्माओं द्वारा कालमृत्यु भी जीती जाती है। आलसी मनुष्य से नहीं।

पूर्वलिखित वचन अगस्त्य के किस ग्रन्थ का है यह अभी अज्ञात है। इससे इतना स्पष्ट है कि आयुवृद्धि के सिद्धान्त में अगस्त्य पूर्ण विश्वास रखता था। वह और उसका भ्राता इसमें सफल हो चुके थे।

नावनीतक पृष्ठ ५८ तथा चिकित्सासारसंग्रह में अगस्त्य के योग उद्धृत हैं।

२. **कल्पसूत्र**—प्रपञ्च-हृदय पृ० ३३ पर सप्ताध्यायात्मक आथर्वण अगस्त्य-कल्प का उल्लेख है—

पैप्पलादिशाखाप्रयुक्तमाथर्वणिकं सप्तभिरध्यायैरगस्त्येन प्रदर्शितम्।

अर्थात्—पैप्पलाद शाखा प्रयुक्त सप्त-अध्याययुक्त आथर्वण कल्पसूत्र अगस्त्य-प्रदर्शित है।

इस कल्पसूत्र के गृह्य भाग का उल्लेख आपस्तम्बस्मृति पृ० ७ पर है।

३. **व्याकरण**—तामिल-साहित्य में वैयाकरण-अगस्त्य प्रसिद्ध है। तञ्जोर भण्डार के सूचिपत्रान्तर्गत संख्या ४७१२ के हस्तलेख के अनुसार अगस्त्य का व्याकरण था। आगस्त्य का व्याकरण-विषयक मत ऋक्-प्रातिशाख्य १।२ में मिलता है।

न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम की भूल—ऋक्प्रातिशाख्य वर्गद्वय पर विष्णुमित्र की वृत्ति को देखे विना इस ग्रन्थ के सम्पादकों नें आगस्त्य के स्थान में अगस्त्य पाठ युक्त माना है।

४. **धर्मशास्त्र**—हेमाद्रि-रचित दानखण्ड, पृ० २६१ आदि पर अगस्त्य के दानविषयक श्लोक उद्धृत हैं।

५. वास्तु शास्त्र—अगस्त्य का वास्तुशास्त्रविषयक ग्रन्थ न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम में सन्निविष्ट है। शिल्परत्न, विश्वकर्मशिल्प तथा शिल्पसंग्रह आदि में यह ग्रन्थ बहुधा उद्धृत है।

६. तक्षशास्त्र—आपस्तम्बीय शुल्बसूत्र २।६ में लिखा है—

अथाप्युदाहरन्ति—
अष्टाशीतिशतमीषा तिर्यगक्षश्चतुश्शतम्।
षडशीतियुगं चास्य रथचारण उच्यते ॥

इस प्रकरण की व्याख्या में करविन्दस्वामी लिखता है—

तक्षशास्त्रे गार्ग्यागस्त्यादिभिरङ्गुलिसंख्ययोक्तं
रथपरिमाणश्लोकमुदाहरन्ति।

इस से ज्ञात होता है कि अगस्त्य अथवा आगस्त्य का कोई तक्ष शास्त्र था।

७. नाट्यशास्त्र—शारदातनयकृत भावप्रकाशन के आरम्भ में नाट्यशास्त्र के आचार्यों में कुम्भोद्भव अर्थात् अगस्त्य का नाम उल्लिखित है।

८. रत्नपरीक्षा—अगस्त्य-रचित रत्नपरीक्षा हालास्य-माहात्म्य का एक भाग है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम मणिलक्षण है।

९. ज्योतिष—अगस्त्य का पञ्चपक्षिशास्त्र सम्प्रति उपलब्ध होता है। देखो तञ्जोर भण्डार सूचिपत्र, संख्या ११४८६-६२। इस ग्रन्थानुसार अनेक प्रश्नों के उत्तर अति सरलता से दिए जा सकते हैं।

१२. पुलस्त्य

वंश—ब्रह्मा के मानस-पुत्र पुलस्त्य की गणना सप्तर्षियों में है। पुलस्त्य का नाम सात चित्रशिखण्डि ऋषियों में है। वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, द्वितीय सर्ग २३-२८ की वंशपरम्परा के अनुसार तृणबिन्दु की कन्या पुलस्त्य-पत्नी थी। परन्तु पुराणादि के अनुसार प्रजापति कर्दम की कन्या हविर्भूः पुलस्त्य-पत्नी थी। इनका पुत्र विश्रवा पौलस्त्य हुआ। नीचे इनका वंशवृक्ष दिया जाता है—

पुलस्त्य
|
विश्रवा
|
रावण

आश्रम—रामायण, उत्तरकाण्ड २।७ के अनुसार ब्रह्मर्षि पुलस्त्य नित्य

स्वाध्यायरत थे। धर्मप्रसंग से देवप्रिय पुलस्त्य मेरु पर तृणबिन्दु के आश्रम में रहते थे।

वर्ण—धर्मशील पुलस्त्य तथा उनका पुत्र विश्रवा ब्राह्मण थे।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पुलस्त्य का आयुर्वेद-सम्बन्धी कोई ग्रन्थ एतावत् ज्ञात नहीं। उनका कोई वचन तथा योग भी अभी ज्ञात नहीं।

२. चित्रशिखण्डी-शास्त्र—महाभारत शान्तिपर्व ३४३।३० में लिखा है—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः॥

अर्थात्—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ (सात) चित्रशिखण्डी हैं।

इन एकाग्रमना, संयमी तथा दान्त ऋषियों ने सम्पूर्ण लोकधर्म का मन में विचार करके यह शास्त्र रचा। महाभारत शान्तिपर्व ३४३ में लिखा है—

ये हि ते ऋषयः ख्याताः सप्त चित्रशिखण्डिनः।
तैरेकमतिभूत्वा यत्प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम् ॥२८॥
वेदैश्चतुर्भिः समितं कृतं मेरौ महागिरौ।
आस्यैः सप्तभिरुद्गीर्णं लोकधर्ममनुत्तमम् ॥२९॥

अर्थात्—इन सात चित्रशिखण्डियों ने एकमति होकर महागिरि मेरु पर उत्तम शास्त्र कहा। थे वे सात मुख, परन्तु एक ही लोकधर्म को उद्गीर्ण करते थे।

यह शास्त्र शतसहस्र-श्लोकात्मक था। महाभारत शान्तिपर्व ३४३ लिखा है—

कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानां हितमुत्तमम्।
लोकतन्त्रस्य कृत्स्नस्य यस्माद्धर्मः प्रवर्तते ॥४०॥

अर्थात्—उन्होंने एक लाख उत्तम श्लोक रचे, जिनसे सम्पूर्ण लोकतन्त्र का धर्म प्रवृत्त होता है।

प्रकीर्ण-उपदेश-ग्रहीता ऋषियों की परम्परा में वर्णित अत्रि, अंगिरा तथा वसिष्ठ की गणना भी चित्रशिखण्डियों में है।

३. ज्योतिष—गणकतरंगिणी के आरम्भ में पराशर-द्वारा स्मरण किए गए १९ ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकों में पुलस्त्य का नाम भी है। पुलस्त्य ने यह ज्ञान अपने शिष्य को दिया। पराशर कहता है—

पुलस्त्याचार्यगर्गोऽत्रिरोमकादिभिरीरितम् ।
विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे ॥

१३. वामदेव

वंश—वामदेव अंगिरा-कुल में उत्पन्न हुआ। मत्स्यपुराण अ० १४५ में लिखा है—

अपस्यौषः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ॥ १०४ ॥
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृता ह्याङ्गिरसां वराः ॥ १०५ ॥

मत्स्यपुराण अ० १४५ के अनुसार वामदेव तप के प्रभाव से ऋषि बना। यथा—

उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यः कौशिकस्तथा।
कर्दमो वालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्धनः ॥९३॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गताः।

वाल्मीकीय रामायण, ७।१ के अनुसार वामदेव दशरथ का ऋत्विक् तथा मन्त्री था। यथा—

मन्त्रिणावृत्विजौ चैव तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च वेदवेदांगपारगौ ॥

अर्थात्—ऋषिश्रेष्ठ, वेदवेदांगपारग, वसिष्ठ तथा वामदेव दशरथ के मन्त्री तथा ऋत्विज थे।

ऋक् सर्वानुक्रमणी के अनेक स्थलों से वामदेव का निम्नलिखित वंश-वृक्ष बनाया जा सकता है—

अङ्गिरा
|
रहूगण
|
गोतम
|
वामदेव
|
बृहदुक्थ

काल—दीर्घजीवी वामदेव ऋग्वेद ४।१९ का द्रष्टा है। ऐतरेय ब्राह्मण ६।१८ में वामदेव के मन्त्र-दर्शन का वर्णन है। वह दशरथ के काल में जीवित था।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—वामदेव आयुर्वेद का कर्ता था। पूर्व पृष्ठ ५९ पर शालिहोत्र-वचनानुसार इसका प्रमाण लिख चुके हैं।

गदनिग्रह, भाग प्रथम, पृष्ठ १७६ पर वामदेव का एक योग उद्धृत है—

प्रमेहे वामदेवेन कथिता गुटिका

कटुत्रिकं वचा मुस्ता विडङ्गं चित्रकं विषम्।
एतानि समभागानि पथ्या च द्विगुणा विषात्॥
पञ्चत्रिंशद्गुडाद्भागाः क्वाथयेन्मृदुनाग्निना।

बदरसमात्र गुटिका कार्या। एषा गुटिका प्रमेहं, आमवातं, गुल्मं, मन्दाग्निं हन्ति विशेषतश्च लालामेहम्॥

इस वचन से ज्ञात होता है कि वामदेव की आयुर्वेदीय संहिता अवश्य थी।

२. ज्योतिष—वामदेव के ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ का ज्ञान अभी नहीं हो सका परन्तु पूर्व पृष्ठ ६४ के प्रमाणानुसार वामदेव ने ज्योतिष-विषयक ज्ञान वसिष्ठ से प्राप्त किया। वसिष्ठ और वामदेव एक साथ दशरथ के मन्त्री तो थे ही। उन्हीं दिनों उसने यह विद्या सीखी।

१४. असित

वंश—वायुपुराण ७०।२३, २४ से ज्ञात होता है कि असित का पिता कश्यप था। कश्यप ने गोत्रकामना से परम तप किया। परिणामस्वरूप वत्सर तथा असित उत्पन्न हुए। यथा—

तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः।
वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सरान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः॥२५॥

अर्थात्—तप करते हुए महात्मा कश्यप के वत्सर तथा असित नामक पुत्र हुए। वे दोनों ब्रह्मवादी थे। वत्सर से निध्रुव तथा रैभ्य उत्पन्न हुए।

असित की पत्नी एकपर्णा तथा पुत्र देवल था। वायुपुराण ७२।१७ में लिखा है—

असितस्यैकपर्णा तु पत्नी साध्वी दृढव्रता।
दत्ता हिमवता तस्मै योगाचार्याय धीमते।
देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं मानसं सुतम्॥

अर्थात्—साध्वी, दृढव्रता, एकपर्णा असित-पत्नी थी। बुद्धिमान्, योगाचार्य के लिए वह हिमवान् ने दी थी। उस [एकपर्णा] ने ब्रह्मिष्ठ, मानस-पुत्र देवल को जन्म दिया।
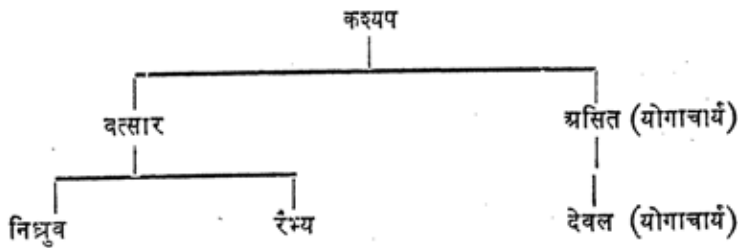
पुरातन इतिहास में देवल को कहीं २ प्रत्यूष का पुत्र भी लिखा है।[1] यदि यह कोई अन्य देवल नहीं, तो असित-काश्यप का एक नाम प्रत्यूष होना चाहिए। परन्तु वायुपुराण ६६।२० के अनुसार प्रत्यूष आठ वसुओं में एक था। अतः वह कश्यप से भिन्न था। उस के पुत्र का नाम भी देवल था। देवल को बहुधा असित-देवल भी कहा है, अर्थात् असित का पुत्र देवल। असित देवल (दैवल ?) ताण्ड्य ब्राह्मण १४।११।१९ में स्मृत है।

आयुर्वेद कर्ता—शालिहोत्र के वचनानुसार असित और देवल दोनों ही आयुर्वेद-कर्ता प्रतीत होते हैं।[2]

१५. गौतम

वंश—गौतम अंगिरा कुल में उत्पन्न हुआ। संस्कृत वाङ्मय में गौतम अनेक आचार्यों का विशेषण है। कठ-उपनिषद् के वाजश्रवा तथा नचिकेता, जनक के पुरोहित शतानन्द का पिता, कुरु-आचार्य कृप तथा छान्दोग्य उपनिषद् का हारिद्रुमत सब गौतम कहलाते थे। गौतम की महिमा से उस के पूर्वज और कनिष्ठ सब गौतम कहे गए। इस का कारण ताण्ड्य ब्राह्मण १३।१२।८ में लिखा है।

आयुर्वेद कर्ता गौतम अतिप्राचीन ऋषि है। गौतम तथा उसकी धर्मपत्नी दिवोदास-भगिनी अहल्या का वंश-क्रम पं० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० ११३ पर देखें।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—शालिहोत्र के अनुसार गौतम की गणना आयुर्वेद-कर्ताओं में है। गौतम के आयुर्वेदीय तन्त्र का ज्ञान हमें अभी नहीं हुआ, परन्तु गौतम के वचन कई स्थानों पर उद्धृत हैं।

---

१. विष्णुपुराण १।१५।११७॥ विष्णुधर्मोत्तर, प्रथम खण्ड ११६।१७॥ महाभारत, आदिपर्व ६७।२५॥

२. काश्यपसंहिता, उपो० पृ० २३। पूर्व पृष्ठ ४६।

आयुर्वेदीय चरकसंहिता सिद्धिस्थान, अ० ११ में लिखा है कि फलवस्ति की श्रेष्ठता के विषय पर मुनियों में परस्पर विवाद हो गया। वे सब निर्णय करने के लिए आत्रेय के पास गए। इन ऋषियों में गौतम भी था। वहां गौतम अपनी सम्मति प्रकट करता है—

कटुतुम्बममन्यतोत्तमं वमने दोषसमीरणं च तत्।
तदवृष्यमशैत्यतीक्ष्णताकटुरौक्ष्यादिति गौतमोऽब्रवीत् ॥६॥

अष्टांगसंग्रह निदानस्थान अध्याय २ में नक्षत्र तथा ज्वरविषयक विवेचना करते हुए गौतम का मत उद्धृत है—

चतूरात्रेऽष्टरात्रे वा क्षेममित्याह गौतमः।

अर्थात्—गौतम कहता है कि चार रात्रि अथवा आठ रात्रि में कल्याण हो जाता है।

माधवनिदान का व्याख्याकार विजयरक्षित अर्शोनिदान के श्लोक ३३, ३४ की व्याख्या करते हुए गौतम को उद्धृत करता है—

यदाह गौतमः—
श्लेष्मा पञ्चविधोरस्थः श्लेष्मकादि स्वकर्मणा।
कफधाम्नां च सर्वेषां यत् करोत्यवलम्बनम् ॥
अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यस्त्वामाशयसंश्रितः।
क्लेदकः सोऽन्नसंघातक्लेदनात्, रसबोधनात् ॥
बोधको रसनास्थस्तु शिरःसंस्थोऽक्षतर्पणात्।
तर्पकः श्लेष्मकः सम्यक् श्लेषणात्सन्धिषु स्थितः ॥

अर्थात्—उरस्थ श्लेष्मा अपने कर्म के अनुसार पांच प्रकार का है। अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक तथा श्लेष्मक।

२. न्याय-शास्त्र—गौतम का न्याय-शास्त्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। युगारम्भ में महर्षि पूर्व तपोबल से ब्रह्मा की आज्ञा पाकर शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। महाभारत, शा० प० २१२।३४ में लिखा है—

न्यायतन्त्रं हि कात्स्न्र्येन गौतमो वेद तत्त्वतः।

अर्थात्—गौतम सम्पूर्ण न्याय-शास्त्र को तत्त्वपूर्वक जानते थे।

३. धर्मसूत्र—गौतम धर्मसूत्र सम्प्रति उपलब्ध है। बौधायन, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रों से यह अति प्राचीन है। यह ग्रन्थ सामशाखाकार गौतम का है।

४. शाखाकार—एक गौतम सामशाखाकार था।

५. शिक्षा—गौतमप्रोक्त गौतमी शिक्षा इस समय उपलब्ध है।

६. व्याकरण—प्रतीत होता है गौतम वैयाकरण भी था। इसके प्रमाण

पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी के ग्रन्थ, व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० ६१ पर देखें।

७. **पाशुपाल्य-शास्त्र**—अर्थशास्त्र की गणपति शास्त्रीकृत टीका, पृ० ३२ पर गौतममुनिकृत पाशुपाल्यशास्त्र का स्मरण किया गया है।

पूर्वलिखित सब ग्रन्थ एक ही गौतम के हैं, अथवा भिन्न २ गौतमों के, यह विचारणीय है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे षष्ठोऽध्यायः

सप्तम अध्याय

अन्य प्रकीर्णोपदेष्टा

चरकवर्णित, इन्द्र के भृगु आदि दस शिष्यों का अति संक्षिप्त वर्णन हो चुका। चरकसंहिता के पाठ में इन दस नामों के आगे आदि शब्द का प्रयोग हुआ है। आदि शब्द से अभिप्रेत अन्य आयुर्वेद-उपदेष्टाओं का कुछ आभास इस अध्याय में मिलेगा। संभव है ये सब इन्द्र के साक्षात् शिष्य न हों, अथवा इनमें से कतिपय ने ब्रह्मा, दक्ष-प्रजापति तथा इन्द्रोपदिष्ट ऋषियों से आंशिक विद्या ग्रहण की हो,तथापि आयुर्वेद का इतिहास समझने के लिए इनका वर्णन आवश्यक है। अतः ऐसे महात्माओं का आगे उल्लेख किया जाता है। शिव उनमें प्रधान है—

१६. शिव

वंश—ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि तथा प्रजापति कश्यप के ग्यारह पुत्र थे। इनको एकादश रुद्र कहते हैं। शिव इनमें से एक है। शिव सब भाइयों से अधिक तपस्वी, ज्ञानवान्, समर्थ और दीर्घजीवी हुआ। इसके तप के कारण ही पार्वती ने इसे वरा।

काल—शिव का काल कृतयुग के अन्त में है। वह योगबल और रसायन-सेवन से चिरजीवी हुआ।

स्थान—रुद्र-माता सुरभि का देश अफगानिस्तान से परे और फारस से नीचे था। कभी वसिष्ठ ऋषि भी इस देश में रहा करता था। शिव का जन्म इसी देश में हुआ। कैलाश पर्वत उसके तप का स्थान था। भारत के भी किसी-किसी स्थान में कुछ-कुछ काल पर्यन्त वह रहा करता था। वाग्भट ने अपने रस-रत्न-समुच्चय में लिखा है कि शिव हिमालय पर भी रहा करता था। यथा—

चकास्ति तत्र जगतामादिदेवो महेश्वरः।
रसात्मना जगत्त्रातुं जातो यस्मान्महारसः॥

अर्थात्—वहां [हिमालय] पर जगत् का आदिदेव शिव शोभा देता है।

आदिदेव—ब्रह्मा और धन्वन्तरि भी आदिदेव कहे गये हैं। पूर्वोद्धृत श्लोकानुसार शिव भी आदिदेव है। यह समस्या विचारणीय है।

नाम तथा विशेषण

शिव के बारह मुख्य नामों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

शिव, शंकर, शम्भू, पिनाकी, शूलपाणि, महेश्वर, महेश, महादेव, स्थाणु, गिरीश, विशालाक्ष तथा त्र्यम्बक।

वेदों में शिव, शर्व आदि शब्द ब्रह्मपरक हैं, पर इतिहास पुराण में ये नाम ऐतिहासिक महापुरुष के हैं।

इनमें से विशालाक्ष और त्र्यम्बक नाम से शिव की राजनीति संबन्धिनी विशाल और गूढ दृष्टि अभिप्रेत है। साधारण पुरुष दो आँखें रखते हैं। शिव की तीसरी आँख थी। उससे वह राजनीति के गहरे तत्व देखता था।

हेमचन्द्र कृत अभिधानचिन्तामणि, देवकाण्ड की स्वोपज्ञ टीका, पृष्ठ ८३ पर उद्धृत शेषकोश के वचन में शिव के कुछ अतिप्राचीन नाम मिलते हैं। यथा—

बहुरूपः सुप्रसादो मिहिराणोऽपराजितः ॥
कङ्कटीको गुह्यगुरुर्भगनेत्रान्तकः खरुः ॥
परिणाहो दशबाहुः सुभगोऽनेकलोचनः ॥१॥ इत्यादि।

ताण्ड्य महाब्राह्मण १४।६।१२ में महादेव को मृगयु नाम से स्मरण किया गया है—

देवं वा एवं मृगयुरिति वदन्ति।

शिव तथा नन्दी—शिव का परमप्रिय शिष्य नन्दी था। इस कारण शिव को नन्दिवर्धन भी कहते हैं। नन्दी मनुष्य था।[1] उसे अनेक विद्याओं का ज्ञान था। उसने रस-शास्त्र पर ग्रन्थ रचा। रसरत्नसमुच्चय, पूर्व खण्ड ६।२६ में लिखा है—

नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना।

अर्थात्—सब कुछ जानने वाले नन्दी ने यह नाभियन्त्र कहा है।

वात्स्यायन १।८ के अनुसार नन्दी ने अपने गुरु के विस्तृत त्रिवर्ग-शास्त्र

---

१. दक्षिण में आज भी बैलों को महादिया और नादिया अर्थात् महादेव और नन्दी कहते हैं। नन्दी बैल भी था परन्तु शिव का शिष्य भी नन्दी था।

में से कामशास्त्र का भाग पृथक् किया। यथा—

महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्कामसूत्रं प्रोवाच।

अर्थात्—महादेव के अनुचर नन्दी ने एक सहस्र अध्यायों में [त्रिवर्ग शास्त्र से] पृथक् करके कामसूत्र कहा।

शिव तथा गण—शिव के अनेक गण थे। इनमें से पूर्वोक्त नन्दी का भी एक गण था। शेष थे भृङ्गी, महाकाल, स्कन्द स्वामी, महागण आदि। शिव के पास भूत पिशाच आदि पुरातन जातियों के लोग भी रहते थे। उनकी भाषा पैशाची थी। शिव से इन सब गणों ने अनेक विद्याएं ग्रहण कीं। उनसे ये विद्याएं योरुप के प्रदेशों में फैलीं।

पंजाब की पश्चिमोत्तर जातियों में स्थापित अनेक गणराज्य शिव के गणों का रूपान्तर थे। दैत्यदेशों में भी इस प्रकार की राज्यव्यवस्था की प्रवृत्ति हो गई थी।

विशेष घटना

दक्षयज्ञ-विध्वंस—शिव ने अपने जीवन में अनेक आश्चर्योत्पादक कार्य किए, परन्तु आयुर्वेद-परम्परा का शिवकृत दक्षयज्ञ-विध्वंस से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महेश्वरकोप से ज्वर उत्पन्न हुआ। इस विषय का विश्लेषण पूर्व पृ० ५२ पर कर चुके हैं। महाभारत, शा० प० अध्याय २६० तथा वायुपुराण, अध्याय ३० में लिखा है कि दक्ष ने अपने हयमेध (यज्ञ) में न शिव का भाग रखा, न शिव-पार्वती को निमन्त्रित ही किया। इसपर पार्वती अत्यन्त खिन्न हुई। उसकी तुष्टि के लिए शिव ने दक्ष यज्ञ-ध्वंस किया। निमन्त्रित अतिथि त्रस्त होकर इतस्ततः भागने लगे। उस समय उनमें भय उत्पन्न होने से ज्वर तथा उसके रूपान्तर नानाविध रोग उत्पन्न हुए।

शिव का शास्त्रज्ञान—शिव महापण्डित था। वह अनेक विद्याओं का ज्ञाता था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २६० में लिखा है—

..............साङ्ख्ययोगप्रवर्तिने ॥११४॥

गीतवादित्रतत्वज्ञो गीतवादनकप्रियः॥१४२॥

शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्तकः।

अर्थात्—शिव सांख्ययोगप्रवर्तक, गीत वादित्र का तत्व जानने वाला, शिल्पियों में श्रेष्ठ तथा सारे शिल्पों का प्रवर्तक था।

शिव का ताण्डव-नृत्य सुप्रसिद्ध है, आज भी भारत के मद्रास प्रान्त में इस नृत्य को जानने वाले कहीं कहीं मिलते हैं।

शिव महायोगी था। वायुपुराण में लिखा है कि उसे अणिमादि सिद्धि प्राप्त थी।

महाभारत अध्याय १२२ में लिखा है कि शिव वेदपारग था। यथा—

वेदाश्चतस्रः संक्षिप्ता वेदवादाश्च ते स्मृताः।
एतासां पारगो यश्च स चोक्तो वेदपारगः ॥४४॥
वेदानां पारगो रुद्रो विष्णुरिन्द्रो बृहस्पतिः।
शुक्रः स्वायंभुवश्चैव मनुः परमधर्मवित् ॥४५॥ शान्तिपर्व।

अर्थात्—चारों वेद तथा संक्षिप्त वेदवादों के पार जाने वाला ही वेदपारग कहा जाता है। रुद्र, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र तथा परमधर्मज्ञ स्वायंभुव मनु वेद-पारग कहलाते हैं।

अभिप्राय यह है कि शिव को अनेक शास्त्रों का ज्ञान था। आयुर्वेद में रस-विद्या का परमज्ञाता शिव माना गया है। शिव के रसार्णव तन्त्र में पारद का वर्णन मिलता है। पारद के प्रयोग से आयु दीर्घ होती है। तप, योग और रसायन-प्रयोग से शिव को दीर्घ-जीवन मिला।

शिव तथा आयुर्वेद

जिस प्रकार वेदमन्त्रों के पाठ से पूर्व उनके द्रष्टा ऋषियों का नाम स्मरण किया जाता है, उसी प्रकार आयुर्वेद-शास्त्र में नीरोगता के लिए प्रमुख आयुर्वेद प्रवक्ताओं का नाम स्मरण करने की परिपाटी है। आयुर्वेद ग्रन्थों में स्मृत इन नामों में शिव का नाम भी है। सुश्रुत सूत्रस्थान, अ० ४३ में लिखा है—

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः।
ऋषयः सौषधिग्रामाः भूतसंघाश्च पान्तु ते ॥१॥

अर्थात्—ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र तथा भूमि आदि तेरी रक्षा करें।

अष्टांगसंग्रह, सूत्रस्थान, अध्याय सत्ताईस, पृष्ठ २०३ पर भी ऐसा वचन मिलता है।

इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद-परम्परा में शिव का बड़ा मान था। शिव ने आयुर्वेद के सिद्धान्त-ग्रन्थों के अतिरिक्त रस-शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ रचे।

सिद्धान्तग्रन्थ

१. **आयुर्ग्रन्थ**—शिव की इस रचना में आयुर्वेद-विद्या के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है।

२. **आयुर्वेद**—मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, भाग २३,

संख्या १३०८६ में शिव का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३. **वैद्यराज-तन्त्र**--शिव के इस ग्रन्थ में उच्चकोटि की चिकित्सा का वर्णन है। इस हस्तलेख के उपलब्ध भाग में शिव-पार्वती संवाद रूप में नाड़ी-ज्ञान का वर्णन है। यह ग्रन्थ भी मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, भाग २३, संख्या १३२२६ के अन्तर्गत है।

४. **शैवसिद्धान्त**—इस ग्रन्थ का नाम चक्रदत्त के रसायनाधिकार पृ०३६६ पर वर्णित शिवगुटिका में है—

शैवसिद्धान्तोक्ता शिवागुडिकेयम्।

अर्थात्—यह शैवसिद्धान्त में कही हुई शिवा गुडिका है।

रसतन्त्र

रसतन्त्र-प्रवक्ताओं में शिव का विशेष स्थान है। उसकी रसतन्त्र सम्बन्धी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं। यथा—

५. **रुद्रयामलतन्त्र**—शिव ने इस बृहद् ग्रन्थ में पारद का चिकित्सोपयोगी रूप बताया है। कहा जाता है कि निम्नलिखित उपलब्ध ग्रन्थ इसी मूल-ग्रन्थ का भाग हैं।

(क) **पारदकल्प**—इस ग्रन्थ में पारदयोगों का तथा उनके औषध रूप में प्रयोग का वर्णन है।

(ख) **धातुकल्प**—यह रुद्रयामलतन्त्र का एक अध्याय है। इसमें धातुओं के चिकित्सोपयोगी-योगों का वर्णन है।

(ग) **हरितालकल्प**—रुद्रयामलतन्त्र के इस भाग में ताल के गुण तथा योगों का उल्लेख है।

(घ) **अभ्रककल्प**—इसमें अभ्रक के गुण तथा योग उपलब्ध होते हैं।

(ङ) **हरीतकीकल्प**—इसमें हरीतकी की प्रयोग-विधि बताई गई है।

(च) **धातुक्रिया**—यह ग्रन्थ धातुओं की क्रिया से सम्बन्ध रखता है तथा शिव-पार्वती संवाद-रूप में उल्लिखित है।

६. **कैलाशकारक**—यह ग्रन्थ भी शिव-पार्वती संवादात्मक है। इसमें पारद की शोधनविधि वर्णित है। यह मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, भाग २३, संख्या १३११३ में सन्निविष्ट है।

७. **रसार्णवतन्त्र**—अष्टादशपटलात्मक यह रसतन्त्र शिव-पार्वती सम्वाद रूप में है। यह ग्रन्थ कब रचा गया, इस विषय में वर्तमान कालीन लेखकों की अनेक उपपत्तियां मिलती हैं। यथा—

आचार्य रे—श्री० प्रफुल्लचन्द्र रे ने अपनी पुस्तक History of Hindu

Chemistry, सन् १९०४, द्वितीय संस्करण की भूमिका, पृ० ७९ पर लिखा है—

From the fact that रसार्णव is quoted in it (सर्वदर्शनसंग्रह) as a standard work on this subject it would be safe to conclude that it must have been written at least a century or two earlier, say sometime about the 12th century.

अर्थात्—क्योंकि १४वीं शताब्दी में रचे गए सर्वदर्शनसंग्रह में रसार्णव उद्धृत है, अतः यह ग्रन्थ संग्रह से एक वा दो शती पूर्व अर्थात् १२वीं शती में लिखा गया होगा।

कविराज महेन्द्रनाथ ने रे महाशय का शब्दशः अनुकरण किया है।

रसरत्नसमुच्चय का पूर्ववर्ती रसार्णव—रसार्णव के काल का निश्चय अभी कठिन है, तथापि इतना निश्चित है कि रसार्णव ग्रन्थ रसरत्नसमुच्चय का पूर्ववर्ती है। समुच्चय १।११।१० में रसार्णव स्मृत है—

रसार्णवादि-शास्त्राणि निरीक्ष्य कथितं मया।

अर्थात्—मैंने रसार्णवादि को देखकर यह पाठ कहा है।

इसके अतिरिक्त रसरत्नसमुच्चय में रसार्णव के अनेक श्लोक उद्धृत हैं। यथा—

रसार्णव	रसरत्नसमुच्चय
२।१७॥	१।६।३७॥
७।५७-६७॥	१।३।२-१२॥
१०।३२,३३॥	१।१०।१०३॥

रसार्णव में शिव-पार्वती सम्वाद है। समुच्चय के पाठों में देवि, सुव्रते आदि सम्बोधन पद हैं। ये पाठ रसार्णव से लिए गए हैं। फलतः समुच्चय रसार्णव से सामग्री लेता है।

अन्य ग्रन्थ

८. **त्रिवर्ग-शास्त्र**—शिव ने ब्रह्मा के धर्म-अर्थ-कामात्मक त्रिवर्ग-शास्त्र का संक्षेप किया। इस संक्षिप्त शास्त्र का नाम वैशालाक्ष हुआ। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५८ में लिखा है—

युगानामायुषो ह्रासं विज्ञाय भगवाञ्छिवः।
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महार्थं ब्रह्मणा कृतम् ॥८६॥
वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत।

अर्थात्—भगवान् शिव ने युगों की आयु का ह्रास जानकर ब्रह्मा के महान् शास्त्र का संक्षेप किया। वह शास्त्र वैशालाक्ष कहलाता है।

कालान्तर में इसी शास्त्र से प्रत्येक वर्ग को पृथक् करके अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की रचना हुई।

९. **धनुर्वेद**—वीरमित्रोदय-अन्तर्गत लक्षणप्रकाश में त्रैयम्बक धनुर्वेद के अनेक वचन मिलते हैं। शिव का पाशुपत अस्त्र प्रसिद्ध है।

१०. **वास्तुशास्त्र**–मत्स्यपुराण अध्याय २५२ में वर्णित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशकों में शिव की गणना भी की गई है।

११. **नाट्यशास्त्र**—शिव ने नाट्यशास्त्र पर योगमाला नामक ग्रन्थ रचा। भावप्रकाशन, द्वितीय अधिकार, पृ० ४५ पर लिखा है—

कथिता योगमालायां संहितायां विवस्वते।
शिवेन ताण्डवं लास्यं नाट्यं नृत्तं च नर्तनम्॥

अर्थात्—योगमाला संहिता में शिव ने विवस्वान् को [रसोत्पत्ति आदि तथा] ताण्डव, लास्य, नृत्त और नर्तन कहा है।

१२. **छन्दशास्त्र**—शिव छन्दशास्त्र का प्रवर्तक था। नाट्याचार्य के लिए छन्दशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। पं० भगवद्दत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मणभाग, पृ० २४६ पर लिखा है—

अपने भाष्य की समाप्ति पर यादवप्रकाश निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करता है—

छन्दोज्ञानमिदं भवाद्भगवतो लेभे सुराणां गुरुः।
तस्माद्दुश्च्यवनस्ततो सुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः॥

अर्थात्—देवगुरु ने भगवान् शिव से यह छन्दोज्ञान प्राप्त किया। उससे इन्द्र ने तथा इन्द्र से माण्डव्यनामा सुरगुरु ने प्राप्त किया।

योग—शिवकृत ६२ योगों का वर्णन गिरिंद्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में किया है।

इनके अतिरिक्त अष्टांगसंग्रह, उत्तरस्थान, पृ० ३२० पर शिवकृत अगद का उल्लेख है। यथा—

गजपिप्पलिकासीसह्रारयष्टीमयूरकम्।
रक्तानतंवचादन्ती शिवः शिवकृतो गदः॥

सम्भवतः यह अगद वैशालाक्ष अर्थशास्त्र में उल्लिखित था। कौटल्य के अर्थशास्त्र में भी अनेक विषहर-प्रयोग वर्णित हैं।

शिव के अनेक योग रसरत्नसमुच्चय में भी उपलब्ध हैं।

१७. भास्कर

वंश—भास्कर का पिता कश्यप तथा माता अदिति थी। वह सुप्रसिद्ध बारह देवों में से एक था।

नाम—पूर्व पृष्ठ ३४ पर महाभारत के अनुसार द्वादश आदित्यों की नामावलि लिख चुके हैं। इन बारह नामों में से दस नाम अधिकांश सूचियों में समान हैं। शेष दो के विषय में पर्याप्त विभ्रम है। इसका परिचय निम्न-लिखित उद्धरणों से मिलेगा। यथा—

१. विवस्वान्	भास्कर	आयुर्वेदीय काश्यपसंहिता	पृ० १५४।	
२. ,,	सविता	महाभारत, शान्तिपर्व, पूना सं०,	२०१।१५,१६।	
३. जयन्त[1]	भास्कर	महाभारत, कुम्भघोण सं०	२५५।१५,१६।	
४. विवस्वान्	सविता	हरिवंशपुराण	१।३।६०,६१।	
५. ,,	पर्जन्य	हरिवंशपुराण	१।६।४७,४८।	
६. ,,	विधाता	बृहद्देवता	५।१४७,१४८।	
७. ,,	सविता	विष्णुपुराण	१५।१३०,१३१।	
८. ,,	पर्जन्य	वायुपुराण	६६।६६।	

वायुपुराण ८४।३० में विवस्वान् के लिए सविता तथा ८४।७८ में भास्कर का प्रयोग हुआ है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने विवस्वान् तथा भास्कर को एक मान कर हिस्टरी आफ इण्डियन मैडिसिन, भाग प्रथम, पृ० ८३ पर अश्विद्वय को भास्कर-पुत्र माना है।

यह अभी गवेषणा का विषय है कि विवस्वान्, भास्कर तथा सविता नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं अथवा भिन्न-भिन्न के लिए। यदि पर्याय होने के कारण एक के लिए प्रयुक्त हुए हैं तो दूसरे भ्राता का क्या नाम है। यदि दो के लिए हैं तो पर्जन्य, विधाता तथा जयन्त को क्या समझा जाए। संभव है, आदित्य बारह से अधिक हों परन्तु इतिहास का वेदमन्त्रों से सामञ्जस्य बताने के लिए बारह की गणना स्थिर की गई हो, और इस प्रकार किसी सूची में एक नाम त्यागा गया है और अन्य सूची में दूसरा। अन्तिम निर्णय अधिक खोज चाहता है। इस भेदार्थ देखो, शा० पर्व ३५८।५०॥

काल—देवयुग के आरम्भ से देव जीते थे। भास्कर भी तभी से था। वह कब तक जीवित रहा, यह अभी अनिश्चित है।

गुरु—भास्कर ने प्रजापति ब्रह्मा से आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त किया। ब्रह्म-

---

१. इस पाठ में विवस्वान् का नाम नहीं है।

वैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय १६ में लिखा है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः ।
विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः ॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः ।
स्वतन्त्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः ॥

अर्थात्—प्रजापति ब्रह्मा ने ऋग्यजुसामाथर्वनामक वेदों का अर्थ-विचार कर के आयुर्वेद रचा। इस पञ्चम वेद की रचना करके उसे भास्कर को दिया। उस के आधार पर भास्कर ने स्वतन्त्र संहिता रची।

शिष्य—ब्रह्मवैवर्तपुराण के उपरिलिखित प्रकरण में भास्कर के १६ शिष्यों का वर्णन है। यथा—

भास्करश्च स्वशिष्येभ्यः आयुर्वेदं स्वसंहिताम् ।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च ।
व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय ॥
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनीसुतौ ।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः ॥
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च ।
एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः ॥
चिकित्सातत्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् ।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति ॥
चिकित्सादर्शनं नाम दिवोदासश्चकार सः ।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः ॥
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नञ्चाश्विनीसुतौ ।
तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् ।
ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः ।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम् ।
वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् ।
द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥

चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च ॥

पूर्वोद्धृत श्लोकों में जिन ऋषियों और उन के बनाए चिकित्सा-तन्त्रों का वर्णन है, उनका स्पष्ट उल्लेख निम्नलिखित है—

१. धन्वन्तरि		चिकित्सातत्त्वविज्ञान
२. दिवोदास		चिकित्सादर्शन
३. काशिराज		चिकित्साकौमुदी
४. नासत्य	अश्विद्वय	चिकित्सासारतन्त्र
५. दस्र		भ्रमघ्न
६. नकुल		वैद्यकसर्वस्व
७. सहदेव		व्याधिसिन्धुविमर्दन
८. अर्कि=यम		ज्ञानार्णव
९. च्यवन		जीवदानतन्त्र
१०. जनक		वैद्यसन्देह भञ्जन
११. चन्द्रसुत=बुध=राजपुत्र		सर्वसार
१२. जाबाल		तन्त्रसारक
१३. जाजलि		वेदांगसारतन्त्र
१४. पैल		निदान
१५. करथ		सर्वधरतन्त्र
१६. अगस्त्य		द्वैधनिर्णयतन्त्र

भैषज्य-प्रधान-ग्रन्थ—पूर्वोक्त सूचि में वर्णित अधिकांश ग्रन्थ भैषज्य अथवा चिकित्सा-प्रधान ग्रन्थ थे। इनमें चिकित्सा-पद्धति का गम्भीर ज्ञान था। आयुर्वेद का सिद्धान्त-पक्ष सामान्य रूप से था। वेदाङ्गसार तन्त्र में आयुर्वेद के आठों अङ्गों का सार प्रतीत होता है। निदान ग्रन्थ में चिकित्सा से पूर्व निदान का पूर्ण विस्तृत उल्लेख था।

ब्रह्मवैवर्त के लेख की सत्यता—पूर्वलिखित सूचि में इतने ग्रन्थों का नाम देखकर एक साधारण व्यक्ति सहसा कह उठता है कि यह सूचि कल्पित है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं। नकुल का अश्व-वैद्यक आज भी प्रसिद्ध और सुलभ

---

१. कविराज महेन्द्रनाथजी शास्त्री ने अपने इतिहास के पृ० २३ पर लिखा है—उक्त सूचि में प्राचीन आयुर्वेदीय तन्त्रों के नाम दिए हैं, किन्तु नामकरण विधि अर्वाचीन ज्ञात होती है। इति हम इससे सहमत नहीं।

है। उसका दूसरा नाम वैद्यकसर्वस्व था। सहदेव का ग्रन्थ संभवतः गो-चिकित्सा-परक था। बुध का अपर नाम राजपुत्र था।[1] राजपुत्र का हस्तिशास्त्र मत्स्य-पुराण के अनुसार गजवैद्यक भी कहाता था। इसका अपरनाम सर्व-गज-वैद्यक-सार अथवा सर्व-सार हो सकता है।]

नकुल-विषयक आपत्ति—प्रश्न होता है, नकुल और सहदेव भास्कर के साक्षात् शिष्य थे, अथवा परम्परागत शिष्य। यदि उन्हें साक्षात् शिष्य माना जाए तो भास्कर की आयु, इन्द्रवत् बहुत लम्बी माननी पड़ेगी। इसमें कोई हानि नहीं। यदि यह बात सिद्ध न हो सके, तो नकुल और सहदेव परम्परागत शिष्य मानने पड़ेंगे।

एक बात सत्य है, इस भास्कर से याज्ञवल्क्य ने शुक्ल-यजु प्राप्त किए। अतः याज्ञवल्क्य के काल तक भास्कर अवश्य जीवित था। नकुल तथा सहदेव के ज्येष्ठ भ्राता पाण्डव युधिष्ठिर के यज्ञ में याज्ञवल्क्य उपस्थित था। इनके काल का महदन्तर न था। फलतः नकुल तथा सहदेव भास्कर के साक्षात् शिष्य भी हो सकते हैं।

विशेष घटना

हिरण्यपाणि-सविता—यदि सविता शब्द भास्करवाचक है तो भास्कर अथवा सविता का हिरण्यपाणि होना उसके जीवन की विशेष घटना है। प्रतीत होता है दक्षयज्ञ में शिवक्रोध से सविता को हस्तरहित होना पड़ा।[2] तदनु उसके सौवर्ण-हस्त लगाए गए। कौषीतकि ब्राह्मण ६।१३ में इसका उल्लेख है। यथा—

यत्र तद्देवा यज्ञमतन्वत तत्सवित्रे प्राशित्रं परिजह्रुस्तस्य पाणी प्रचिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुस्तस्माद्धिरण्यपाणिरिति।

अर्थात्—जहां उन देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, तो सविता के लिए ब्रह्मा के निमित्त की हवि को परे किया। उसके हाथ काट दिए। उसके लिए सौवर्ण हाथ लगाए गए, अतः वह हिरण्यपाणि है।

ज्ञात होता है हमारे देश में अद्वितीय आयुर्वेदीय चमत्कार हुआ करते थे।

---

१. देखो, पं० भगवद्दत्त कृत, भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ४६।

२. कौषतकि ब्राह्मण में इस घटना के साथ, अन्धो भगः तथा अदन्तक पूषा वाली घटना का वर्णन भी है, अतः इसका सम्बन्ध दक्षयज्ञ से प्रतीत होता है।

तपोनिधि आचार्यों की ज्ञानगरिमा के सामने ये सामान्य बातें थीं।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—हम पूर्व पृष्ठ ९१ पर लिख चुके हैं कि भास्कर चिकित्सा-पद्धति के आचार्यों में प्रमुख है। ब्रह्मा से प्रजापति दक्ष ने आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु भास्कर ने ब्रह्मा से आयुर्वेद-सम्मत चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान प्राप्त किया। इसी कारण चिकित्सा के आचार्यों में भास्कर का नाम प्रथम है। गौतम धर्मसूत्र, पृ० ४६९।१३ में लिखा है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्। इति।

अर्थात्—भास्कर से आरोग्य की इच्छा करे।

इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि भास्कर आरोग्य का दाता अथवा महान चिकित्सक था।

भास्कर ने अपने शिष्यों को चिकित्सा-पद्धति का उपदेश किया,[1] तथा उन शिष्यों ने भी चिकित्सा-तन्त्रों की रचना की।

तीसट तथा सूर्य—आचार्य तीसट ने चिकित्साकलिका, पृ० १ पर अन्य आयुर्वेदीय आचार्यों को नमस्कार करते हुए सूर्य को भी स्मरण किया है—

सूर्याश्विधन्वन्तरिसुश्रुतादीन्।

सावित्र संहिता—सुश्रुत सं०, कल्प ३।५ की व्याख्या में उल्हण सावित्र सं० का वचन उद्धृत करता है।

२. **रसशास्त्र**—आचार्य भास्कर का रसविद्या पर भी कोई ग्रन्थ था। रसरत्नसमुच्चय १।१।२ में भास्कर की गणना २७ रससिद्धिप्रदायकों में है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार S.K.D. (श्रीकण्ठदत्त) के संक्षिप्त-सार में भास्कर के उदर्क रस का वर्णन है।

३. **ज्योतिष**—आचार्य भास्कर ने मय को ज्योतिष का उपदेश दिया। वह आज भी सूर्य-सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है।

योग—भास्कर-कथित उदर्करस का वर्णन ऊपर कर चुके हैं। इस आचार्य का दूसरा योग सुप्रसिद्ध भास्कर-लवण-चूर्ण है।

---

१. हमारे यहाँ चिकित्साविषयक विशेष ग्रन्थ हुआ करते थे। इनमें चिकित्सोपयोगी गहनतत्वों का विशद वर्णन था। भेलसंहिता, पृ० १२८ तथा गदनिग्रह द्वितीय संस्करण, पृ० १५६ के वचन में इसका आभास मिलता है।

१८. विष्णु

वंश—पूर्व पृष्ठ ३४ पर वर्णित द्वादश आदित्य-भ्राताओं में विष्णु अन्यतम था। वह सबसे कनिष्ठ था। गुणों में सबसे अधिक होने के कारण वह देवों का राजा हुआ।[1] इसी कारण वह सुरकुलेश कहाया।

नाम—विष्णु के अनेक नाम भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हैं। यहां उनका विस्तृत वर्णन नहीं किया जाता। महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम द्रष्टव्य है।

काल—विष्णु देवयुग का व्यक्ति है।

स्थान—देवस्थान मेरु विष्णु का प्रधान निवासस्थान था। क्षीरोद (कैसपिअन) सागर के समीप भी विष्णु रहता था।

ब्रह्मज्ञाता तथा वेदपारग—महाभारत शान्तिपर्व, २१२।३६ में विष्णु को ब्रह्मवित् कहा गया है। पूर्व पृष्ठ ८६ पर महाभारत के प्रमाणानुसार कुछ वेद-पारग आचार्यों के नाम दिए गए हैं। उनके अनुसार विष्णु वेदपारग तथा परम धर्मवित् था।

ग्रन्थ

आयुर्वेद—विष्णु के आयुर्वेद-सम्बन्धी किसी ग्रन्थ का ज्ञान हमें अभी तक नहीं परन्तु विष्णु की एतद्विषयक रचना थी अवश्य। उसी में से उद्धृत योग आज भी आयुर्वेदीय संहिताओं में इतस्ततः पाए जाते हैं।

आयुर्वेदीय चरक-संहिता, अध्याय ३ के अनुसार विष्णु की स्तुति ज्वर-नाशिका है यथा—

> विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
> स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ॥३१२॥

प्रतीत होता है विष्णु ज्वर विशेषज्ञ था अतः पुरातन काल से यह विश्वास चला आया है कि विष्णु के नाम-स्मरण से ज्वर दूर हो जाते हैं।

अष्टाङ्ग संग्रह, उत्तरस्थाना, पृष्ठ ३८७ पर विष्णुनिर्मित मन्त्र का उल्लेख है।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने विष्णु के १० योगों का उल्लेख किया है।

---

१. इस विषय के विस्तृत वर्णन के लिए देखो पं० भगवद्दत्त कृत, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृ० २२०।

इनके अतिरिक्त विष्णु-निर्मित दो और योग अष्टाङ्ग संग्रह उत्तरस्थान में वर्णित हैं—

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः।
तापी किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥पृ० ३८॥
दानवेन्द्रविजितान् पुरा सुरान्
भ्रष्टकान्तिधृति . धैर्यतेजसः।
वीक्ष्य विष्णुरमृतं किलासृजत्
गुल्गुलुं बलवपुर्जयप्रदम् ॥पृ० ४२६॥

अर्थात्—काञ्चनरस तथा गुल्गुलु योग विष्णु—प्रदत्त हैं।

१६. कवि उशना

वंश—वरुण का पुत्र भृगु कवि था। पूर्व पृष्ठ ५५ के लेखानुसार भृगु का पुत्र उशना काव्य अथवा उशना कवि हुआ।

नाम—उशना को कवि, काव्य, तथा शुक्र भी कहते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १।१६६ में लिखा है—

कविर्वै भार्गवः

अर्थात्—भार्गव [उशना] कवि है।

भृगु-पुत्र होने से उशना भार्गव कहलाता था। मन्त्रद्रष्टा होने से वह कवि था। उसका पिता भी कवि था, अतः उशना काव्य भी कहाया। ब्रह्माण्ड पुराण ३।१।७६ में लिखा है—

देवासुराणामाचार्यं शुक्रं कविधरं ग्रहम्।
शुक्र एवोशना नित्यमतः काव्योऽपि नामतः॥

अर्थात्—शुक्र का नाम उशना तथा काव्य है।

अथर्ववेद में प्रयुक्त कवि उशना शब्द के आधार पर शुक्र का नाम कवि उशना हुआ।

पारसी धर्मपुस्तक अवेस्ता में उसे कवि-उसा तथा शाहनामा में उसे कैक-ऊस अथवा कैकौस लिखा है।

असुर पुरोहित—कवि उशना असुरों का पुरोहित तथा दूत था। तैत्तिरीय संहिता २।५।८ में लिखा है—

अग्निर्देवानां दूत आसीत्। उशना काव्योऽसुराणाम्।

अर्थात्—अग्नि देवों का दूत था, तथा उशना काव्य असुरों का।

गन्धर्वों का राजा—जैमिनीय ब्राह्मण १।१२७, १६६ के अनुसार उशना काव्य गन्धर्व देश का राजा था। यथा—

उशना वै काव्यो देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् ऐच्छत्।.........
ततो वै स देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् आश्नुत । १२७ ।
कविर्वै भार्गवो देवेषु..........। १६६ ।

अर्थात्—उशना काव्य देवों में था। उसने अमर्त्य (दीर्घजीवन वाले) गन्धर्वलोक की कामना की। तब वह देवों के उसी अमर्त्य गन्धर्वलोक को प्राप्त हुआ।

पूर्व पृष्ठ ५६ पर लिखा गया है कि अरब, ईरान तथा काल्डिया आदि प्रदेशों में भृगुवंशियों का बड़ा विस्तार था। वायु पुराण ७०।४ के अनुसार कवि उशना वास्तव में भृगुओं का राजा अभिषिक्त किया गया। उसी का वर्णन अवेस्ता तथा शाहनामा में भी है। फलतः पारसीक, मिश्री, यवन तथा यहूदियों के चिकित्सा-शास्त्र पर भार्गव उशना तथा उसके पिता भृगु के आयुर्वेद-ज्ञान का प्रभाव पड़ा।

काल—उशना का काल देवयुग से आरम्भ होता है। उशना दीर्घ-जीवी था।

ऋषि उशना—महाभारत, शान्तिपर्व ५८।२ में उशना को राजशास्त्र-प्रणेता, ब्रह्मवादी, ब्राह्मण कहा है। पूर्व पृष्ठ ६८ पर लिख चुके हैं कि उशना काव्य तपोबल से ऋषि हुआ।

अथर्ववेद तथा उशना—काव्य उशना तथा उसका पिता भृगु अनेक आथर्वण सूक्तों अथवा छन्दोवेद के सूक्तों के द्रष्टा हैं।

आयुर्वेदज्ञ—आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है। उशना अथर्ववेद का ज्ञाता था। फलतः उशना अद्वितीय वैद्य हुआ। उसे अद्वितीय रसायनों का ज्ञान था।

संजीवनी-विद्या-ज्ञाता उशना-पिता-भृगु—असुर-गुरु उशना आयुर्वेद विशेषज्ञ था। प्रतीत होता है उसने यह ज्ञान अपने पिता भृगु से उपलब्ध किया। भृगु संजीवनी विद्या का ज्ञाता था। ब्रह्माण्ड पुराण ३।७२ में इसका उल्लेख है—

विष्णु ने काव्य उशना की माता का शिरःछेद किया। इस पर काव्य के पिता भृगु ने उसे शाप दिया, तथा अपनी पत्नी को संजीवनी विद्या के बल से जीवित कर लिया। यथा—

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम्।
समानीय ततः काये समायोज्येदमब्रवीत् ॥१४४॥

एतां त्वां त्रिष्णुना सत्यं हतां संजीवयाम्यहम् ।

अर्थात्—विष्णु को शाप देकर, वह भृगु अपनी पत्नी का कटा शिर ले आया। काया पर उस शिर को जोड़ कर बोला, निश्चय ही विष्णु से मारी गई तुझे मैं जीवित करता हूँ।

इस घटना के सम्भव होने में सन्देह नहीं। आत्मा कितने काल तक शिर अथवा हृदय में रहता है, यह विचारणीय है। उसी विद्या के बल से उशना मृत-असुरों को जीवित कर देता था।

उशना का संजीवनी-ज्ञान—ब्रह्माण्ड-पुराण ३।३० के अनुसार काव्य उशना ने संजीवनी-विद्या के बल से जमदग्नि को पुनर्जीवित किया—

एतस्मिन्नन्तरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः ।
विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ॥५१॥
अथर्वणां निधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवंदितः ॥५२॥
मृतसंजीवनीं[1] विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।
यथाहतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥५३॥
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम् ।
प्रणीतमनुजीवन्ति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥५४॥
तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।
सञ्जीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥५८॥

अर्थात्—हे राजन्, इसी अन्तर में [जब हैहय के भृत्यों की कशा द्वारा जमदग्नि के मारे जाने पर जमदग्नि पत्नी रेणुका और उसके पुत्र आदि मृत शरीर के समीप आश्रम में बैठे थे] भाग्यवश बुद्धिमान्, भृगुवंशी मुनि [उशना] अकस्मात् वहाँ आ गया। वह साक्षात् अथर्ववेद का कोष, वेदवेदांगपारग, सम्पूर्ण शास्त्रों का अर्थ जानने वाला, बुद्धिमान्, सारे असुरों से पूजित, [ऋषि] मुनियों को भी दुर्लभ मृतसंजीवनी विद्या को जानता था। इसी के द्वारा वह देवों से आहत तथा मृत दानवों को पुनः जीवित कर देता था। उसने राजाओं को राज्य-फल देने वाला औशनस अर्थशास्त्र रचा। आज भी सारे राजा इस शास्त्र के अनुजीवी हैं। [जमदग्नि] की मृत्यु का वृत्त सुन कर मन्त्रवित्, भृगुवंशी [उशना] ने शीघ्र उस [जमदग्नि] पर संजीवनी-विद्या से जल छिड़का। (मत्स्य २४९।६ के अनुसार उशना ने यह विद्या महेश्वर से ली।)

---

१. वर्तमान काल के डाक्टर अथवा वैद्यों को इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए असाधारण प्रयास करना पड़ेगा।

टिप्पण—संजीवनी-विद्या मनुष्यों, ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु आदि देवों और असुरों आदि म तो थी नहीं, पर मुनियों को भी दुर्लभ थी।

मृतक-शरीर पर संजीवनी विद्या का प्रभाव कुछ निश्चित समय के अन्दर ही होता है। जमदग्नि को मरे अधिक काल हो गया था। उशना समझता था कि अधिक काल व्यतीत होने पर वह मृतक-शरीर को पुनर्जीवित करने में सफल न हो सकेगा, अतः वह शीघ्रता से जल लाया। मृत्यु के उपरान्त कितने काल के अन्दर पुनर्जीवन हो सकता है, यह भावी अन्वेषण से निश्चित होगा।

पूर्व पृष्ठ २६ पर वायुपुराण से उद्धृत श्लोक में मृतसंजीवनी ओषधि का उल्लेख है। मृतसंजीवनी विद्या का संजीवनी ओषधि से क्या सम्बन्ध है, यह विचारणीय है। आयुर्वेद में मणि, मन्त्र तथा ओषधि का प्रयोग विहित है। मृतसंजीवनी विद्या के लिए केवल मन्त्र प्रयुक्त होते हैं अथवा मन्त्र तथा ओषधि दोनों, यह गवेषणा का विषय है।

भार्गव-उशना तथा उसका पिता भृगु अथर्ववेद के मार्मिक तत्वों के ज्ञाता थे। अतः पिता-पुत्र दोनों को मुनिदुर्लभ संजीवनी-विद्या का रहस्य ज्ञात था। आज के युग के अल्प आयु, आत्मा की सूक्ष्म गति से अपरिचित वैज्ञानिक-ब्रुव इसे असंभव कह सकते हैं, परन्तु सूक्ष्मदर्शी, अमित-बुद्धि, वेदपारग ऋषियों के लिए ऐसे तत्वों का ज्ञान असंभव न था।

त्र्यरुण-पुरोहित का संजीवनी-ज्ञान—महाराज त्र्यरुण का पुरोहित वृश भी संजीवनी विद्या का ज्ञाता था। बृहद्देवता ५।१४-१६ में इसका वर्णन है—

ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थितः।
संजग्राहाश्वरश्मींश्च वृशो जानः पुरोहितः ॥१४॥
स ब्राह्मणकुमारस्य रथो गच्छञ्छिरोऽछिनत्।
एनस्वीत्यब्रवीच्चैव स राजैनं पुरोहितम् ॥१५॥
सोऽथर्वाङ्गिरसान्मन्त्रान् दृष्ट्वा संजीव्य तं शिशुम्।

अर्थात्—त्रिवृष्ण-पुत्र, इक्ष्वाकुवंशी राजा त्र्यरुण रथ में बैठा था। उसके पुरोहित जनपुत्र वृश ने घोड़ों की रश्मि पकड़ली। उस रथ के नीचे किसी ब्राह्मण पुत्र का सिर कट गया। राजा ने पुरोहित को कहा, यह पाप हो गया है। उस पुरोहित ने अथर्वाङ्गिरस मन्त्र देखकर ब्राह्मण-कुमार को जीवित कर दिया।

त्र्यरुण-पुरोहित वृश ने मन्त्र-बल से ब्राह्मण-कुमार के कटे शिर को जोड़ा। भृगु ने भी अपनी पत्नी का कटा शिर जोड़ा था। अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार यज्ञ=ब्रह्मा का कटा शिर अश्वियों ने जोड़ा था। संजीवनी का यह पक्ष ध्यानयोग्य है। च० चि०२३।५४-६० तथा सु०क० ५।७५ में संजीवनी अगद है।

उशना द्वारा जरा-संक्रामण—असुर-गुरु उशना सिद्धहस्त वैद्य था। उसे आयुर्वेद के विशेष रहस्यों का ज्ञान था।

ययाति अकाल-वृद्ध हो गया। उसने पुत्र को अपनी जरा दे दी। यह जरा-संक्रामण उशना की कृपा से हुआ। महाभारत आदिपर्व ७७।६१ में लिखा है—

> नाहं मृषां ब्रवीम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप।
> जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन्संक्रामय यदीच्छसि॥

अर्थात्—[उशना ने कहा] हे राजन्, मैं असत्य नहीं कहता, तू बुढ़ापे को प्राप्त हो गया है, यदि तेरी इच्छा है तो इस जरा को किसी दूसरे में संक्रामित कर दे।

वायुपुराण ९३।६२ में लिखा है कि महाराज ने शुक्र-कृपा से अपनी जरा पुत्र पुरु में संक्रामित की। यथा—

> पुरोरनुमतो राजा ययातिः स्वां जरां ततः।
> संक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु॥

अर्थात्—पुरु की अनुमति प्राप्त करने पर राजा ययाति ने भार्गव उशना की कृपा से अपनी जरा अपने पुत्र में संक्रामित कर दी।

यदि एक व्यक्ति का रक्त दूसरे में संक्रामित किया जा सकता है तो आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित उशना द्वारा जरा-संक्रामण भी असंभव नहीं। आयुर्वेद के इस अङ्ग का गम्भीर अन्वेषण अभीष्ट है। अश्विद्वय-द्वारा च्यवन के वार्धक्य-नाश की घटना का भी तुलनात्मक अन्वेषण आवश्यक है।

गुरु—उशना ने आयुर्वेद-ज्ञान किस गुरु से प्राप्त किया, इसका स्पष्ट विवरण हमें अभी तक नहीं मिला। प्रतीत होता है आयुर्वेद के अनेक चमत्कारी योग उसने अपने पिता भृगु से प्राप्त किए थे।

शिष्य—महाभारत, आदिपर्व ७०।२१ के अनुसार बृहस्पति-पुत्र कच ने उशना से अन्यविद्याओं के साथ संजीवनी विद्या का ज्ञान भी प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—उशना का आयुर्वेद विषयक कोई ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।

२. कोकतन्त्र—उशना ने चित्रशिखण्डि-शास्त्र के आधार पर अपना शास्त्र रचा।

३. अर्थशास्त्र—विष्णुगुप्तकृत अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख मिलता है। कौटिल्य से पूर्वकाल की चरकसंहिता, वि० ८।५४ में औशनस अर्थशास्त्र का

उल्लेख है। महाभारत शान्तिपर्व में उशना के राजनीति-विषयक अनेक वचन उद्धृत हैं। उशना ने बृहस्पति के त्रिसहस्राध्यायात्मक अर्थशास्त्र का संक्षेप किया। इस समय यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। शुक्रनीतिसार इस अर्थशास्त्र का संक्षेप प्रतीत होता है।

महाकवि कालिदास कुमारसंभव ३।६ में उशना की नीति का उल्लेख करता है।

४. **सांख्यदर्शन**—उशना का सांख्य-विषयक कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं, परन्तु महाभारत, शान्तिपर्व के अनुसार उशना सांख्यज्ञाता अवश्य था।

५. **वास्तुशास्त्र**—उशना वास्तुशास्त्रोपदेशक था। शिल्परत्न में ऐसा उल्लेख है। मत्स्यपुराण २५२।३ का भी यही अभिप्राय है।

६. **औशनस धनुर्वेद**—वीरमित्रोदय, लक्षणप्रकाश तथा योगयात्रा १२-१३ में औशनस धनुर्वेद के वचन उद्धृत हैं। एक छोटा-सा-औशनस धनुर्वेद प्रकाशित भी हो चुका है।

७. **धर्मशास्त्र**—गौतम-धर्मसूत्र, मस्करि-भाष्य में उशना के धर्मशास्त्र के वचन स्थान स्थान पर उद्धृत हैं।

महामहोपाध्याप श्री पाण्डुरंग वामन काणे जी अपनी हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, पृ० ११५ पर औशनस धर्मशास्त्र (अथवा सूत्र) का काल गौतम तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रों और मनुस्मृति के पश्चात् का मानते हैं। उनके अनुसार गौतम धर्मसूत्र का काल ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व और मनुस्मृति का काल ईसापूर्व २०० से ईसा के २०० वर्ष तक का है। इस प्रकार वे औशनस धर्मसूत्र को ईसा के २०० वर्ष का उत्तरवर्ती मानते हैं।

काणे जी ने गौतम, वसिष्ठ और मनु का काल ही नहीं जाना, पुनः वे उशना के धर्मसूत्र के काल-विषय में क्या जान सकते हैं। उनकी मिथ्या कल्पना के कारण आर्य-विद्वान् अपने इतिहास को त्याग नहीं सकते। अनेक आर्य शास्त्रों में लिखा इतिहास असत्य है और काणे जी लिखित कल्पित इतिहास सत्य है, ऐसा विश्वास अल्प-पठित लोग ही कर सकते हैं।

८. **ज्योतिष शास्त्र**—अद्भुतसागर पृ० २२० पर उद्धृत ऋषिपुत्र के वचन में उशना का ज्योतिष-शास्त्र विषयक मत वर्णित है।

९. **मन्त्रद्रष्टा**—भार्गव उशना अनेक आथर्वण मन्त्रों तथा ऋ० ६।८७-८६ का द्रष्टा था।

योग—अष्टाङ्गसंग्रह, उ०, पृष्ठ ३२० पर औशनस अगद का वर्णन है—

सुरालापावकी सोमा भोगवत्यमृतानतम् ।
आढकी किणिटी सोमराजी चौशनसो गदः ॥

पं० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृष्ठ ११५ पर वाग्भट के पूर्वलिखित वचन के साथ डल्हण द्वारा उद्धृत उशना के अढ़ाई श्लोक लिखे गए हैं—

अजरुहालक्षणं उशनसा प्रोक्तम्—

कन्दः श्वेतः सपिडको भेदे चाञ्जनसन्निभः ।
गन्धलेपनपानैस्तु विषं जरयते नृणाम् ॥
दुष्टानां विषपीतानां ये चान्ये विषमोहिताः ।
विषं जरयते तेषां तस्मादजरुहा स्मृताः ॥
मूषिका लोमशा कृष्णा भवेत्साऽपि च तद्‌गुणः । इति॥७८॥

पं० जी के अनुसार वाग्भट तथा डल्हण के पूर्वोद्‌धृत वचन औशनस अर्थशास्त्र के हैं। महान् आचार्य उशना ने अर्थशास्त्र में आयुर्वेद की सहायता ली।

२०. बृहस्पति

वंश— पर्व पृष्ठ ६० पर दी गई वंशावलि से स्पष्ट है कि बृहस्पति अंगिरा-पुत्र था। इस कारण उसे आङ्गिरस बृहस्पति कहते हैं । जैमिनीय ब्राह्मण १।२१३ के अनुसार प्रजापति-दुहिता उषा बृहस्पति की स्त्री थी। यथा—

प्रजापतिरुषसं स्वां दुहितरं बृहस्पतये प्रायच्छत् ।

अर्थात्—प्रजापति ने अपनी दुहिता उषा बृहस्पति के लिए दी।

ब्राह्मणग्रन्थों में प्रजापति और उषा की आलङ्कारिक कथा भी वर्णित है। उसका इस ऐतिहासिक उषा से कोई सम्बन्ध नहीं।

आयुर्वेद-परम्परा का सुप्रसिद्ध भरद्वाज बृहस्पति का पुत्र था।

काल—देवासुर संग्रामों का काल अर्थात् त्रेता का आदि बृहस्पति का काल था। वह कौरव भीष्म के काल तक जीवित था।

स्थान—बृहस्पति हिमालय की उत्तरपूर्ववर्तिनी देवभूमि में रहता था।

सुरगुरु—ताण्ड्य ब्राह्मण १६।१७।८ तथा बौधायन श्रौतसूत्र के अनुसा बृहस्पति देवों का पुरोहित था। जैमिनीय ब्राह्मण १।१२५ में लिखा है—

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद् उशना काव्योऽसुराणाम् ।

अर्थात्—बृहस्पति देवों का पुरोहित था तथा उशना काव्य असुरों का।

वेदवेदाङ्गवित—ऋषियों को सम्पूर्ण-ज्ञान परम्पराक्रम से प्राप्त हुआ। इस

परम्परा में बृहस्पति को वेदवेदाङ्गज्ञान प्राप्त हुआ। महाभारत, शान्तिपर्व २१२।३२ में लिखा है—

·········वेदाङ्गानि बृहस्पतिः।

अर्थात्—बृहस्पति को वेदाङ्ग-ज्ञान प्राप्त हुआ।

महाभारत, शान्तिपर्व १६६।८ में प्रजापति मनु तथा बृहस्पति का संवाद वर्णित है। उस संवाद में बृहस्पति मनु से स्वयं कहता है—

ऋक्सामसंघांश्च यजूंषि चाहम्
छन्दांसि नक्षत्रगतिं निरुक्तम्।
अधीत्य च व्याकरणं सकल्पम्
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि॥

अर्थात्—सम्पूर्ण वेद तथा वेदाङ्गज्ञान होने पर भी मुझे भूतप्रकृति का ज्ञान नहीं।

वेदवेदाङ्गज्ञाता बृहस्पति का आयुर्वेद-ज्ञान भी अथाह था।

सिद्धहस्त-चिकित्सक—वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड ५०।६८ में बृहस्पति के चिकित्सा-कौशल का सुन्दर वर्णन है—

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति॥

अर्थात्—[देवासुर संग्रामों में] उन आर्त, संज्ञाहीन मृत-देवों की चिकित्सा देवगुरु बृहस्पति मन्त्रयुक्त विद्याओं तथा ओषधियों से करता है।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि तब बृहस्पति मृतसंजीवनी विद्या भी जान चुका था। बृहस्पति मन्त्र तथा ओषधि, दोनों प्रकार से चिकित्सा करता था। उसे चिकित्सा-विषयक मन्त्रयुक्त अनेक विद्याएं ज्ञात थीं।

टिप्पण—वर्तमान-युगीण वैज्ञानिक-ब्रुव आश्चर्य करेंगे कि एक ही व्यक्ति पौरोहित्य, मंत्रित्व तथा भैषज्य-कर्म करता था। आज यदि किसी नेत्र-रोग विशेषज्ञ से उदररोग की चिकित्सा करवानी चाहें तो असम्भव है। दीर्घजीवी महर्षि ही विद्या के भिन्न-भिन्न अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य रखते थे।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—बृहस्पति आयुर्वेद-कर्त्ता था। काश्यपसंहिता के उपोद्घात पृष्ठ २३, टिप्पणी संख्या १ में हेमाद्रि-कृत लक्षणप्रकाश से उद्धृत शालिहोत्र-वचन का कुछ अंश हमने पूर्व पृष्ठ ५६ पर उद्धृत किया है। इन श्लोकों में

आयुर्वेद-कर्त्ताओं के नाम उल्लिखित हैं। यथा—

वसिष्ठो वामदेवश्च च्यवनो भार्गवस्तथा [भार्गवस्तथा ?]।
विश्वामित्रो जमदग्निर्भारद्वाजश्च वीर्यवान् ॥
असितो देवलश्चैव कौशिकश्च महाव्रतः।
सावर्णिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयस्तु वीर्यवान्।
गौतमश्च······भागश्च आगरुप (?) काश्यपस्तथा।
आत्रेयः शाण्डिलश्चैव तथा नारदपर्वतौ ॥
काण्वगो नहुषश्चैव शालिहोत्रश्च वीर्यवान्।
अग्निवेशो मातलिश्च जतुकर्णः पराशरः ॥
हारीतः क्षारपाणिश्च निमिश्च वदतां वरः।
औद्दालकिश्च भगवान् श्वेतकेतुर्भृगुस्तथा ॥
जनकश्चैव राजर्षिस्तथैव हि वि नग्नजित्।
विश्वेदेवाः समरुतो भगवांश्च बृहस्पतिः ॥
इन्द्रश्च देवराजश्च सर्वलोकचिकित्सकाः।
एते चान्ये च बहव ऋषयः संश्रितव्रताः ॥
आयुर्वेदस्य कर्तारः सुस्नातं तु दिशन्तु ते ॥ (पृ० १५६)

अर्थात्—यहां पर लगभग ३७ आयुर्वेद-कर्ताओं के नाम लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ऋषि भी आयुर्वेद के कर्त्ता हैं। ये सर्वलोक-चिकित्सक थे। वे देवलोक, गन्धर्वलोक, नागलोक, तथा मर्त्यलोक आदि किसी एक लोक के निवासियों की चिकित्सा नहीं करते थे, प्रत्युत सर्वलोक-निवासियों के चिकित्सक थे।

उपरिलिखित उद्धरण के अनुसार निम्नलिखित ऋषि आयुर्वेद—कर्ता हैं—

१. वसिष्ठ	२. वामदेव	३. च्यवन
४. विश्वामित्र	५. जमदग्नि	६. भारद्वाज [भरद्वाज]
७. असित देवल	८. कौशिक	९. सावर्णि
१०. गालव	११. मार्कण्डेय	१२. गौतम
१३. भाग ?	१४. आगरूप ?	१५. काश्यप
१६. आत्रेय	१७. शाण्डिल	१८. नारद
१९. पर्वत	२०. काण्वग ?	२१. नहुष
[illegible]. शालिहोत्र	२३. अग्निवेश	२४. मातलि
२५. जतुकर्ण	२६. पराशर	२७. हारीत

२८. क्षारपाणि २९. निमि ३०. औद्दालकि श्वेतकेतु
३१. भृगु ३२. जनक ३३. नग्नजित्
३४. विश्वेदेव ३५. मरुद्गण ३६. बृहस्पति ३७. देवराज इन्द्र

इनमें से अनेक ऋषियों के आयुर्वेद-विषयक वचन अथवा योग उपलब्ध हैं। हम यथाक्रम उनका वर्णन करते आ रहे हैं। फलतः यह नामावलि कल्पित नहीं। इसमें ३४ तथा ३५ संख्या के अन्तर्गत अनेक आचार्य हैं।

२. व्याकरण—बृहस्पति व्याकरण का द्वितीय-प्रवक्ता था। उसका व्याकरण-विषयक ग्रन्थ था, परन्तु आजकल वह उपलब्ध नहीं।[1]

३. लोकतन्त्र—महाभारत, शान्तिपर्व ३४४।४६ के अनुसार बृहस्पति नें सप्तर्षि-कृत चित्रशिखण्डि-शास्त्र के आधार पर लोकतन्त्र-विषयक शास्त्र रचा। राजा उपरिचरवसु ने बृहस्पति से चित्रशिखण्डि शास्त्र का अध्ययन किया। महाभारत शान्तिपर्व ३४४।१।३ में लिखा है—

ततोऽतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽङ्गिरसः सुते।
बभूवुर्निर्वृता देवा जाते देवपुरोहिते॥
बृहद्ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः।
एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान्बृहस्पतिः॥
तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः।
अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक्चित्रशिखण्डिजम्॥

अर्थात्—महाकल्प व्यतीत होने पर आंगिरस, देवपुरोहित, महागुणी, विद्वान् बृहस्पति हुआ। उसका शिष्य राजा उपरिचर वसु था। उसने बृहस्पति से चित्र-शिखण्डि शास्त्र पढ़ा।

४. बार्हस्पत्य-अर्थशास्त्र—देवगुरु बृहस्पति अर्थशास्त्र का परम पण्डित था। युगों की आयु का ह्रास जान, उसने इन्द्रकृत बाहुदन्तक अर्थशास्त्र का तीन सहस्र अध्यायों में संक्षेप किया। महाभारत, कामन्दकीय नीतिसार, याज्ञवल्क्य स्मृति की बालक्रीडा टीका तथा कौटल्य अर्थशास्त्र में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र के अनेक वचन तथा मत उद्धृत हैं।

अध्यापक अल्तेकर जी ने लिखा है कि विष्णुगुप्त से लगभग ३०० वर्ष पूर्व किसी ने बृहस्पति के नाम से यह अर्थशास्त्र रच दिया। यह कथन अज्ञान-मात्र है। आर्य वाङ्मय के अनुसार यह ग्रन्थ देवगुरु बृहस्पति का था।

---

१. इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए देखो पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक कृत संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, पृ० ४६।

विषहर योग—बृहस्पति के ये योग अष्टाङ्ग संग्रह, सूत्र अ० ८ में उद्धृत हैं—अथ योगाः प्रवक्ष्यन्ते बृहस्पतिकृताः शिवाः।

५. वास्तुशास्त्र—अष्टादश-वास्तुशास्त्रोपदेशकों में बृहस्पति की गणना भी की गई है। काश्मीरक भट्टोत्पल ने बृहस्पति के वास्तुशास्त्र के वचन उद्धृत किए हैं।

६. इतिहास-पुराण-प्रवक्ता—वायुपुराण १०३।५९ में बृहस्पति को इतिहास-पुराण-प्रवक्ता कहा गया है।

७. धर्मशास्त्र—धर्मशास्त्र के प्रबन्धों में बृहस्पतिकृत धर्मशास्त्र के अनेक वचन अब भी उपलब्ध होते हैं। ऐसे लगभग २३०० श्लोकों का एक संग्रह बड़ोदा से प्रकाशित हो चुका है।

काणे जी का विचार है कि धर्मशास्त्रकार बृहस्पति तथा अर्थशास्त्रकार बृहस्पति संभवतः दो भिन्न व्यक्ति थे। (देखो, हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र पृ० १२५, सन् १९३०) यह विचार कल्पनामात्र है। पुरातन वाङ्मय में इस विषय का एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

काणे-निर्दिष्ट बृहस्पति-स्मृति काल—पुनः पृ० २१० पर काणे जी लिखते हैं—बृहस्पति अवश्य ही ईसा सन् २००-४०० तक के मध्य में हुआ था।

रङ्गास्वामी-निर्दिष्ट काल—बृहस्पति स्मृति के वचनों के संकलन कर्ता[1] श्री रङ्गास्वामी जी का मत है—

All the evidence .....tends to place most of the extant fragments ot Brihaspati......in the second century B. C. (Introduction p. 185, article 186)

अर्थात्—बृहस्पति स्मृति के अधिकांश उपलब्ध वचन ईसा पूर्व दूसरी शती के हैं।

ये दोनों लेखक भारतीय इतिहास के यथार्थ ज्ञान से शून्य हैं। बृहस्पति का धर्मशास्त्र विक्रम से ३००० वर्ष से पूर्व का है। विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व का विद्वान् मुनि कात्यायन बृहस्पति स्मृति से परिचित था।

८. गजशास्त्र—बार्हस्पत्य गजशास्त्र का विस्तृत वर्णन पं० भगवद्दत्तकृत वैज्ञानिक वाङ्मय का इतिहास में देखें।

९. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद १०।७१ का ऋषि बृहस्पति है।

---

१. बृहस्पति का एक वचन मल्लिनाथकृत रघुवंश टीका ११।२१ में उद्धृत है। रङ्गास्वामी जी ने यह वचन संग्रह में नहीं रखा।

२१. सनत्कुमार

वंश—महाभारत, शान्तिपर्व ३४६।७०,७१, हरिवंश १।१७।१२ तथा वायुपुराण १०।१०६ में सनत्कुमार को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा है। इसे अग्नि-पुत्र भी कहते हैं। वाल्मीकीय रामायण,पश्चिमोत्तर पाठ,बालकाण्ड, अध्याय ३४ में कुमार की उत्पत्ति का विशद वर्णन है। तदनुसार शैलेन्द्र की ज्येष्ठ दुहिता गङ्गा थी। गङ्गा तथा अग्नि से कुमार की उत्पत्ति हुई। प्रतीत होता है सनत्कुमार ब्रह्मा का वरा हुआ अर्थात् मानसपुत्र था। पार्वती को कुमार अतिप्रिय था।

नाम-व्युत्पत्ति—सनत्कुमार नाम से विशेष अभिप्राय है। हरिवंशपुराण १।१७।१७ में सनत्कुमार अपने नाम का अभिप्राय स्वयं स्पष्ट करता है—

यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्।
तस्मात्सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात्—जैसा उत्पन्न हुआ वैसा ही मैं हूं। मुझे कुमार जानो। इस कारण मेरा सनत्=सदा कुमार इति सनत्कुमार नाम रखा गया है।

भृगु आदि ब्रह्मा के मानसपुत्र प्रजाधर्मा कहे गए हैं। उनका वंशविस्तार हम यथास्थान लिख चुके हैं। सनत्कुमार योगधर्मा था। वह प्रजोत्पादन से उपरत रहा। वायुपुराण १०।१०७,१०८ में उसे ऊर्ध्वरेता कहा है।

अपरनाम—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणि २।१२२,१२३ में निम्नलिखित नाम उल्लिखित हैं—

स्कन्द, स्वामी, महासेन, सेनानी, षाण्मातुर, कार्तिकेय, कुमार, गुह, विशाख इत्यादि।

इस ग्रन्थ की स्वोपज्ञ टीका में उद्धृत शेषकोष के अनुसार स्कन्द का अपर-नाम करवीरक है। सुश्रुत का एक सहपाठी करवीरक था। उस करवीरक का सनत्कुमार से ऐक्य अभी चिन्त्य है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की भूल—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग प्रथम, पृष्ठ १११ पर कार्तिकेय, तथा भाग द्वितीय, पृ० २६१ पर सनत्कुमार नामक दो भिन्न आचार्यों का वर्णन किया है। यह युक्त नहीं।

आर्ष वाङ्मय में सनत्कुमार ही स्कन्द तथा कार्तिकेय आदि नामों से स्मृत है। छान्दोग्य उपनिषद् ७।२६ में सनत्कुमार का अपरनाम स्कन्द है—

मृदितकषायं तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते।

अर्थात्—भगवान् सनत्कुमार, विधूतकल्मष व्यक्ति को अन्धकार से पार अर्थात् प्रकाश का दर्शन करा देते हैं। इन्हीं भगवान् सनत्कुमार को [पुरातन आचार्य] स्कन्द[1] कहते हैं।

हरिवंश १।३।४३ में सनत्कुमार को स्कन्द तथा कार्त्तिकेय, दोनों नामोंसे स्मरण किया है। यथा—

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसा ॥

अर्थात्—सनत्कुमार कृत्तिकाओं का दूध पीने से कार्त्तिकेय कहाता है।[2] वह स्कन्द अथवा सनत्कुमार अग्नि के तेज के चतुर्थांश से उत्पन्न हुआ।

सारांश यह कि देव-सेनापति, कार्तिकेय सनत्कुमार है।

विशेषण—महाभारत, शान्तिपर्व ३४६।७० में सनत्कुमार को स्वयमागतविज्ञान, योगविद्, सांख्यशास्त्रप्रवर्तक, तथा मोक्षधर्मा कहा है। पूर्व-पृष्ठ पर लिख चुके हैं कि सनत्कुमार ऊर्ध्वरेता था।

वास्तव में सनत्कुमार को सम्पूर्ण ज्ञान उद्भासित हो गया था। उसने निवृत्तिमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षमार्ग का उपदेश किया।

देवसेना—इन्द्र-कन्या देवसेना कुमार की भार्या थी।

काल—सनत्कुमार दीर्घजीवी था। वह देवयुग के आरम्भ से चिरकाल तक जीवित रहा।

स्थान—वायुपुराण ७७।६३ के अनुसार सनत्कुमार का तीर्थ कुरुक्षेत्र था। यथा—

सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं च विशेषतः।
पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः ॥

पाञ्चरात्रोपनिषदान्तर्गत, सनत्कुमारसंहिता के अनुसार सनत्कुमार के आश्रम का नाम सिद्धाश्रम था।

---

१. स्कन्द नाम विशेष कारण से हुआ। वाल्मीकीय रामायण, पश्चिमोत्तर, पाठ, बालकाण्ड ३७।२८ में लिखा है—

कृत्तिकाः स्कन्दयामासुस्तमादित्यसमप्रभम्।
स्कन्द इत्येव तं देवाः प्रोचुरमितौजसम् ॥

२. वाल्मीकीय रामायण, पश्चिमोत्तर पाठ, बालकाण्ड ३७।२५,२६ में यह घटना अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखी गई है—

तदा क्षीरप्रदानार्थं कृत्तिकाः सन्नयोजयन्।
ततस्ता देवता ऊचुः कार्त्तिकेय इति प्रभुः ॥

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—सनत्कुमार के आयुर्वेद-विषयक तीन हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

(क) **सनत्कुमारसंहिता**—मद्रास सरकार के पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, भाग २३, संख्या १३१०२ के अन्तर्गत पाञ्चरात्रोपनिषद् पर सनत्कुमारसंहिता के ६४वें अध्याय का उल्लेख है—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं···विष्वक्सेनं तमाश्रये।
सनत्कुमारं योगीन्द्रं सिद्धाश्रमनिवासिनम्।
नारदः प्रणिपत्याथ वचनं चेदमब्रवीत्॥
भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वतन्त्रविशारद।
सर्वरोगहरास्त्वत्तः कल्पाश्च विविधाः श्रुताः॥
इदानीमक्षिरोगस्य शान्तिं ब्रूहि तपोधन।
इत्युक्तस्स मुनिश्रेष्ठस्सिद्धार्थस्सर्वमन्त्रवित्॥

सनत्कुमारः—

शृणु नारद धर्मज्ञ कल्पं नारायणाख्यकम्।
अक्षिरोगहरं पुण्यमायुष्यं पापनाशनम्॥
....
काशिपुर्यां पुरा ब्रह्मन् आसीद्राजा सुधार्मिकः।
पारिभद्र इति ख्यातः तस्य पुत्रो बृहद्रथः॥
भगवन् मम पुत्रस्य अक्षिरोगो भयावहः।
तस्य शान्तिर्भवेत्केन तत्त्वं ब्रूहि महामुने॥
मध्वक्तैः तिन्त्रिणीपुष्पैः चक्रगायत्रिया हुनेत्।
खर्जूरं[1] नारिकेलं च द्राक्षां धात्रीं हरीतकीम्॥

अर्थात्—सिद्धाश्रमवासी, योगीन्द्र सनत्कुमार को नारद प्रणाम करके बोला—हे सर्वशास्त्रनिष्णात, भगवन्, आप से सब रोगों को दूर करने वाले अनेक कल्प सुने हैं। हे तपोधन, अब अक्षिरोगों की शान्ति का उपाय बताओ।

सं० कु० बोला, हे धर्मज्ञ नारद, अक्षिरोगहर, पुण्य, दीर्घायु देने वाला, नारायण नामक कल्प सुनो—

पारिभद्र नामक काशिराज का पुत्र बृहद्रथ भयंकर अक्षिरोग से पीडित था। उसे मैंने अक्षिरोगहर-योग बताया था।

---

१. मातुलङ्गम् इति पाठान्तरम्।

अष्टांग संग्रह, उत्तरस्थान, अध्याय १६, पृ० १२३ पर किसी प्राचीन संहिता के आधार पर उद्धृत श्लोक में ऐसे छः आचार्यो[१] के नाम हैं जिनके नित्यस्मरण से नेत्र-रोग भय दूर हो जाता है। इनमें स्कंद को भी स्मरण किया गया है। प्रतीत होता है सनत्कुमार अक्षिरोग विशेषज्ञ था।

सनत्कुमार-संहिता के हस्तलेख में भी अक्षिरोगों का विस्तृत वर्णन है। सनत्कुमार नारद को उपदेश-रूप में यह विषय समझा रहे हैं। इस प्रकरण से विदित होता है कि सनत्कुमार अक्षिरोगों के सिद्धहस्त चिकित्सक थे, तथा अन्य अनेक रोगों का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे। सनत्कुमारप्रोक्त, अन्य-रोगविषयक अनेक कल्प भी थे, परन्तु अब वे अनुपलब्ध हैं।

(ख) वाहट ग्रन्थ—मद्रास-पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, संख्या १३२७६-७ अन्तर्गत कार्तिकेय रचित वाहट ग्रन्थ का उल्लेख है। यथा—

> अस्य श्रीपार्वतीयस्य प्रियसूनुर्गुणोन्नतः।
> षन्मुखे रचिते चैव वाहटग्रन्थमुत्तमम्॥
> वैद्यानां यशसेऽर्थाय व्याधितानां हिताय च।
> धत्ते धन्वन्तरिप्रोक्तं तमस्सूर्योदये यथा॥

इति—श्रीगौरीपुत्रकार्तिकेयविरचिते वाहटग्रन्थे निदानयोगो नाम प्रथमः परिच्छेदः॥

१३१७७ संख्या वाले हस्तलेख में निम्नलिखित अध्याय हैं—

१. निदानयोगः	२. कषाययोगः	३. पथ्यापथ्य योगः
४. तैलयोगः	५. घृतयोगः	६. लेह्यवर्ग समाप्तिः
७. चूर्णवटकयोगः	८. औषधयोगः	९. रसयोगः

(ग) अनुभोगकल्पक—तञ्जोर-भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, पृ० ७३७०, संख्या ११००५ के अन्तर्गत सनत्कुमार रचित अनुभोगकल्पक नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ का उल्लेख है। यह ग्रन्थ जड़ी, बूटी विषयक है।

२. वास्तुशास्त्र—मत्स्यपुराण में उल्लिखित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशकों में सनत्कुमार अन्यतम है। शिल्परत्न में कुमार को षडानन नाम से स्मरण किया है।

३. छन्दः शास्त्र—यादवप्रकाशकृत, पिङ्गलनागच्छन्दभाष्य के अन्त में

---

१. सुषर्ष्यं सुकन्यां च स्कन्दं च्यवनमश्विनौ।
षडेतान् यः स्मरेन्नित्यं तस्य चक्षुर्न हीयते।

लिखा है कि सनत्कुमार छन्दःशास्त्रज्ञ था—

छन्दः शास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहेनादित—
स्तस्मात्प्राप्य सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात्सुराणां पतिः।

४. सांख्यशास्त्र—सनत्कुमार का सांख्यविषयक ग्रन्थ तो अभी ज्ञात नहीं हो सका, परन्तु छान्दोग्योपनिषद् अध्याय सात में सनत्कुमार नारद के लिए सांख्यानुसारी आत्मज्ञान का उपदेश करते हैं।

५. सिद्धान्त ग्रन्थ—योगि-याज्ञवल्क्य नामक प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है—

हैरण्यगर्भैः कपिलैरपान्तरतमैस्तथा ।
सानत्कुमारैर्ब्रह्मिष्ठैस्तथा पाशुपतैरपि ॥
पाञ्चरात्रैरपीत्येतैः सिद्धान्तैश्चैव सप्तभिः।

अर्थात्—सात सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त सनत्कुमार का था।

पूर्वलिखित संहिता उसी का अङ्ग प्रतीत होती है।

२२. नारद

वंश—ब्रह्मा के मानसपुत्रों में नारद अन्यतम है। मत्स्यपुराण ३।६-८ के अनुसार वह दश मानसपुत्रों में कनिष्ठतम था।

काल—कृतयुग के अन्त से पाण्डव युधिष्ठिर के काल तक वह जीवित था। वस्तुतः वह अतिदीर्घजीवी था।

स्थान—नारद का निवास स्थान यद्यपि देवलोक था, तथापि वह सब लोकों में भ्रमण किया करता था।

अपरनाम—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणि ३।५१३ में नारद के तीन सुप्रसिद्ध नामों का उल्लेख है—

नारदस्तु देवब्रह्मा पिशुनः कलिकारकः।

अर्थात्—नारद को देवब्रह्मा, पिशुन तथा कलिकारक कहते हैं।

विशेषण—वाल्मीकीय रामायण १।६ में नारद को त्रिलोकज्ञ कहा है। प्रतीत होता है तीनों लोकों में भ्रमण करने के कारण वह उनका पूर्ण ज्ञान रखता था। पुराणों में उसे देवर्षि कहा है।

गुरु

१. **सनत्कुमार**—नारद ने सनत्कुमार से रोग-विषयक अनेक कल्प सुनें।

छान्दोग्य उपनिषद्, अ० सात के अनुसार नारद ने सनत्कुमार से अध्यात्म ज्ञान प्राप्त किया।

२. **शिव**—भावप्रकाश २।२ के अनुसार नारद ने शिव से अर्शोहर योग सीखा—

प्रणम्य शङ्करं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् ।
जीवितारोग्यमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदीश्वरम् ॥
सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ।
चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥

अर्थात्– हे शिव कृपा करके शस्त्र, क्षार तथा अग्नि-चिकित्सा के अतिरिक्त अर्श की कोई अन्य चिकित्सा बताओ ।

३. वसिष्ठ—महाभारत, शान्तिपर्व ३१४।४५ के अनुसार नारद ने वसिष्ठ से आत्मज्ञान प्राप्त किया ।

४. ब्रह्मा—गणक तरंगिणी पृष्ठ १ पर लिखा है कि ब्रह्मा ने नारद को ज्योतिर्विद्या सिखाई ।

अनेक विद्याज्ञाता—नारद

अटनशील नारद यत्र-तत्र विद्या संचय करता था, अतः उसने अनेक विद्याएं सीखी थीं । छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय सात में नारद सनत्कुमार से कहता है, हे भगवन् अध्ययनार्थ आया हूँ । सनत्कुमार उत्तर देता है—जो कुछ जानते हो वह बता दो । उससे आगे की बात कहूंगा । इस पर नारद कहता है—

स होवाच, ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

अर्थात्—हे भगवन् मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, पित्र्य, राशि, दैव, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्प देव जनविद्या पढ़ी हुई हैं ।

आयुर्वेद के प्रसंग में पूर्व विद्याओं में से भूतविद्या तथा सर्पविद्या विशेष ध्यान देने योग्य हैं । अष्टाङ्ग आयुर्वेद में भूतविद्या एक अङ्ग है ।

सभापर्व में नारद प्रशंसा—महाभारत, सभापर्व अध्याय ५ में नारद के अनुपम गुण स्मृत हैं । महाभारत के पूना संस्करण के सभापर्व के सम्पादक अमरीका देशवासी पक्षपाती फैङ्कलिन ईजर्टन ने सम्पूर्ण सम्पादन-नियमों का उल्लंघन करके इन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है । पूना-संस्करण पर यह महान् लाञ्छन है । अध्याय १५।१ में कथं प्रहिणुयां भीमं प्रसंग सम्पादक ने अङ्गीकार किया है । परन्तु गत अध्यायों में भीम के प्रेषण का प्रसंग नहीं

रखा। अत: ऐसा निश्चय है कि संस्करण भ्रष्ट है, तथा प्रकरण खण्डित होता है। ऐसा ही खण्डित प्रकरण ३८।४ में भी है।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—पूर्व पृष्ठ १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र-वचन में नारद को सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता माना है।

इण्डिया आफिस के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, संख्या २७१५ के अन्तर्गत नारद के आयुर्वेदीय धातुलक्षण ग्रन्थ का उल्लेख है। यह ग्रन्थ त्रिदोष तथा नाडीज्ञान विषयक है।

२. **नारदस्मृति**—नारद का यह ग्रन्थ आज भी दो पाठों में उपलब्ध है। कुछ पाश्चात्यों के विचारानुसार नारद का स्मृति ग्रन्थ ईसा की तीसरी चौथी शती का है। उनके उच्छिष्टभोजी कतिपय एतद्देशीय लेखक भी ऐसा ही मानते हैं। यह सर्वथा पक्षपातयुक्त भ्रान्त मत है। नारद का ग्रन्थ भारतयुद्ध से पूर्वकाल का है। नारद स्मृति पर असहाय अपरनाम विष्णुगुप्त चाणक्य के भाष्य का भाग अब भी उपलब्ध है। Meyer के अनुसार ना० स्मृ० ईसा से अनेक शती पूर्व की है।

३. **वास्तुशास्त्र**—मत्स्यपुराण के अनुसार अठारह वास्तुशास्त्रोपदेशकों में नारद एक था। मानसार नामक शिल्प-शास्त्र के ग्रन्थ में लिखा है—

> गङ्गाशिरः-कमलभू-कमलेक्षणेन्द्र-
> गीर्वाण-नारद-मुखैरखिलैर्मुनीन्द्रैः।
> प्रोक्तं समस्ततरवस्त्वपि वास्तुशास्त्रं
> तन्मानसार-ऋषिणापि हि लक्ष्यते स्म ॥ अ० १।२॥

हरिदास मित्र का मत—अभी अभी सन् १९५० में श्री हरिदास मित्रजी का ग्रन्थ—Contribution to a Bibliography of Indian art and aesthetics प्रकाशित हुआ है। उसम प्राचीन आचार्यों के विषय में लिखा है—

As in the cases of all other branches of Indian learning, the first acaryas who promulgated the Vastu-shastras.........were all figures of hoary antiquity;... ......; some of them are mythical; some others are even suspected, to be imaginary or fictitious names; some bear no proper names; a few are probably historical characters. (पृ० ३, ४)

अर्थात्—प्राचीन विद्याओं के अनेक आचार्य कल्पित हैं। उनका अस्तित्व नहीं था।

आलोचना—ब्रह्मा, सनत्कुमार, विष्णु, शिव तथा नारद आदि प्राचीन आचार्य शुद्ध इतिहास के पात्र थे। मित्रजी ने भारतीय इतिहास पढ़ा नहीं, अथवा पाश्चात्यों की अज्ञानमयी तथा पक्षपातयुक्त दृष्टि से पढ़ा है। अतः उनका यह लेख सर्वथा निर्मूल है। उनके ग्रन्थ की अन्य कुछ बातें अच्छी हैं। उनके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

४. गान्धर्ववेद—महाभारत, शान्तिपर्व २१२।३३ में वर्णित विद्यावंशावलि के अनुसार नारद को गन्धर्ववेद का ज्ञान प्राप्त हुआ।

गान्धर्वं नारदो वेद भरद्वाजो धनुर्ग्रहम्।
देवर्षिचरितं गर्गो कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्॥

अर्थात्—नारद गन्धर्ववेद को, भरद्वाज धनुर्विद्या को, गर्ग देवर्षि-चरित को तथा कृष्णात्रेय चिकित्सा को जानता था।

५. नाट्यशास्त्र—शारदातनयकृत भावप्रकाशन, पृष्ठ २ पर नारद रचित नाट्यशास्त्र का उल्लेख है।

नारद संगीत (बड़ोदा में मुद्रित) इस शास्त्र का अंग प्रतीत होता है।

६. ज्योतिःशास्त्र—गणकतरंगिणी के अनुसार नारद को ज्योतिःशास्त्र-प्रवर्तक कहा है। नारद की ज्योतिर्विद्या विषयक संहिता आज भी उपलब्ध है।

७. नारद-शिल्प—इसमें चित्रकला आदि हैं।

८. अर्थशास्त्र—विष्णुगुप्तकृत अर्थशास्त्र में पिशुन के अनेक मत उद्धृत हैं। वस्तुतः पिशुन अर्थात् नारद का एक महान् अर्थशास्त्र था। पिशुन के अर्थशास्त्र में भेदनीति का अधिक वर्णन प्रतीत होता है। भेदनीति में पैशुन्य की आवश्यकता है, अतः आज भी 'नारदमुन' का अर्थ कलह करवाने वाला है। वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड अध्याय १०० में नारद के अर्थशास्त्र विषयक अनेक श्लोक उद्धृत हैं। महाभारत, सभापर्व, अध्याय ५ में भी ऐसे अनेक श्लोक उपलब्ध होते हैं। ये श्लोक नारद स्वयं युधिष्ठिर के प्रति बोलता है। इन श्लोकों से नारद के अर्थशास्त्र का अस्तित्व ज्ञात होता है।

काणे और पिशुन नाम—श्री काणे जी अपनी हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, पृ० २०६ पर लिखते हैं—

डा० भण्डारकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रयुक्त पिशुन नाम को नारद का अपर नाम मानते हैं। परन्तु इस नामैक्य के मानने में नयचन्द्रिका के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं। इति।

काणे जी ने नयचन्द्रिका टीका की अप्रामाणिकता में कोई प्रमाण नहीं दिया। इसके अतिरिक्त स्पष्ट है कि उन्होंने अभिधानचिन्तामणि का पूर्वोद्धृत

वचन नहीं देखा। अन्यथा वे ऐसा न लिखते। वस्तुतः बहुधा पाश्चात्य मतानुगामी काणे-सदृश लेखकों को भय रहता है कि नारद आदि के ग्रन्थ अधिक पुराने सिद्ध न हो जाएं।

९. नारदकृत पांचरात्र की अनेक संहिताएं इस समय मुद्रित हो चुकी हैं।

१०. **नारद शिक्षा**—यह ग्रन्थ मुद्रित हो चुका है।

११. **हस्तिशास्त्र**—मातङ्गलीला में नारद का हस्तिशास्त्र वर्णित है।

१२. **मन्त्रद्रष्टा**—ऋग्वेद ९।१०४, १०५ नारददृष्ट सूक्त हैं।

योग—अष्टांगसंग्रह, उत्तरस्थान, पृष्ठ ४२३ पर नारद के लशुनासव का उल्लेख है। यथा—

सुखाद्मनां विशेषेण प्रयोज्यो लशुनासवः।
नारदेनोद्धवस्यैष वातभग्नस्य कल्पितः॥

अर्थात्—नारद ने वातरोग पीडित उद्धव को लशुनासव सेवन करवाया।

कौटल्यकृत अर्थशास्त्र में वातव्याधि नाम से जिस अर्थशास्त्र के कर्ता के मत उद्धृत हैं, टीकाकारों के अनुसार वह वातव्याधि आचार्य वृष्णि-मन्त्रि उद्धव था। सुप्रसिद्ध है कि नारद की श्रीकृष्ण से गहरी मैत्री थी। इस कारण वह उद्धव का भी मित्र था। अष्टाङ्ग संग्रह के इस प्रमाण से उद्धव के वात-व्याधि नाम की पुष्टि होती है। योरुप और अमरीका के कथित-संस्कृतज्ञ पिशुन तथा वातव्याधि आदि के अस्तित्व में ही सन्देह करते हैं। उनके अज्ञान पर उन को बधाई है।

गिरिन्द्रनाथ ने लक्ष्मीविलासरस, तथा महालक्ष्मीविलास रस नामक दो नारदीय योग लिखे हैं।

२३. धन्वन्तरि प्रथम (देव युग)

वंश—महाभारत, पुराण तथा आयुर्वेदीय संहिताओं में धन्वन्तरि की उत्पत्ति समानरूप से वर्णित है। वाल्मीकीय रामायण पश्चिमोत्तर पाठ, बाल-काण्ड अध्याय ४१ में लिखा है—

क्षीरोदसागरं सर्वे मथ्नीमः सहिता वयम्।
नानौषधीः समाहृत्य प्रक्षिप्य च ततस्ततः॥१८॥
यत्तत्रोत्पत्स्यते सारं तत् पास्यामस्ततो वयम्॥१९॥
तस्मादेतत् समुद्भूतममृतं चाप्यनन्तरम्।
अमृतानन्तरं चापि धन्वन्तरिरजायत॥२९॥
वैद्यराडमृतस्यैव बिभ्रत् पूर्णं कमण्डलुम्।

अर्थात्—हम [देवासुर] सब इकट्ठे क्षीरसागर का मन्थन करेंगे। नाना

ओषधियां इकट्ठी करके उसमें डालेंगे। तदनु उसका जो सार उत्पन्न होगा वह हम पियेंगे। तत्पश्चात् यह अमृत उत्पन्न हुआ। अमृत के पश्चात् धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ। वैद्यराज [धन्वन्तरि] अमृत का भरा हुआ कमण्डलु धारण किए हुए था।

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, ४।१८-२० में भी धन्वन्तरि की उत्पत्ति का वर्णन है—

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ।
उदतिष्ठत्सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः ॥

अर्थात्—तब मन्थन का निश्चय करके वासुकि को नेति तथा मन्दर[१] को मथानी बनाकर, अमित तेज वाले (देव-असुरों ने) मन्थन किया। तदनु वर्ष सहस्र में सुधर्मात्मा, आयुर्वेदमय पुरुष (धन्वन्तरि) दण्ड तथा कमण्डलु सहित उठा।

महाभारत आदिपर्व अध्याय १८ का वर्णन भी उपरिलिखित वर्णन से साम्य रखता है—

ततो नानाविधास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधिरसाः ॥३८॥
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनस्य च निःस्रवात् ॥३९॥
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ॥४३॥

अर्थात्—तब [उस आग से] नानाविध, महावृक्षों के स्राव तथा विविध ओषधि-रस समुद्र के जल में बह चले। उन अमृतवीर्य रसों के, तथा सुवर्ण के स्राव से देवता अमर हो गए। तब अमृत-युक्त श्वेत कमण्डलु को धारण किए शरीरधारी देव धन्वन्तरि उठे।

वायुपुराण ९२।९ में लिखा है कि धन्वन्तरि समुद्र के प्रान्त भाग में उत्पन्न हुआ। यथा—

---

१. वायुपुराण ३०।३३ में लिखा है कि मेरु की पत्नी धरणी ने मन्दर नामक पुत्र को जन्म दिया। संभव है मेरु तथा मंदर दोनों पिता-पुत्रों ने अमृतमंथन में भाग लिया हो। परन्तु इस श्लोक में इतिहास है अथवा अलंकार, यह चिन्त्य है।

धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः ।
स संभूतः समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ।

अर्थात्—हे ब्राह्मणो धन्वन्तरि का यह जन्म [दिवोदास नाम से] सुनो। पूर्वकाल में अमृत-मन्थन के समय वह समुद्र-निकटवर्तिनी भूमि में उत्पन्न हुआ।

हरिवंश पुराण का वर्णन भी इसी पूर्वलिखित वर्णन से सादृश्य रखता है—

जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुरामृते ।
उत्पन्नः कलशात्पूर्वं[1] सर्वतश्च श्रिया वृतः ॥

अर्थात्—पूर्वकाल में अमृत मन्थन के समय, कलश-नामक समुद्र-भाग से धन्वन्तरि जन्मा।

इन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि क्षीरोदसागर की निकटवर्तिनी अमृतालयनाम्नी भूमि में अमृत-मन्थन के समय धन्वन्तरि वैद्यराज के रूप में प्रकट हुआ। इस विषय की अधिक खोज अपेक्षित है।

काल—धन्वन्तरि प्रथम का जन्म अमृतोत्पत्ति के समय हुआ। अमृतमन्थन के काल से त्रेता के मध्य तक वह अवश्य जीवित रहा।

धन्वन्तरि शब्द की व्युत्पत्ति—सुश्रुत टीकाकार डल्हण धन्वन्तरि शब्द की निम्नलिखित व्युत्पत्ति करता है—

धनुः शल्यशास्त्रं, तस्य अन्तं पारं, इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः । सूत्र० १।३॥

अर्थात्—शल्यशास्त्र पारंगत को धन्वन्तरि कहते हैं।

इस व्युत्पत्ति के कारण उत्तरकाल में शल्यतन्त्रज्ञों के लिए धन्वन्तरि शब्द का प्रयोग होने लगा।

गुरु

१. भास्कर—धन्वन्तरि ने चिकित्सा विषयक ज्ञान भास्कर से प्राप्त किया। मत्स्य २५१।४ के अनुसार अमृतमन्थन में उपलब्ध प्राणियों में से धन्वन्तरि को भास्कर ने ग्रहण किया। यथा—

गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः ॥३॥
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।४।

२. इन्द्र—धन्वन्तरि ने पूर्वजन्म में इन्द्र से भी आयुर्वेद सीखा। भावप्रकाश १।७२ में लिखा है—

---

१. महाभारत, आदिपर्व १७।१२ में कलशोदधि का वर्णन है।

अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा ।
आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥

आयुर्वेद वेत्ता तथा व्याधिघातक—पृ० ९१, ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त-पुराण के श्लोकों से स्पष्ट है कि भास्कर-शिष्य चिकित्सा में प्रवीण थे। धन्वन्तरि भी चिकित्सा-विशेषज्ञ था। चिकित्सा-विषयक गूढ़-रहस्यों का ज्ञान होने से उसकी गणना व्याधिघातकों में की गई है। डाक्टर गङ्गानाथ झा एम० ए० ने अपने लेख[1] में किसी प्राचीन पुस्तक का वचन उद्धृत किया है। उसमें छः आचार्यों को व्याधि-नाशक कहा है—

धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजस्तथाऽश्विनौ।
नकुलः सहदेवश्च षडेते व्याधिघातकाः ॥

अर्थात्—१. धन्वन्तरि २. दिवोदास ३. काशिराज
४. अश्विद्वय ५. नकुल ६. सहदेव

ये ६ व्याधि के घातक अर्थात् रोग दूर करने वाले आचार्य हैं।

यह निश्चय है कि चिकित्सा-विषयक ग्रन्थ पृथक् लिखे गए, अतः धन्वन्तरि की गणना रोग दूर करने वाले आचार्यों में की गई है।

नामपर्याय तथा विशेषण

१. आदिदेव—धन्वन्तरि द्वितीय सुश्रुत, सूत्रस्थान १।१९ म धन्वन्तरि प्रथम को आदिदेव कहता है—

अयं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥

अर्थात्—आदि काल में देव, देवताओं की जरा, रोग तथा मृत्यु को दूर करने वाला मैं ही धन्वन्तरि हूं। अन्य अङ्गों से युक्त शल्याङ्ग का पुनः उपदेश करने के लिए पृथ्वी पर आया हूं।

इससे स्पष्ट है कि धन्वन्तरि का देवों से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

२. अमरवर—सुश्रुत, सूत्रस्थान १।३ में धन्वन्तरि के लिए अमरवर पद का प्रयोग हुआ है।

३. अमृतयोनि—सुश्रुत संहिता, पृ० ३६ पर डल्हण ने अपनी टीका में धन्वन्तरि के लिए अमृतयोनि विशेषण दिया है।

४. अब्ज—पुराणों में धन्वन्तरि का एक विशेषण अब्ज भी है।

---

१. Dr. S. Krishnaswami Aiyangar Commemoration Volume, पृ० २८४ पर डा० गंगानाथ झा का "Some Rare Works on Vaidyaka" नामक लेख है।

विशेष घटना

अमृतोत्पत्ति तथा धन्वन्तरि प्रथम—अमृत-मन्थन का वर्णन चतुर्थ अध्याय में हो चुका। अमृत-मन्थन के लिए ओषधि-संस्थापन का कार्य अश्विद्वय ने किया। मथित रस में से अमृत निकालने का श्रेय धन्वन्तरि को है। उसी की अलौकिक प्रतिभा से देवों को अमृत प्राप्ति हो सकी। सुश्रुत, उत्तरस्थान ३९।५ में लिखा है—

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि ॥

अर्थात्—जिस [धन्वन्तरि] ने पूर्वजन्म में [काशिराज-गृह में जन्म से पूर्व] जल के मध्य में से [ओषधिरस में से] अमृत निकाला।

इस अमृत के सेवन से देव दीर्घजीवी अर्थात् जरा मृत्यु रहित हुए।

ग्रन्थ

चिकित्सा तत्वविज्ञानतन्त्र—पूर्व जन्म में धन्वन्तरि ने चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान भास्कर से प्राप्त किया। पूर्व पृ० ९१, ९२ पर लिख चुके हैं कि भास्कर-संहिता पढ़ कर भास्कर-शिष्यों ने अपनी संहिताएं रचीं। धन्वन्तरि ने भी भास्कर की आयुर्वेद संहिता के आधार पर चिकित्सा तत्वविज्ञानतन्त्र की रचना की। इस ग्रन्थ में चिकित्सा-विषयक गूढ़ रहस्य बताए हैं।

२४. सोमपुत्र बुध अपरनाम राजपुत्र

वंश—चन्द्रवंश का मूलप्रवर्तक महाराज सोम अत्रि ऋषि का पुत्र था। सोमपुत्र बुध था। बुध की माता तारा थी। प्रसिद्ध चन्द्रवंशी सम्राट् तथा मन्त्र द्रष्टा पुरूरवा बुध का पुत्र था।

अपरनाम—चन्द्रपुत्र बुध का अपरनाम राजपुत्र है। मत्स्यपुराण २४।२ में लिखा है—

राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः।

अर्थात—राजा सोम का पुत्र होने के कारण बुध का अपरनाम राजपुत्र है।

काल—भारतयुद्ध से ६००० वर्ष पूर्व अथवा विक्रम से लगभग ९००० वर्ष पूर्व बुध जीवित था। निम्नलिखित प्रमाण इस ऐतिहासिक तिथि के मानने में सहायक हैं।

(क) **भट्ट कुमारिल**—असाधारण विद्वान् भट्ट कुमारिल (विक्रम ६५० से पूर्व) अपने तन्त्रवार्तिक में पालकाप्य तथा राजपुत्र को स्मरण करता है।

(ख) भट्ट कुमारिल से बहुत पूर्वकाल के मत्स्यपुराण (विक्रम संवत् से २७०० वर्ष पूर्व) में राजपुत्र बुध तथा उसके गजवैद्यक अपरनाम राजपुत्रीय का उल्लेख है।

(ग) रोमपाद का समकालिक, पालकाप्य मुनि (द्वापर का आरम्भ) अपने हस्तिशास्त्र के गजहृदय प्रकरण में लिखता है—

विद्यात् तान्यफलान्येवं गीयते सोमसूनुना ।

अर्थात्—सोमपुत्र बुध अथवा राजपुत्र ने ऐसा श्लोक गाया है ।

इन सब प्रमाणों से निश्चय हो जाता है कि राजपुत्र का पूर्व-निर्दिष्ट काल, जो इतिहास सम्मत है, सर्वथा ठीक है ।

स्थान—ईरान से सिन्धु नद पर्यन्त का देश सोम तथा बुध के राज्यान्तर्गत था ।

गुरु—बुध का आचार्य भास्कर था । बुध ने भास्कर से चिकित्साविषयक गहन तत्व सीखे ।

ग्रन्थ

१. चिकित्साविषयक—पूर्व पृष्ठ ६२ पर चिकित्साविशेषज्ञ भास्कर-शिष्यों की सूचि लिख चुके हैं । तदनुसार चन्द्रसुत बुध ने सर्वसार नामक चिकित्साविषयक ग्रन्थ रचा ।

२. गजायुर्वेद—राजपुत्र अर्थात् बुध को हस्तिशास्त्र प्रवर्तक माना है । मत्स्यपुराण में लिखा है—

सर्वार्थशास्त्रविद् धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ।
नाम यद् राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम् ॥
राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः ।

अर्थात्—(श्री ब्रह्मा जी, विशालाक्ष तथा इन्द्र आदि के) सब अर्थ-शास्त्रों का वेत्ता और हस्तिशास्त्रप्रवर्तक बुध था । राजपुत्र बुध की प्रसिद्ध रचना गजवैद्यक अपरनाम राजपुत्रीय कही जाती है ।

३. अर्थशास्त्र—मत्स्यपुराण के पूर्वोद्धृत श्लोक से स्पष्ट है कि राजपुत्र बुध अपने से पूर्ववर्ती सम्पूर्ण अर्थशास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता था । नीतिवाक्यामृत की टीका में राजपुत्र के राजशास्त्र विषयक अनेक श्लोक उपलब्ध होते हैं । अतः स्पष्ट है कि बुध की अर्थशास्त्र विषयक रचना अवश्य थी । यह रचना विभिन्न छन्दों में थी ।

४. कामतन्त्र—काश्मीरक दामोदरगुप्तकृत कुट्टनीमत में राजपुत्र के कामसूत्र का उल्लेख है ।

आर्य इतिहास में प्रसिद्ध ग्रन्थकार राजपुत्र एक ही है । यह भी निश्चय है कि बुध का ही अपरनाम राजपुत्र है । अतः ये ग्रन्थ उसी शास्त्रकार के हैं । मद्रास विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री रामचन्द्र दीक्षित ने ऐसे महापुरुष

को कल्पित माना है।[1] यह उनकी भारी भूल है। ऐसी भूल आर्य वाङ्मय का पूर्ण अवगाहन न होने से होती है।

२. **मन्त्रद्रष्टा**—बुध सौम्य ऋग्वेद १०। १०१ का ऋषि है।

२५. गर्ग

भारतीय इतिहास के सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पं० भगवद्दत्त जी का "अश्व-शास्त्र" नामक एक गवेषणापूर्ण लेख अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।[2] उसके आधार पर ऋषि गर्ग का निम्नलिखित इतिवृत्त दिया जाता है—

वंश—चन्द्रवंश में चक्रवर्ती भरत का पुत्र महाराज भुमन्यु था। उसका वंश-वृक्ष यहां दिया जाता है—
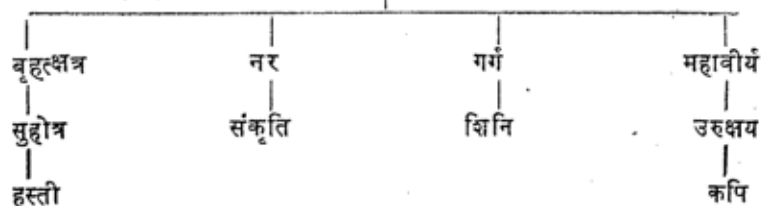
इस वंशवृक्ष से ज्ञात होता है कि महाराज भुमन्यु का पुत्र गर्ग था, तथा नर आदि गर्ग ऋषि के भ्राता थे। उनके पृथक् पृथक् गोत्र चले। गर्ग के वंश में गर्ग अथवा गार्ग्य हुए।

काल—भरत चक्रवर्ती त्रेता के पूर्वार्ध के अन्त में हुआ। उससे लगभग १०० वर्ष पश्चात् गर्ग जन्मा। वह दीर्घजीवी था। उस गर्ग ने अनेक शास्त्र रचे। उसके काल के विषय में अध्यापक श्री. तारापद भट्टाचार्य, अपने ग्रन्थ "ए स्टडि आन वास्तुविद्या", पृ० १०२ पर लिखते हैं—

The date of the famous writer Garga was between the second century B. C. and first century A. D.······ This Garga was followed by his disciples—पराशर, बृहद्रथ, विश्वकर्मा तथा वासुदेव।

---

१. The Matsya Purana by V. V. Ramchandra Dikshitar, Madras, 1935, p. 39.

२. वेदवाणी, मासिकपत्र, वर्ष ४, अङ्क ४, माघ २००८, पृ० ७, बनारस।

अर्थात्—वास्तुशास्त्रकार प्रसिद्ध गर्ग का काल ईसा-पूर्व २०० से ईसागत पहली शती तक था।……गर्ग के शिष्य पराशर आदि थे।

आलोचना—कहां भारत युद्ध से सहस्रों वर्ष पूर्व होने वाला गर्ग और कहां ईसापूर्व २०० वर्ष का समय। उस समय अत्रि, पराशर, बृहद्रथ, विश्व-कर्मा तथा वासुदेव आदि में से एक व्यक्ति भी जीवित नहीं था। तारापद जी ने पाश्चात्यों का संस्कार अधिक नहीं लिया पर यहां पर वे स्खलित हुए हैं। वस्तुतः गर्ग आदि का शास्त्र-रचन काल वही है, जो सामशाखाकार तथा अश्वशास्त्र-उपदेशक शालिहोत्र का काल था, अर्थात् त्रेता के मध्य से द्वापर के प्रारम्भ तक का काल।

गर्ग एक ही हुआ है। उसके विषय म पाणिनी (विक्रमपूर्व २८००) ने सूत्र रचा—गर्गादिभ्योयञ्।४।३। अतः गर्ग को अथवा उसके ग्रन्थ को ईसापूर्व प्रथम शती में रखना भारी भूल है।

गुरु—राजगुरु हेमराजजी के अनुसार गर्ग ने शालिहोत्र से अश्ववैद्यक का ज्ञान प्राप्त किया।[1] इस विषय में शालिहोत्र ग्रन्थ का निम्नलिखित स्थान द्रष्टव्य है।[2]

सुश्रुतो रुदराजश्च गर्गो मित्रजिदेव च।
पृच्छन्ति वाहनागारं शालिहोत्रं तपोनिधिम्॥

अर्थात्—सुश्रुत, रुदराज, गर्ग तथा मित्रजित् वाहनागार के विषय में तपोनिधि शालिहोत्र से पूछते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गर्ग शालिहोत्र का शिष्य था।

शिष्य—बृहत्संहिता अध्याय ४६ तथा मत्स्य पुराण अध्याय २२९ के अनुसार अत्रि ऋषि ने गर्ग से वास्तुशास्त्र ग्रहण किया।

ग्रन्थ

१. **अश्व-आयुर्वेद**—महर्षि गर्ग का अश्व-आयुर्वेद विषयक कोई ग्रन्थ था।

नेपाल के राजगुरु पण्डित हेमराज जी शास्त्री लिखते हैं—

---

१. हेमाद्रिकृत, लक्षणप्रकाश से काश्यप संहिता, उपोद्घात, पृ० ६६, टिप्पणि २ में उद्धृत।

२. हेमाद्रि रचित चतुर्वर्ग चिन्तामणि, व्रतखण्ड, अध्याय ३२ में उद्धृत।

दुर्लभगणकृते सिद्धोपदेशसंग्रहनामकेऽश्ववैद्यके ग्रन्थे—

शालिहोत्रेण गर्गेण सुश्रुतेन च भाषितम् ।
तत्त्वं यद् वाजिशास्त्रस्य तत्सर्वमिह संस्थितम् ॥[1]

अर्थात्—शालिहोत्र, गर्ग और सुश्रुत ने अश्वशास्त्र के विषय में जो कहा है, वह सब दुर्लभगण के ग्रन्थ में स्थित है। गणकृत अश्वायुर्वेद के अन्त में लिखा है—

ये शालिहोत्र-सुश्रुत-गर्गैर्महर्षिभिः पुरा कथितः ।
स्वे स्वे तुरङ्गशास्त्रे योगाश्शान्त्यै विकाराणाम् ॥[2]

अर्थात्—शालिहोत्र, सुश्रुत तथा गर्ग नामक महर्षियों ने पूर्वकाल म अपने-अपने अश्वशास्त्रों में विकारों की शान्ति के लिए जो योग कहे हैं।

इन दोनों लेखों से गर्ग का अश्वशास्त्रकार होना सिद्ध होता है।

२. **हस्ति आयुर्वेद**—युक्ति-कल्पतरु में गर्ग का हस्तिशास्त्र विषयक मत उद्धृत है।[3]

३. **वास्तुविद्या**—मत्स्यपुराण अध्याय २५२ में वर्णित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशकों में गर्ग की गणना की गई है। अग्निपुराण ६५।७ में गर्ग-विद्या का उल्लेख है। गर्गविद्या से निवासयोग्य गृहनिर्माण कला अभिप्रेत है। तारापद भट्टाचार्य ने लिखा है कि बृहत्संहिता, विश्वकर्मप्रकाश तथा सनत्कुमार-वास्तुशास्त्र में गर्ग के वास्तुशास्त्र का उल्लेख है।

४. **ज्योतिर्विद्या**—गणकतरङ्गिणी में वर्णित ज्योतिर्विद्याप्रवर्तकों में गर्ग का उल्लेख भी है।

वायसशास्त्र—यह शास्त्र ज्योतिष विद्या के ६४ अंगों में से एक विषय पर है। गर्गकृत वायसरुत का एक हस्तलेख बड़ोदा के हस्तलि० ग्रन्थों के सूचिपत्र में निर्दिष्ट है। देखो, भाग द्वितीय, पृ० १२४८, प्रवेश संख्या १२०३४, ग्रन्थ संख्या १२०।

वारिशास्त्र—यह शास्त्र भी ज्योतिष विद्यान्तर्गत है। इस विषय का अष्ट पत्रात्मक एक लघु ग्रन्थ नेपाल राज्य के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, संख्या ३६३३, पृ० ७६ पर उल्लिखित है। उसके अन्त में लिखा है—

गर्गभाषित वारिसार शतक समाप्तः। संवत् १६० ।

---

१. काश्यपसंहिता, उपोद्घात, पृ० ७०।

२. G.O.M.L. XXIII, १३३१६, पृ० ८६७२।

३. पं० भगवद्दत्तकृत, वैज्ञानिक वाङ्मय का इतिहास मुद्र्यमाण।

नेपाली संवत् १९० विक्रम संवत ११२७ है।

५. देवर्षिचरित—महाभारत शान्तिपर्व २१२।३३ में लिखा है कि गर्ग को देवर्षिचरित का ज्ञान परम्परा से उपलब्ध हुआ।

६. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद ६।४७ का ऋषि गर्ग है।

२६. च्यवन

वंश—पूर्व पृ० ५५ पर लिख चुके हैं कि ऋषि भृगु का पुत्र च्यवन था। मानव कुलोत्पन्न महाराज शर्याति की पुत्री सुकन्या ऋषि च्यवन की पत्नी थी। पूर्व पृ० ५५ के अनुसार कवि उशना च्यवन का भ्राता था। च्यवन नाम वेदमन्त्रों के आधार पर रखा गया है। अथर्ववेद ६।११६ (१२०) में च्यवन शब्द का अर्थ ज्वर है।

काल—च्यवन त्रेता के आरम्भ से अति दीर्घकाल तक जीवित रहा। वह रसायन-बल से दीर्घजीवी हुआ। चरकसंहिता चि० स्थान १।२।२० में लिखा है—

प्राणकामाः पुरा जीर्णाश्च्यवनाद्याः महर्षयः।
रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः॥

अर्थात्—पूर्वकाल में वृद्ध च्यवन आदि अनेक महर्षियों ने दीर्घ-जीवन की इच्छा से कल्याणकारी रसायनों का सेवन किया। उनसे वे अमितायु अर्थात् परिमाण से अधिक आयु वाले हुए।

च्यवन की कितनी आयु थी, यह हम अभी तक पूर्ण निश्चय नहीं कर पाए। द्वापर के आरम्भ में हिमालय पर के ऋषि-सम्मेलन में वह उपस्थित था। (देखो चरक सं०, सूत्र १।१।१०।।)

स्थान—सुकन्या के पाणिग्रहण के समय च्यवन सुराष्ट्र देश में रहता था। उस समय वह वृद्ध था। उससे पूर्व भी वह वहीं अथवा भारत के पश्चिम के किसी अन्य स्थान में निवास रखता होगा। वरुणदेव अरब देश में रहता था। उशना ईरान और काल्डिया आदि देशों में रहता था। भृगु ऋषियों के ये ही प्रदेश थे। भार्गव जमदग्नि भी भरुकच्छ के समीप अर्थात् भारत के पश्चिम में रहता था।

गुरु—चरक की परम्परानुसार च्यवन ने भरद्वाज से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण किया। पूर्व पृ० ९१ पर दी गई सूचि के अनुसार उसने भास्कर से व्याधि दूर करने की विशेष विधि सीखी।

क्या च्यवन अनेक थे—श्री रघुवीरशरण जी अपने ग्रन्थ धन्वन्तरि परिचय पृ० ८८ पर लिखते हैं—इसी प्रकार च्यवन भी अनेक हुं। इति। यह मत

सत्य नहीं। आर्य वाङ्मय में समान-नाम के विभिन्न व्यक्तियों के नामों के साथ पार्थक्य-दर्शक कोई स्पष्ट विशेषण प्रायः पाए जाते हैं। ऐसा कोई विशेषण च्यवन नाम के साथ नहीं मिलता।

विशेष घटना

१. वार्धक्य नाश—च्यवन के युवा होने की घटना एक ऐतिहासिक तथ्य है। आयुर्वेदीय चरक संहिता, चि० १।४ में लिखा है—

भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः।
वीतवर्णस्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ॥४४॥

अर्थात्—भृगु-पुत्र, कामी च्यवन वृद्ध होने पर वर्ण तथा स्वरहीन हो गया। अश्विद्वय ने उसे युवा किया।

ताण्ड्य ब्राह्मण १४।६।१०, शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, शान्तिपर्व ३५१।२४ तथा रसरत्नसमुच्चय, उत्तरखण्ड अध्याय १७ में भी इस घटना का वर्णन है। अश्विद्वय ने च्यवन को सरोवर में स्नान कराया, तत्पश्चात् वह युवा हो गया। नावनीतक पृ० १०६ पर लिखा है कि महर्षि च्यवन अश्वि-निर्दिष्ट अमृत तैल के प्रयोग से जरारोगमुक्त हो गया—

अस्य प्रयोगात् तैलस्य महर्षिः च्यवनः किल।
पुनर्युवत्वमापन्नो जरारोगविवर्जितः ॥

अर्थात्—इस [अमृत] तैल के प्रयोग से महर्षि च्यवन जरारोग रहित हो पुनः यौवन को प्राप्त हो गया।

च्यवनप्राश नामक औषध के योग में लिखा है कि इस रसायन के सेवन से च्यवन युवा हुआ। यथा—

अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ॥

अर्थात्—इस च्यवनप्राश के सेवन से अत्यन्त वृद्ध च्यवन पुनः युवा हुआ।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है, च्यवन ने युवा होने के लिए रसायन सेवन किया। एतद्विषयक गम्भीर तत्व अन्वेषणीय हैं।

२. इन्द्रभुज स्तम्भ—महाभारत, शान्तिपर्व ३५१।२४ में च्यवन द्वारा इन्द्र की भुजा के हिलने-जुलने में असमर्थ होने का वर्णन है।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार च्यवन आयुर्वेद का कर्ता था। पूर्व पृ० ९१ पर दी गई भास्कर-शिष्यों की नामावलि में च्यवन का नाम भी है। जीवदान नामक चिकित्सा-ग्रन्थ उसकी कृति थी।

अक्षिरोग चिकित्सक—पूर्व पृ० ११० पर कुछ ऐसे आचार्यों के नाम लिख

चुके हैं जिनके प्रतिदिन नाम-स्मरण से नेत्ररोग भय दूर हो जाता है। इनमें च्यवन का नाम भी है। प्रतीत होता है च्यवन अक्षिरोग विशेषज्ञ था।

सुकन्या—पूर्व लिखित आचार्यों में सुकन्या का नाम भी है। प्रतीत होता है सुकन्या को भी अक्षिरोग-विषयक चिकित्सा का ज्ञान हो गया था। अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा तथा अत्रि-पत्नी अनुसूया के समान च्यवन-पत्नी सुकन्या ने भी पति से आयुर्वेद विषयक ज्ञान प्राप्त किया।

२. **ज्योतिर्विद्या**—अष्टादश ज्योतिः-शास्त्र-प्रवर्तकों में च्यवन का नामोल्लेख है।

३. **मन्त्रद्रष्टा**—च्यवन ऋग्वेद १०।१६ का ऋषि था।

सुश्रुत संहिता, चि० १५।५ में **च्यावन मन्त्र** उल्लिखित हैं। य वेदमन्त्र नहीं हैं।

योग—चरक संहिता, चि० १।६१–७३, अष्टाङ्ग हृदय, उत्तरस्थान, ३६।३३-४१, गदनिग्रह, भाग प्रथम ५।२४६-२६१ में च्यवनप्राशावलेह तथा गदनिग्रह, भाग प्रथम ५।२८६-२६१ में लघुच्यवनप्राशावलेह नामक योग पाए जाते हैं। यह स्पष्ट नहीं कि इन योगों का उपदेश च्यवन ने किया अथवा च्यवन के निमित्त किसी अन्य ऋषि ने। हारीत संहिता के अनुसार कृष्णात्रेय ने इसे भाषित किया—

च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयेण भाषितम् ३।६॥

२७. विश्वामित्र

वंश—महाभारत, आदिपर्व १६१।३,४ के अनुसार कुशिक का पुत्र गाधि तथा गाधि का पुत्र विश्वामित्र था।

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ५१।१८, १९ में वंशपरम्परा कुछ परिवर्तित है। इसके अनुसार कुशिक का पुत्र कुशनाभ, कुशनाभ का गाधि तथा गाधि का पुत्र विश्वामित्र है। यह भेद विचारणीय है। परन्तु इतना निश्चय है कि विश्वामित्र महाराज गाधि का पुत्र था। सुश्रुतसंहिता का कर्ता सुश्रुत इसी विश्वामित्र का सुत था। ऋषि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय था। वसिष्ठ के ब्रह्मतेज से लज्जित हो उसने तप किया। पूर्व पृष्ठ १० पर लिख चुके हैं कि तपोबल से विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बना।

मधुच्छन्दा आदि ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे। भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध शकुन्तला, जो भरत चक्रवर्ती की माता थी, इसी विश्वामित्र की कन्या थी।

स्थान—विश्वामित्र का पिता गाधि कान्यकुब्ज का नृपति था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६१ में लिखा है—

कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ।

अर्थात्—हे भरतश्रेष्ठ कान्यकुब्ज में [गाधि नामक] महान् राजा था।

गाधि के अनन्तर उसका पुत्र विश्वामित्र कान्यकुब्ज का अधिष्ठाता हुआ।

वायुपुराण ८८।८६ के अनुसार विश्वामित्र ने "सागरानूप" में तप तपा।

काल—विश्वामित्र का काल त्रेता के मध्य से द्वापर के प्रथम चरण तक अवश्य है। ऋषि विश्वामित्र द्वापर के आरम्भ में होने वाले ऋषि-सम्मेलन में उपस्थित था।

गुरु

आयुर्वेदज्ञान—चरकसंहिता की परम्परानुसार विश्वामित्र ने भरद्वाज से आयुर्वेदाध्ययन किया।

हारीतसंहिता ३।२९ के अनुसार महामुनि विश्वामित्र को अश्वियों ने अश्विरसायन का उपदेश दिया।

यज्ञज्ञान—शांखायन आरण्यक में लिखा है कि विश्वामित्र ने यज्ञ-ज्ञान इन्द्र से प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृष्ठ १०४ पर उद्धृत शालिहोत्रवचनानुसार विश्वामित्र आयुर्वेद का कर्ता तथा सर्वलोक चिकित्सक था। विश्वामित्र के आयुर्वेदीय ग्रन्थ के वचन आज भी उपलब्ध होते हैं। अष्टाङ्गहृदय पृ० ६४ पर हेमाद्रि अपनी टीका में लिखता है—

उक्तं हि विश्वामित्रेण—
तडागजं दरीजं च तडागाद्यत्सरिज्जलम्।
बलारोग्यकरं तत्स्याद्दरीजं दोषलं मतम् ॥इति॥

सुश्रुतसंहिता, निदानस्थान ५।१६ की टीका में डल्हण विश्वामित्र का वचन उद्धृत करता है—

तथा च विश्वामित्रः—
"त्वग्गतं तु यदस्त्रावि किलासं तत् प्रकीर्तितम्।
यदा त्वचमतिक्रम्य तद्धातूनावगाहते।
हित्वा किलाससंज्ञां च श्वित्रसंज्ञां लभेत तत्" । इति ।

ये दोनों वचन गिरिन्द्रनाथ ने नहीं लिखे। इन के अतिरिक्त उन्होंने अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों में से विश्वामित्र के १२ वचन उद्धृत किए हैं

२. धनुर्वेद—प्रपञ्च हृदय नामक ग्रन्थ में लिखा है—

धनुर्वेदो ब्रह्म-प्रजापति-इन्द्र-मनु-जमदग्नि-सुतादिभिरध्ययनाध्यापनपरम्परानुगतो विश्वामित्रादिभिरनन्तरं शास्त्रत्वमापन्नः । इति । उपवेद प्रकरण ।

अर्थात्—ब्रह्मा आदि का धनुर्वेद परम्परा में आकर विश्वामित्र आदि द्वारा शास्त्र रूप में [संक्षिप्त] हुआ ।

मधुसूदन सरस्वती अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्र कृत धनुर्वेद का उल्लेख करता है ।

३. स्मृति—याज्ञवल्क्य स्मृति का पुरातन टीकाकार विश्वरूप वृद्ध याज्ञवल्क्य के प्रमाण से विश्वामित्र को स्मृतिकार मानता है । मद्रास सरकार तथा दयानन्द कालेज, लाहौर (?) के संग्रह में विश्वामित्र धर्मशास्त्र के हस्तलेख हैं ।

४. मन्त्रद्रष्टा—विश्वामित्र अनेक वेद मन्त्रों का द्रष्टा था । ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के अधिकांश सूक्तों का वह ऋषि है ।

९८. जमदग्नि

वंश—जमदग्नि का जन्म भृगुवंश में हुआ । भृगु का संक्षिप्त वंशवृक्ष पृष्ठ ५५ पर लिख चुके हैं । उससे आगे का वंशक्रम निम्नलिखित है—
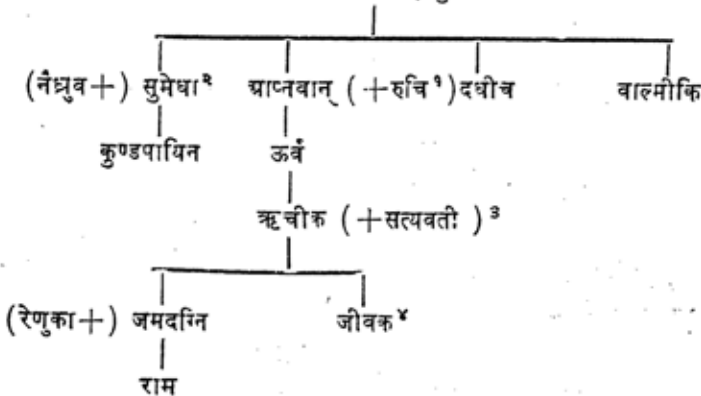
१. आप्नवान्-पत्नी नहुष-कन्या रुचि थी ।

२. सुमेधा निध्रुव (पूर्व पृ० ८०) की पत्नी बनी । उसके पुत्र कुण्डपायी थे ।

३. गाधी की कन्या तथा पुरुकुत्स की दौहित्री थी ।

४. काश्यपसंहिता, कल्पस्थान, पृ० १८१ ।

अर्थात्—च्यवन-प्रपौत्र तथा ऋचीक का पुत्र जमदग्नि था। जमदग्नि और उसका भ्राता जीवक दोनों आयुर्वेद के पण्डित थे।

काल—त्रेता के आरम्भ में जमदग्नि हुआ। वह द्वापर के आरम्भ में हिमालय पर होने वाले ऋषि-सम्मेलन में उपस्थित था।[1]

स्थान—मही और नर्मदा नदियों के मध्य में माहेय देश था।[2] वहां के राजा माहेय कहाए। उन माहेयों का पुरोहित जमदग्नि था। जैमिनीय ब्राह्मण १।१५२ में लिखा है—

जमदग्निर्ह वै माहेयानां पुरोहित आस।

अत: जमदग्नि ने जीवन का पर्याप्त भाग नर्मदा के समीप भारत के पश्चिम में अतिवाहित किया।

गुरु—चरकसंहिता, सूत्रस्थान १।१।२७ के अनुसार जमदग्नि ने भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

विशेष घटना

१. जमदग्नि का उशना द्वारा पुनर्जीवन—ब्रह्माण्ड पुराण में जमदग्नि के हैहय-राज द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। पूर्व पृष्ठ ६८ पर लिख चुके हैं कि उशनाकाव्य ने संजीवनी-विद्या द्वारा उसे पुनर्जीवित किया। जै० ब्रा० १।१५२ में उद्धृत एक पुरातन गाथा में माहेयों द्वारा भृगु=भार्गव जमदग्नि के मारे जाने का संकेत है।

२. रसायन-सेवन—चरकसंहिता, चि० १।४ में लिखा है कि अन्य ऋषियों के साथ जमदग्नि ने भी ब्रह्मा की वार्षसाहस्रिक रसायन का सेवन किया। उसके प्रभाव से उसने चिरकालपर्यन्त तप तपा।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ० १०६ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार जमदग्नि आयुर्वेद का कर्ता तथा सर्वलोक-चिकित्सक था।

२. धनुर्वेद—जमदग्नि कृत धनुर्वेद का एक श्लोक डल्हणकृत सुश्रुत-संहिता, चि० १२।११ की टीका में लिखा है—

रथचर्यां पदातिचर्यां च जमदग्निराह।

३. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद १०।१६७ के मन्त्रद्रष्टा विश्वामित्र तथा जमदग्नि दोनों हैं। ऋग्वेद १०।११० के ऋषि जमदग्नि तथा परशुराम दोनों पिता-पुत्र

---

१. चरकसं० सूत्रस्थान १।१।८॥

२. महाभारत, भीष्मपर्व ६।४६॥

हैं। अथर्ववेद ६।१०२ का ऋषि जमदग्नि है।

१७½. वरुण[1]

वंश—इन्द्र, विष्णु आदि बारह देवों में वरुण एक था।

योग—वरुण का निम्बारिष्ट योग अष्टाङ्ग संग्रह, चि० अध्याय २१ में उद्धृत है—

निम्बारिष्ट इति ख्यातो वरुणेनैष निर्मितः ॥

२६. काश्यप तथा वृद्धकाश्यप

वंश—पूर्व पृष्ठ ६५–७१ पर ऋषि कश्यप का वर्णन हो चुका है। चरकसंहिता १।८ में कश्यप तथा १।१२ में काश्यप नामक दो ऋषियों को स्मरण किया है। निश्चय है कि काश्यप शब्द गोत्रप्रत्ययान्त है। महाभारत, आदिपर्व ६१।५२ में काश्यप आश्रम का वर्णन है। यह आश्रम था महर्षि कण्व का। काश्यप उसका गोत्रनाम है। इस परम्परा के अनुसार मूलपुरुष का नाम कश्यप है।

काश्यप तथा वृद्ध काश्यप—आयुर्वेदीय संहिताओं में अनेक स्थानों पर काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के वचन और योग उद्धृत हैं। बहुत सम्भव है काश्यप तथा वृद्धकाश्यप एक ही हों। संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनु तथा वृद्धमनु, गर्ग तथा वृद्धगर्ग, याज्ञवल्क्य तथा वृद्धयाज्ञवल्क्य, भोज तथा वृद्धभोज, सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत नामक शास्त्र विद्यमान थे। इसी प्रकार काश्यप संहिता का परिवर्द्धित संस्करण वृद्धकाश्यप हो सकता है।

काल—चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० १ में वर्णित ऋषिसम्मेलन में काश्यप उपस्थित था। अतः द्वितीय द्वापर में ऋषि काश्यप विद्यमान था। काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के अगदतन्त्रविषयक अनेक योग तथा वचन मिलते हैं। महाभारत आस्तीकपर्व अ० ५१ में ब्रह्मर्षि काश्यप तथा तक्षक के संवाद का उल्लेख है। उस प्रकरण में ऋषि के मन्त्रबल से तक्षक-प्रयुक्त विष के नाश का वर्णन है। प्रतीत होता है महाभारत में वर्णित काश्यप तथा आयुर्वेदीय संहिता वाला काश्यप, एक ही हैं। यदि यह ठीक हो तो काश्यप भारतयुद्ध के पश्चात् भी जीवित था।

आयुर्वेदकर्ता—पूर्व पृ० १०३ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार काश्यप आयुर्वेद का कर्ता था। निबन्धसंग्रह ६।२७ में काश्यपतन्त्र का वर्णन है—

काश्यपादितन्त्रान्तरोक्ताधिकसंख्यानिराकरणार्थम्।

काश्यप के वचन—काश्यप के निम्नलिखित वचन भिन्न-भिन्न आयर्वेदीय

---

१. इसे संख्या १७ के आगे पढ़ें।

संहिताओं में उद्धृत हैं—

(क) ननु काश्यपेन मुनिना शिरादिष्वग्निकर्म प्रतिषिद्धम् । तथा च तद्वचनम्—

न सिरास्नायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपि कथञ्चन ।
दंशस्योत्कर्तनं कार्यं दाहो वा भिषजाग्निना ॥[1]

(ख) काश्यपोक्तं श्लोकमाह गयदासः—

अरजस्कां यदा नारीं श्लेष्मरेता व्रजेद्रतौ ।
अन्यसक्ता भवेत् प्रीतिर्जायते कुम्भिकस्तदेति ॥[2]

योरुप के किसी सन्ततिशास्त्र-विषयक ग्रन्थ में ऐसा सूक्ष्म वर्गीकरण नहीं।

(ग) "मूत्रेण चतुर्गुणेन" इत्यादि काश्यपीयसंवादात् ॥[3]

निम्नलिखित वचन गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने "हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन" भाग प्रथम, पृ० १८२ पर चरकसहिता १।१२ के प्रमाण से काश्यप के नाम से उद्धृत किया है—

तच्छ्रुत्वा मारीचिवचः काश्यप उवाच । सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति । इत्यादि । चरकसंहिता, सू० १२।१२ ॥

चरकसंहिता लाहौर संस्करण तथा यादवजिकृत संस्करण में यह वचन काश्यप नहीं अपितु काप्यऋषि के नाम से उद्धृत है ।

वृद्धकाश्यप के वचन—आयुर्वेदीय संहिताओं में निम्नलिखित वचन वृद्धकाश्यप के नाम से उद्धृत हैं—

(क) पृथग्दोषसन्निपातरक्तागन्तुजत्वभेदेन षड्विधत्वमाह वृद्धकाश्यपः ।[4]

आयुर्वेदीय चरकसंहिता चि० २३।१४ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

वृद्धकाश्यपेऽप्युक्तम्—

(ख) संयोगजञ्च द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते ।
गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं मतम् ॥[5]

---

१. निबन्धसंग्रह, सू० १२।४॥　　२. सुश्रुत सं० शा० २।३६॥

३. निबन्धसंग्रह, उत्तरतन्त्र ४७।११ ॥

४. अष्टाङ्गसंग्रह, उ० स्थान इन्दुटीका, अ० ३६, पृ० २७० ।

५, व्याख्या मधुकोश ।

इस वचन से स्पष्ट है कि वृद्धकाश्यप नामक आयुर्वेदीय रचना अवश्य थी।

(ग) वृद्धकाश्यपेन शुष्कलक्षणमभिहितं यथा—

गर्भनाड्यास्त्ववहनादल्पत्वाद्वा रसस्य च।
चिरेणाप्यायते गर्भस्तथैवाकालभोजनात् ॥
अकुक्षिपूरणं गर्भस्पन्दनं मन्दमेव च[1] ॥ इति।[2]

अगदतन्त्रज्ञ काश्यप—पूर्व पृष्ठ १०० पर महाभारत के प्रमाण से लिख चुके हैं कि ऋषि-काश्यप विषहर-विद्याविचक्षण था। निबन्धसंग्रह में उद्धृत काश्यप के वचन से ज्ञात होता है कि काश्यप विष-विशेषज्ञ था। काश्यप का विष-विषयक एक योग भी आगे लिखेंगे। प्रतीत होता है कि काश्यप को अगद-तन्त्र का ज्ञान था। इस विषय में अधिक अन्वेषण अपेक्षित है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थ

१. **काश्यप ऋषि-प्रोक्त स्त्रीचिकित्सा सूत्र**—इसका उल्लेख इण्डियन कलचर, भाग ६ पृ० ५३–६४ पर है।

२. **काश्यपीय रोगनिदानम्**—मद्रास पुस्तकभण्डार के सूचीपत्र भाग २३, संख्या १३११२ के अन्तर्गत यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३. **काश्यपसंहिता**—अगदतन्त्रपरक काश्यपसंहिता नामक एक ग्रन्थ मद्रास-प्रान्त में मुद्रित हो चुका है।[3]

४. **काश्यपसंहिता**—तञ्जोर पुस्तक भण्डार में संख्या ११०४६ के अन्त-र्गत ३५०० ग्रन्थ-परिमाण वाला यह अपूर्ण ग्रन्थ विद्यमान है।

अन्य ग्रन्थ

१. **व्याकरण**—अष्टाध्यायी १।२।२५ तथा ८।४।६७ में पाणिनि मुनि वैयाकरण काश्यप का मत उद्धृत करता है। काश्यप व्याकरण का कोई सूत्र अभी उपलब्ध नहीं।[4]

२. **कल्प**—वार्तिककार कात्यायन के मतानुसार अष्टाध्यायी ४।३।१०३ में किसी काश्यपकल्प का उल्लेख है।

---

१. अकुक्षिपूरणं गर्भः शुष्कश्च मन्द एव च। इति पाठान्तरम्।

२. निबन्धसंग्रह, शा० १० २७॥

३. इसका विशेष विवरण वृद्धजीवकीयतन्त्र, उपोद्घात पृ० ३० पर देखें।

४. देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० १०४।

३. छन्दःशास्त्र—आचार्य पिङ्गल ने अपने छन्दःशास्त्र ७।९ में काश्यप का एक मत उद्धृत किया है। इससे विदित होता है कि काश्यप ने किसी छन्दःशास्त्र का प्रवचन किया था।

४. पुराण—वायुपुराण ६१।५६ के अनुसार वायुपुराण के प्रवक्ता का नाम अकृतव्रण काश्यप था। यहां काश्यप शब्द गोत्रवाचक है।

५. काश्यपीय सूत्र—उद्योतकर अपने न्यायवार्तिक १।२।२३, पृ० ६९ में कणादसूत्रों को काश्यपीय सूत्र के नाम से उद्धृत करता है। कणाद काश्यप-गोत्रीय था।

उपरिलिखित ग्रन्थों का रचयिता एक ही काश्यप था अथवा भिन्न-भिन्न काश्यप, यह अभी अज्ञात है।

योग—काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के निम्नलिखित योग उपलब्ध होते हैं—

(क) वचा हिंगु विडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ॥२७॥
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम्।
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥२८॥[1] (काश्यप)

(ख) देवदारुविषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका।
वाचः स्वजनतां हन्ति पीतमित्याह काश्यपः।[2] (काश्यप)

(ग) काश्यपीय गुडिका नामक योग नावनीतक में उल्लिखित है।

(घ) चक्रदत्त पृ० ३१० पर काश्यपादि ऋषियों का "फलघृत" नामक योग वर्णित है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने काश्यप के केवल तीन योगों का वर्णन किया है। मुखोपाध्याय के इतिहास में वृद्धकाश्यप का कोई योग वर्णित नहीं, परन्तु उन्होंने निम्नलिखित योग कश्यप के नाम से उद्धृत किया है। अष्टाङ्गहृदय, उ० २।४१-४३ तथा अष्टाङ्गसंग्रह, उ०, अ० २, पृ० २५ पर यह योग वृद्ध-कश्यप का है।

(क) समङ्गाधातकीलोध्रकुटन्नटबलाद्वयैः।
महासहाक्षुद्रसहामुल्गबिल्वशलाटुभिः ॥
सकार्पासीफलैस्तोये साधितैः साधितं घृतम्।
क्षारमस्तुयुतं हन्ति शीघ्रं दन्तोद्भवोद्भवान् ॥
विविधानामयानेतद् वृद्धकाश्यपनिर्मितम्। (वृ०काश्यप)

1. अष्टाङ्गसंग्रह, उत्तरस्थान, अ० ४३, पृ० ३२७ तथा अष्टाङ्गहृदय पृ० ६१६।
2. अष्टांगसंग्रह, उ, अ० ४१, पृ० ३१६।

अष्टम अध्याय

आयुर्वेदावतरण

पूर्व पृष्ठ ५०—५४ पर संसार में रोगोत्पत्ति के कारणों का विशद विवेचन हो चुका है। सर्वप्रथम ब्रह्मोपदिष्ट आयुर्वेद-ज्ञान देवलोक में विस्तृत हुआ। देवभिषक् अश्विद्वय आदि भ्रमण करते हुए मर्त्यलोकवासियों की चिकित्सा भी कर देते थे। शनैः-शनैः अनेक ऋषियों ने इन्द्र आदि से सामयिक आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया। इन ऋषियों की कृपा से मर्त्यलोक में आयुर्वेद का आंशिक विस्तार हुआ। परन्तु मर्त्यलोकवासी गुरु-परम्परागत सर्वाङ्गीण ज्ञान से वञ्चित थे।

ऋषि-सम्मेलन—आयुर्वेद के सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान के अभाव में मर्त्यलोक-वासी पूर्णतया शरीर-रक्षा नहीं कर सकते थे। उनकी शारीरिक शक्तियां क्षीण हो गईं। शारीरिक शक्तियों के दुर्बल होने से धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि में बाधा पड़ने लगी। फलतः परमज्ञानी ऋषियों के मन में करुणा उत्पन्न हुई। वे ब्रह्मज्ञानी विचारार्थ परमपवित्र हिमवत्पार्श्व पर एकत्रित हुए। तेजस्वी ऋषियों ने रोगशमन के उपायों पर विमर्श किया। परन्तु यह समाधिगम्य ज्ञान था। अतः परमकारुणिक ऋषिगण ध्यानावस्थित हुए। योगीश्वराधिष्ठित पर्वतराज-हिमालय पर समाधिस्थ ऋषियों को युगपद् ज्ञान हुआ कि परम आयुर्वेदज्ञ, अमरप्रभु इन्द्र ही रोगशमन का सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान दे सकता है। चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० १ में लिखा है—

> अङ्गिरा जमदग्निश्च वसिष्ठः कश्यपो भृगुः।
> आत्रेयो गोतमः साङ्ख्यः पुलस्त्यो नारदोऽसितः ॥८॥
> अगस्त्यो वामदेवश्च मार्कण्डेयाश्वलायनौ।
> पारीक्षिर्भिक्षुरात्रेयो भरद्वाजः कपिष्ठलः ॥९॥
> विश्वामित्राश्मरथ्यौ च भार्गवश्च्यवनोऽभिजित्।
> गार्ग्यः शाण्डिल्यकौण्डिन्यौ वार्क्षिर्देवलगालवौ ॥१०॥

सांकृत्यो बैजवापिश्च कुशिको बादरायणः ।
बडिशः शरलोमा च काप्यकात्यायनावुभौ ॥११॥
काङ्कायनः कैकशेयो धौम्यो मारीचिकाश्यपौ ।
शर्कराक्षो हिरण्याक्षो लोकाक्षः पैङ्गिरेव च ॥१२॥
शौनकः शाकुनेयश्च मैत्रेयो मैमतायनिः ।
वैखानसा वालखिल्यास्तथा चान्ये महर्षयः ॥१३॥
ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ।
तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥१४॥

अर्थात्—

१. अङ्गिरा	१८. भरद्वाज	३५. शरलोमा
२. जमदग्नि	१९. कपिष्ठल	३६. काप्य
३. वसिष्ठ	२०. विश्वामित्र	३७. कात्यायन
४. कश्यप	२१. आश्मरथ्य	३८. काङ्कायन
५. भृगु	२२. भार्गव च्यवन	३९. कैकशेय
६. आत्रेय	२३. अभिजित्	४०. धौम्य
७. गोतम	२४. गार्ग्य	४१. मारीचि
८. साङ्ख्य	२५. शाण्डिल्य	४२. काश्यप
९. पुलस्त्य	२६. कौण्डिन्य	४३. शर्कराक्ष
१०. नारद	२७. वार्क्षि	४४. हिरण्याक्ष
११. असित	२८. देवल	४५. लोकाक्ष
१२. अगस्त्य	२९. गालव	४६. पैङ्गि
१३. वामदेव	३०. सांकृत्य	४७. शौनक
१४. मार्कण्डेय	३१. बैजवापि	४८. शाकुनेय
१५. आश्वलायन	३२. कुशिक	४९. मैत्रेय
१६. पारीक्षि	३३. बादरायण	५०. मैमतायनि
१७. भिक्षु आत्रेय	३४. बडिश	५१. वैखानस (अनेक)

५२. वालखिल्य (अनेक)

तथा अन्य अनेक महर्षि [हिमवत्पार्श्व पर ऋषिसम्मेलन में आए]। ये सब ब्रह्मज्ञान तथा यम नियमों के कोष थे। तप के तेज से वे इस प्रकार दीप्त थे मानों देदीप्यमान अग्नि हों।

टिप्पणी—आर्यों में समय-समय पर ऐसे सम्मेलन हुआ करते थे। उनमें देश भर के परमज्ञानी आया करते थे, तथा सम्पूर्ण समस्याओं को सरलता से

सुलझा लेते थे। क्या यह सभ्यता की पराकाष्ठा नहीं। हमारे जातीय गौरव को नष्ट करने के लिए यह मिथ्या प्रचार किया जाता है कि आर्य लोग असभ्य थे तथा आज के युग में ही सभ्यता का पूर्ण विकास हुआ है। अस्तु।

ऋषि-प्रतिनिधि भरद्वाज—इन्द्र से ज्ञान उपलब्ध करने का निश्चय होने पर प्रश्न हुआ कि इन्द्र-भवन में किसे भेजा जाए। इस पर ऋषि भरद्वाज सहसा बोल उठा, "मुझे इस कार्य पर नियुक्त किया जाए।" वास्तव में भरद्वाज का पिता बृहस्पति देवगुरु था। भरद्वाज तथा इन्द्र की परस्पर मैत्री भी थी। अतः भरद्वाज का इन्द्र के पास जाना अति सरल था। अपरञ्च भरद्वाज अनूचानतम था। इसी कारण ऋषियों से नियुक्त परमर्षि भरद्वाज इन्द्र-भवन को गया। इन्द्र ने उसे आयुर्वेदोपदेश किया। चरकसंहिता, सूत्र-स्थान, अ० १ में लिखा है—

तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः।
पदैरल्पैर्मतिं बुद्ध्वा विपुलां परमर्षये ॥२३॥
हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः ॥२४॥
सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामतिः।
यथावदचिरात्सर्वं बुबुधे तन्मना मुनिः ॥२५॥

अर्थात्—भगवान् शतक्रतु ने परमर्षि भरद्वाज की विपुल बुद्धि जानकर अल्प शब्दों में उसे आयुर्वेद का उपदेश किया। यह हेतु, लिङ्ग तथा औषध ज्ञानात्मक, स्वस्थ तथा आतुर का उत्कृष्ट मार्ग [अर्थात् स्वस्थ तथा रोगी दोनों को ठीक मार्ग दिखाने वाला] त्रिसूत्रमय, स्थायी, पुण्य ब्रह्मा का आयुर्वेद ज्ञान था। अत्यन्त बुद्धिमान् मुनि भरद्वाज ने उस अनन्त त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद को शीघ्र ही यथावत् समझ लिया।

चरकसंहिता के इसी प्रकरण में आगे लिखा है कि सब ऋषियों ने प्रजा की कल्याण-कामना से दीर्घायु होने के लिए यह आयु-वर्धक वेद भरद्वाज से ग्रहण किया। इस प्रकार गुरु इन्द्र से परमर्षि भरद्वाज द्वारा त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेदज्ञान मर्त्यलोक में फैला।

आयुर्वेदावतार काल

द्वितीय द्वापर—हरिवंश, ब्रह्माण्डपुराण तथा वायुपुराण के अनुसार प्रथम द्वापर के अन्त अथवा द्वितीय द्वापर के आरम्भ में काशिराज शौनहोत्र के यहाँ धन्वन्तरि जन्मा। धन्वन्तरि ने भिषक्क्रिया सहित आयर्वेद-ज्ञान

भरद्वाज से प्राप्त किया। यह निश्चय है

(क) हरिवंश पर्व १ अ० २९ में लिखा है। यथा—

द्वितीये द्वापरं प्राप्ते सौनहोत्रिःस काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे धिन्वन्दीर्घतपास्तदा ॥२२॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः ॥२६॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२७॥

अर्थात्—द्वितीय द्वापर का आरम्भ होने पर सौनहोत्रि, काशिराज दीर्घतपा ने पुत्रकामना से तप तपा। तब उसके घर में सब रोगों को नष्ट करने वाला, काशिराज, महाराज, देव धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ। उसने इस लोक में भिषक् क्रिया सहित आयुर्वेद भरद्वाज से प्राप्त किया। पुनः उसका अष्टाङ्ग विभाग करके शिष्यों के लिए उसका प्रतिपादन किया।

(ख) हरिवंश के उत्तर-कालिक ब्रह्माण्डपुराण ३।६७ में निम्नलिखित पाठ है।

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहौत्रः स काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥२०॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥२३॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह सभिषक्क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२४॥

(ग) ब्रह्माण्ड के समकालिक वायुपुराण अ० ९२ का एतद्विषयक पाठ निम्नलिखित है—

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रः प्रकाशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥१८॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥२१॥
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२२॥

इन तीनों पाठों की तुलना से निश्चय होता है कि पूर्व लिखित द्वापर के द्वितीय आदि कुछ अवान्तर विभाग हैं।

द्वापर के अट्ठाईस विभाग—वायुपुराण २३।११८-२२६ के पाठ के देखने से

ज्ञात होता है कि किसी द्वापर के २८ विभाग हैं। उनम से से कुछ आवश्यक विभागों का क्रम निम्नलिखित है—

१. द्वितीय	द्वापर	सत्य व्यास
२. तृतीय	,,	भार्गव ,,
३. चतुर्थ	,,	अङ्गिरा ,,
४. पञ्चम	,,	सविता ,,
५. षष्ठ	परिवर्त[1]	मृत्यु ,,
६. सप्तम	,,	शतक्रतु ,,
७. चतुर्दश	पर्याय	सुरक्षण ,,
८. पञ्चदश	परिवर्त	आरुणि ,,
९. षोडश	,,	सञ्जय ,,
१०. एकोनविंश	,,	भरद्वाज ,,
११. चतुर्विंश	,,	ऋक्ष [वाल्मीकि] व्यास
१२. पञ्चविंश	,,	वसिष्ठ-शक्ति ,,
१३. षड्विंश	,,	पराशर ,,
१४. सप्तविंश	,,	जातूकर्ण्य ,,
१५. अष्टाविंश	,,	द्वैपायन ,,

उपरिलिखित पाठों से स्पष्ट है कि द्वापर, पर्याय तथा परिवर्त आदि किसी बड़े युग अथवा किसी द्वापर के अवान्तर भेद हैं। यह गणना २८ पर समाप्त हो जाती है। अतः प्रतीत होता है कि इस द्वापर के २८ भाग बताए हैं परन्तु अङ्गिरा आदि त्रेता के व्यास अर्थात् वैदिक वाङ्मय के सङ्कलनकर्ता थे। उनका किसी द्वापर में होना कोई गम्भीर अर्थ बताता है।

वायुपुराण के निम्नश्लोक भी इस विषय पर प्रकाश डालते हैं—

> अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्।
> वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुरः सरः ॥६३॥
> अष्टाविंशतिमे तद्वद् द्वापरस्यांशसंक्षये।
> नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥६७॥ अध्याय ६८।

अर्थात्—अट्ठाइसवें द्वापर में पराशर से विष्णु का आठवां जन्म वेदव्यास के रूप में हुआ, तथा द्वापर के अंश के अट्ठाइसवें क्षय पर वृष्णिकुल में कृष्ण के रूप में विष्णु का जन्म हुआ।

यह सर्वसम्मत है कि कृष्णजी एक सौ बीस वर्ष जीवित रहे। उनके देहा-

---

१. एक परिवर्त में विश्वामित्र जन्मा। अनुशासनपर्व ६१।१४॥

वसान के दिन से कलि का आरम्भ हुआ। अतः यह निश्चित है कि कृष्णजी के देहावसान के समय द्वापर समाप्त हो गया।

टिप्पण—वि० सं० ६०० से पूर्वकालीन भट्ट कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक के पृ० १६७ पर लिखता है—ज्योतिःशास्त्रेऽपि—

युगपरिवर्तपरिमाणद्वारेण। इत्यादि।

अर्थात्—ज्योतिषशास्त्र में भी युग तथा परिवर्त आदि के परिमाण से।

इस वचन से स्पष्ट है कि ज्योतिषशास्त्र में युग का कोई छोटा विभाग परिवर्त आदि का था। उसका क्रम निम्नलिखित प्रमाणों से ज्ञात होगा—

१. आद्य त्रेतायुग	दक्ष प्रजापति[1]
२. आद्य त्रेतायुगमुख	द्वादश देव[2]
३. आद्य त्रेता	मनु और सप्तर्षि[3]
४. तृतीय त्रेता	तृणबिन्दु[4]
५. दशम त्रेता	दत्तात्रेय[5]
६. पन्द्रहवां त्रेता	मान्धाता[5]
७. उन्नीसवां त्रेता	जामदग्न्य राम[5]
८. चौबीसवां त्रेता	दाशरथि राम[5]

इस सूचि से त्रेता के न्यून से न्यून २४ अवान्तर विभागों का ज्ञान होता है। द्वापर विषयक प्रथम सूचि की संख्या ११ में तथा त्रेता विषयक सूचि संख्या ८ में उल्लिखित ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि तथा दाशरथि राम समकालिक हैं। परन्तु ऋक्ष की गणना द्वापर में परिगणित चौबीसवें परिवर्त में की गई है तथा राम की गणना चौबीसवें त्रेता में है। संख्या दोनों की चौबीस है। एक के आगे परिवर्त तथा दूसरे के आगे त्रेता शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि युग-गणना का यह विशेष प्रकार है। इसकी गहरी खोज की आवश्यकता है।

महामहोपाध्याय शिवदत्त तथा चौबीसवां त्रेता

महामहोपाध्यायजी ने लिखा है कि छः मन्वन्तर व्यतीत होने पर सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवीं चतुर्युगी के त्रेता में दाशरथि राम हुआ। इसी प्रकार २८वीं चतुर्युगी के द्वापर के अन्त में व्यास तथा कृष्ण हुए।

महामहोपाध्यायजी के अर्थ की असङ्गति

---

१. वायु ३०।७४-७६॥६७।४३॥ २. वायु ६७।४३,४४॥

३. वायु ५७.३१॥ ४. वायु ७०।३१॥८६।१५॥

५. वायु ७०।४७, ४८॥६८।८६-६२॥

प्रथम हेतु—यदि शिवदत्तजी का अर्थ ठीक माना जाए तो पूर्वलिखित त्रेता की सूची के अनुसार दत्त आत्रेय दसवीं चतुर्युगी के त्रेता में, मान्धाता पन्द्रहवीं चतुर्युगी के त्रेता में, जामदग्न्य राम उन्नीसवीं चतुर्युगी के त्रेता में तथा दाशरथि राम चौबीसवीं चतुर्युगी के त्रेता में हुए। प्रत्येक चतुर्युगी में एक एक कलियुग भी हुआ। कलियुग का आरम्भ होने पर आर्य-राज्य परम्परा उच्छिन्न हो जाती है। परन्तु इसके विपरीत रामायण आदि इतिहासों के अनुसार मान्धाता से दाशरथि राम तक आर्य-राज्य-परम्परा का उच्छेद कभी नहीं हुआ। अपितु मान्धाता तथा दाशरथि राम एक ही वंश में कुछ अन्तर पर हुए लिखे हैं। अतः पूर्वोक्त गणनाओं में शिवदत्तजी का अर्थ सङ्गत नहीं।

द्वितीय हेतु—सम्पूर्ण आर्य शास्त्र के अनुसार मानव-आयु ४०० वर्ष से अधिक नहीं होती। मान्धाता आदि सब राजा मनुष्य थे। वे न देव थे, न ऋषि। अतः उनकी आयु ४०० वर्ष से अधिक नहीं हो सकती। मान्धाता से राम तक लगभग ४४ पीढ़ियां हैं। प्रत्येक राजा का राज्य यदि अधिक से अधिक १०० वर्ष माना जाए तो उनका राज्यकाल लगभग साढ़े चार सहस्र वर्ष बनता है। परन्तु शिवदत्त जी स्वीकृत एक ही त्रेता का युगमान कई लाख वर्ष का है। अतः महामहोपाध्याय का चतुर्युगी वाला काल-मान इस वंशावलि की अवधि में पूरा नहीं होता।

परिणाम—फलतः इतिहास की कालगणना-प्रदर्शिका पूर्वोक्त दोनों सूचियों की गणना का आधार अन्वेषणीय है। रामायण उत्तरकाण्ड ३८।१५ के अनुसार काशिपति प्रतर्दन और दाशरथि राम वयस्य तथा समकालिक थे।[1] काशिपति प्रतर्दन का तीसरा अथवा चौथा पूर्व पुरुष धन्वन्तरि था। धन्वन्तरि ने भरद्वाज से भिषक्क्रिया सहित आयुर्वेद सीखा। धन्वन्तरि को आयुर्वेद पढ़ाने से पहले भरद्वाज इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद सीख चुका था। अतः आयुर्वेदावतार का काल दाशरथि राम से कुछ पूर्व अर्थात् त्रेता के अन्त में हुआ।

राजगुरु हेमराजजी का मत—धन्वन्तरि का दूसरा अथवा तीसरा उत्तर-पुरुष दिवोदास है। श्री राजगुरुजी ने इस दिवोदास का काल कलि में अथवा कलि के समीप माना है। एतद्विषयक उनकी सब युक्तियां अनुमानों पर आश्रित हैं। राम और प्रतर्दन की मैत्री के विषय में उन्होंने कोई प्रकाश नहीं डाला, अतः उनका मत असिद्ध है।

---

१. भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० ११७।

३०. भरद्वाज

वंश—परमर्षि भरद्वाज आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र था। हरिवंश १।३२ में लिखा है—

> बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन्महामुनिः।
> संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥१४॥

अर्थात्—हे राजन् आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र, महामुनि भरद्वाज मरुद्गणों द्वारा [सम्राट् भरत को] दे दिया गया।

निम्नलिखित वंशवृक्षसे यह वंशक्रम स्पष्ट हो जाएगा। यथा—
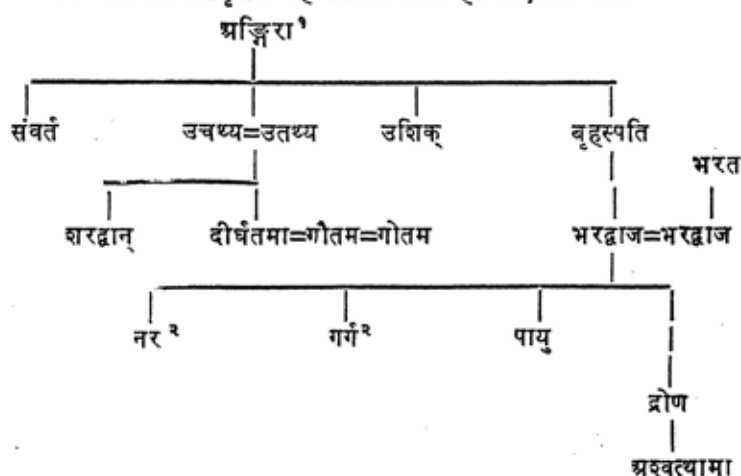
चक्रवर्ती भरत का संक्रामित पुत्र—देवगुरु बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज मरुद्गणों द्वारा चन्द्रवंशी, चक्रवर्ती सम्राट् भरत को पहुँचा दिया गया था। हरिवंश १।३२ में इस घटना का संकेत है—

> अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजाय धीमतः।
> धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै ॥१४॥

अर्थात्—यहाँ भरत के लिए मरुद्गणों द्वारा बुद्धिमान भरद्वाज का धर्म-संक्रमण वर्णित किया जाता है।

---

१. महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १३२ में लिखा है—

> अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्यवारुणाः।
> बृहस्पति-रुचथ्यश्च वयस्यः शान्तिरेव च ॥
> घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः।

२. अधिक देखो पूर्व पृष्ठ १२१ तथा सं० व्या इ० पृ० ६९।

मत्स्यपुराण अध्याय ४६ में भी यह वर्णन मिलता है—

जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थितः ।
तस्मिन्काले तु भरतो बहुभिर्ऋतुभिः विभुः ।
पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञै रयजत्पुत्रलिप्सया ॥२७॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत्प्रभुः ।
ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत ॥२८॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः ।
उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥२९॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति ॥३०॥

अर्थात्—मरुद्गणों ने कृपा से भरद्वाज को ग्रहण कर लिया । उसी समय सम्राट् भरत पुत्रकामना से पुत्र-नैमित्तिक यज्ञ कर रहा था। जब यजमान को पुत्र प्राप्त न हुआ तो उसने पुत्रप्राप्ति के लिए मरुत्सोम यज्ञ किया । उसके मरुत्सोम यज्ञ से मरुद्गण सन्तुष्ट होगए । वे भरद्वाज को भरत का पुत्र बनाने के लिए ले गए । वह अङ्गिरा के पुत्र [बृहस्पति] का पुत्र अथवा बृहस्पति का औरस पुत्र मरुद्गणों द्वारा सम्राट् भरत को पहुंचा दिया गया।

स्पष्ट है कि बार्हस्पत्य भरद्वाज सम्राट् भरत द्वारा गोद लिया गया ।

द्व्यामुष्यायण—भरद्वाज को द्व्यामुष्यायण इस लिए कहते हैं, कि वह दो पिता वाला था । एक बृहस्पति का औरस और दूसरे भरत का गोद-लिया पुत्र । उसकी सन्तान में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों हुए। देखो मत्स्य अ० ४९।३३॥

विदथि भरद्वाज—हरिवंश १।३२ के अनुसार भरद्वाज के पुत्र का नाम वितथि था । यथा

अयोजयद्भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि तम् ।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥१६॥
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् ।
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ॥१७॥
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ।

अर्थात—......भरद्वाज के पुत्र का नाम वितथ था। वितथ के उत्पन्न होने पर भरत की मृत्यु हो गई । तदनु वितथ का अभिषेक करके भरद्वाज वन को गया।

मत्स्यपुराण अध्याय ४९ में वितथ को भरद्वाज का पुत्र नहीं माना गया अपितु वितथ भरद्वाज का विशेषण माना गया है ।

इन सब का उत्तरवर्ती, परम इतिहास-पुराणज्ञ शौनक अपनी बृहद्देवता अध्याय पांच में भरद्वाज को विदथी कहता है—

> योऽङ्गारेभ्यो ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः।
> बृहस्पतेर्भरद्वाजो विदथीति य उच्यते ॥१०२॥
> मरुतस्त्वासीद्गुरुर्यश्च स एवाङ्गिरसो नयात्।
> सपुत्रस्य तु तस्यैतत् मण्डलं षष्ठमुच्यते ॥१०३॥

अर्थात्—अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति था। बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज था। उसे विदथी कहा जाता है।

इस विषय का निश्चय करने के लिए अनेक पुस्तकों के शुद्ध सम्पादन की आवश्यकता है। अभी तक पुराण आदि का सन्तोषजनक सम्पादन नहीं हो सका। परन्तु बृहद्देवता का पाठ अधिक नययुक्त प्रतीत होता है। विदथी का अर्थ निम्नलिखित भी हो सकता है—

वितथं अस्यास्तीति वितथी।

अर्थात्—जिसका पुत्र वितथ है।

वितथ और विदथ समानरूप माने जा सकते हैं। परन्तु यह विषय अभी विचारणीय है।

अनेक भरद्वाज

भारतीय इतिहास में तीन महापुरुषों के साथ भरद्वाज शब्द सम्बद्ध है। वे निम्नलिखित हैं—

१. बार्हस्पत्य भरद्वाज[1]
२. कुमारशिरा भरद्वाज[2]
३. बाष्कलि भरद्वाज[3]

इनमें से बार्हस्पत्य भरद्वाज का थोड़ा सा वर्णन हो चुका है। यह भरद्वाज आयुर्वेद का उपदेष्टा था।

दूसरा है कुमारशिरा भरद्वाज। इसका वास्तविक नाम कुमारशिरा है तथा भरद्वाज पद उसके साथ उपचार से जुड़ा है। यथा—

---

१. कात्यायन अपनी ऋक्सर्वानुक्रमणी में बार्हस्पत्य भरद्वाज को अनेक सूक्तों का द्रष्टा लिखता है।
२. आयुर्वेदीय चरकसंहिता सूत्रस्थान २६।४।
३. देखो पं० भगवद्दत्तकृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम, पृ० ७८।

अर्थात्—जिसका नाम कुमारशिरा है तथा जो भरद्वाज [चैत्ररथ वन में होने वाली ऋषि-सभा में उपस्थित था] ।

स्पष्ट है कि इस भरद्वाज का मूल नाम कुमारशिरा है ।

चरकसंहिता में एक अन्य भरद्वाज—चरकवर्णित ऋषि-सभाओं में भिन्न-भिन्न आयुर्वेदीय विषयों पर वाद-विवाद होता था । ये सभाएँ समय-समय पर विभिन्न स्थानों में हुईं । इन विवादों में अन्तिम निर्णय पुनर्वसु आत्रेय पर आश्रित रहता था । इसी प्रकार के एक वाद-विवाद में भाग लेने वाले किसी भरद्वाज का वर्णन चरकसंहिता सूत्रस्थान, अ० २५ तथा शारीरस्थान अ० ३ में मिलता है । यह भरद्वाज आत्रेय-गुरु बार्हस्पत्य भरद्वाज नहीं है, क्योंकि दोनों प्रकरणों में पुनर्वसु-आत्रेय गुरुरूपेण अन्तिम निर्णय करता है । शारीरस्थान ३।३३ की टीका में चक्रपाणिदत्त भी लिखता है—

यहां पर भरद्वाज शब्द से आत्रेय का गुरु भरद्वाज अभिप्रेत नहीं । यह कोई अन्य भरद्वाज गोत्र का व्यक्ति है । इति ।

यह निश्चय है कि यह भरद्वाज बार्हस्पत्य भरद्वाज के अतिरिक्त कोई अन्य है । प्रश्न होता है, यह भरद्वाज कौन है ।

वह कुमारशिरा है—पूर्व पृ० १२५ पर लिख चुके हैं कि आर्य-इतिहास लेखक समान नामों के पूर्व पार्थक्य-दर्शक कोई विशेषण प्रायः लगा देते थे । चरकसंहिता में वर्णित आत्रेय-शिष्यों के नामों में कुमारशिरा भरद्वाज के अतिरिक्त किसी अन्य भरद्वाज का उल्लेख नहीं मिलता ।

चरकसंहिता अ० ६ तथा शारीरस्थान ६।२० में वर्णित भरद्वाज के साथ कुमारशिरा का प्रयोग हुआ है, परन्तु सूत्रस्थान अ० २५ तथा शारीरस्थान अ० ३ में भरद्वाज शब्द अकेला प्रयुक्त हुआ है । चरकसंहिता के किसी भी प्रकरण में दोनों नाम इकट्ठे प्रयुक्त नहीं हुए । प्रतीत यह होता है कि केवल कुमारशिरा भरद्वाज ही, आत्रेय-शिष्य है । चरकसंहिता में प्रसंग ज्ञात होने के कारण कुमारशिरा नाम सर्वत्र प्रयुक्त नहीं हुआ । कहीं-कहीं उसे केवल औपचारिक नाम भरद्वाज से स्मरण किया गया है ।

बाष्कलि भरद्वाज—तीसरा भरद्वाज है बाष्कलि । यह बष्कल का पुत्र भरद्वाज है ।

पूर्वोक्त भरद्वाजों के अतिरिक्त कोई अन्य भरद्वाज अभी तक हमारी दृष्टि में नहीं पड़ा । इनमें से बार्हस्पत्य भरद्वाज दीर्घजीवितम था । महाभारत, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी तथा रामायण में उसी का वर्णन है ।

पार्जिटर-मत—इङ्गलैण्ड देशोत्पन्न पार्जिटर महोदय ने मुख्य चार भरद्वाज स्वीकार किए हैं। यथा—

१. भरद्वाज प्रथम
२. विदथिन भरद्वाज
३. द्रोणपिता भरद्वाज
४. अन्य भरद्वाज (इस संख्या के अन्तर्गत कई भरद्वाज हैं। एक है बाष्कलि भरद्वाज।)

इनमें से प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भरद्वाज भिन्न नहीं हैं। बार्हस्पत्य ही विदथी तथा द्रोणपिता के नाम से स्मृत है। पार्जिटर ने पाश्चात्य पक्षपात के कारण इस भरद्वाज की दीर्घायु के पक्ष की उपेक्षा की है। अपरञ्च एक भरद्वाज को तीन भरद्वाजों के रूप में प्रकट किया है। शेष बात पहले स्पष्ट की जा चुकी है।

राजगुरु हेमराज जी का मत—श्री राजगुरु हेमराज जी काश्यपसंहिता के उपोद्‌घात पृ० ६२, ६३ पर लिखते हैं—

भरद्वाजाद्धन्वन्तरेरायुर्वेदविद्यालाभस्य, दिवोदासेनापि भरद्वाजस्याश्रयणस्य हरिवंशे उल्लेखेन त्रिपुरुषान्तरिताभ्यां धन्वन्तरिदिवोदासाभ्यां सह सम्बद्धो भरद्वाज एक एव व्यक्तिरुत तद्‌गोत्रीयं व्यक्तिद्वयमिति नावधार्यते।…………।काश्यपसंहितायां रोगाध्याये (पृ० २६) कृष्णभारद्वाजस्य निर्देशश्चास्ति। तेनायुर्वेदविद्यायां नानाभरद्वाजानामाचार्यभावोऽवगम्यते। इति।

अर्थात्—धन्वन्तरि को आयुर्वेदविद्या देने वाला भरद्वाज, तथा हरिवंश के अनुसार धन्वन्तरि से चार पीढ़ी उत्तरवर्ती दिवोदास से सम्बद्ध भरद्वाज एक ही व्यक्ति है अथवा तद्‌गोत्रीय दो व्यक्ति, यह ज्ञात नहीं। काश्यपसंहिता पृ० २६ पर एक कृष्णभारद्वाज का निर्देश है। अतः आयुर्वेदविद्या में नाना भरद्वाज पाए जाते हैं।

आलोचना

१. धन्वन्तरि तथा दिवोदास से सम्बद्ध भरद्वाज प्रसिद्ध दीर्घजीवितम बार्हस्पत्य भरद्वाज है।

२. काश्यपसंहिता रोगाध्याय, पृष्ठ २६ पर निर्दिष्ट कृष्णभारद्वाज को भरद्वाजों की श्रेणी में रखना असङ्गत है। भारद्वाज शब्द का प्रयोग भरद्वाज गोत्र में होने वाले व्यक्ति के लिए हुआ है न कि भरद्वाज के लिए। अतः इसे भरद्वाजों की गणना में नहीं रखना चाहिए।

धन्वन्तरि परिचय के लेखक श्री रघुवीरशरण का मत—श्री रघुवीरशरण जी ने लगभग सात भरद्वाज माने हैं। इनमें से धन्वन्तरि के गुरु भरद्वाज, इन्द्र के शिष्य भरद्वाज तथा पुरुवंशी भरत के पुत्र भरद्वाज भिन्न नहीं।

रघुवीरशरणजी ने एक कृष्ण भरद्वाज भी माना है। परन्तु राजगुरुजी के लेख से स्पष्ट है कि वह कृष्ण भरद्वाज नहीं अपितु कृष्णभारद्वाज है। ऐतिहासिक परम्परा-क्रम जानने के लिए गोत्र-विषयक शब्द-रूपों का ध्यान रखना चाहिए।

भारतीय इतिहास में गोत्रज्ञान की महत्ता—श्री ब्रह्माजी के पश्चात् सप्तर्षि, प्रजापति अथवा पितर-काल आरम्भ हो गया। उस समय से भारतीय इतिहास में गोत्रों का आरम्भ हुआ। भृगु आदि ऋषियों के मूल गोत्र सात हैं। कालान्तर में इन सात मूल ऋषियों की परम्परा में अनेक अवान्तर गोत्र तथा प्रवर चल पड़े। इन सबके ज्ञान से आर्य इतिहास स्पष्टतया समझ में आ सकता है। सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय में गोत्र और अपत्य प्रत्ययान्तों से इतिहास की कड़ियाँ सुरक्षित रखी गई हैं।

वैयाकरण, इतिहास के मार्मिक पण्डित—आपिशलि, शाकटायन तथा पाणिनि आदि वैयाकरणों ने अति सूक्ष्मेक्षिका से उन गोत्रों के अन्तर्गत व्यक्ति-विशेषों के नामों के रूप सुरक्षित कर दिए हैं। अष्टाध्यायी की काशिका-वृत्ति ४।१।११९ में लिखा है—

शौङ्गो भवति भारद्वाजश्चेत् शौङ्गिरन्यः।

अर्थात्—भरद्वाज के गोत्र में होने वाले शुङ्ग की सन्तति में किसी पुरुष का नाम शौङ्ग हो सकता है। अन्य गोत्र में उत्पन्न होने वाले शुङ्ग-पुत्र का नाम शौङ्गि होगा। इस प्रकार विभिन्न गोत्रीय अन्य अनेक नाम-रूपों के लिए व्याकरण ग्रन्थों में पार्थक्य-दर्शक स्पष्ट नियम मिलते हैं। जो बात वाङ्मय वालों ने की, उसका अधिक रक्षण वैयाकरणों ने किया।

गृह्यसूत्रकारों की सावधानी—गृह्यान्तर्गत नामकरण संस्कार के प्रकरण में कल्पसूत्रकारों ने एक सामान्य नियम स्थिर कर दिया कि साधारण लोग तद्धितान्त नाम न रखें। केवल तद्-तद् गोत्र वाले अपने नामों के साथ तद्धित रूप जोड़ सकते हैं। यथा—

न तद्धितान्तम्। कौषीतकि गृह्यसूत्र १।१६।१३ ॥

अर्थात—तद्धित प्रत्ययान्त नाम न रखा जाए।

अस्तु। अब प्रस्तुत विषय पर आते हैं।

सन्तति—भरद्वाज बहुसन्तति वाला था। उसके मन्त्रद्रष्टा पुत्रों तथा रात्रि नाम्नी मन्त्रद्रष्ट्री पुत्री का उल्लेख मिलता है। इनके विशेष वृत्त के लिए देखो

पं० युधिष्ठिरकृत सं० व्या० इ० पृ० ६५। तथा ऋ० स० का वचन—

सुहोत्रादयोऽनुक्तगोत्रा भारद्वाजाः पौत्रा बृहस्पतेः।
दौ.षन्तेर्वा भरतस्य।६।५२॥

काल—त्रेता का कुछ काल व्यतीत होने पर भरद्वाज का जन्म हुआ। तब से भारतयुद्ध से लगभग २०० वर्ष पूर्व तक भरद्वाज जीवित रहा।

भरद्वाज जी के देहावसान विषय पर महाभारत आदिपर्व का सुन्दर प्रमाण श्री पं० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० १४६ पर दिया है—

ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत्।
पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः।
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा॥ अ० १३०।

अर्थात्—यज्ञसेन-द्रुपद के पिता राजा पृषत् के दिवंगत होने के समय अर्थात् भारतयुद्ध से लगभग २०० वर्ष पूर्व भरद्वाज भी परलोक सिधारा।

आयु—बार्हस्पत्य भरद्वाज अमितायु था। चरकसंहिता सू० १।२६ में इसका उल्लेख है। ऐतरेय आरण्यक १।२।२ में भरद्वाज को दीर्घजीवितम लिखा है—

भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनूचानतमो दीर्घजीवितमस्तपस्वितम आस।

अर्थात्—भरद्वाज ऋषियों में अनूचानतम, दीर्घजीवितम, तथा तपस्वितम था।

टिप्पण—ध्यान रखना चाहिए कि भरद्वाज ऋषियों में दीर्घजीवितम था। वह प्रजापतियों, पितरों, देवर्षियों अथवा देवों में दीर्घजीवितम नहीं था।

भरद्वाज इन्द्र का प्रिय मित्र था। इन्द्र ने भरद्वाज को आयुष्य रसायन सेवन कराया। इससे भरद्वाज ने कई पुरुषायुष उपलब्ध की। ऋषियों तथा देवों के दीर्घजीवन विषयक सत्य पर सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले श्री पं० भगवद्दत्त जी ने तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।११।४५ के प्रमाण से लिखा है—

भरद्वाज तीन आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन कर चुका था। वह जीर्ण-शरीर वृद्ध और चलने-फिरने में अशक्त लेटा हुआ था। इन्द्र उसके समीप आकर बोला, हे भरद्वाज यदि तुझे चौथी आयु दे दूँ।

इससे स्पष्ट है कि परम रसायनज्ञ देवराज इन्द्र ने पहले तीन बार भरद्वाज को युवा किया था। वह चौथी बार युवा करने के लिए पूछता है। उसने रसायन बल से भरद्वाज का काया-कल्प कराया। न केवल रसायन-प्रयोग ही कराया अपितु दीर्घायु-प्रद यज्ञ भी कराया। पूर्व पृ०३७ पर लिख चुके हैं कि भरद्वाज ने इन्द्रोपदिष्ट सौत्रामणि यज्ञ करके सर्वायु प्राप्त की।

ताण्ड्य ब्राह्मण १३।११।११ में—भरद्वाज लोम है। वहीं कण्डिका १३ के अनुसार यह लोम दीर्घायु-प्रद साम-मन्त्र से सम्बद्ध है।

निश्चय है कि बार्हस्पत्य भरद्वाज की अति दीर्घ आयु थी। श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने भरद्वाज की आयु लगभग एक सहस्र वर्ष लिखी है[1] परन्तु पूर्व प्रमाणों से लिखा जा चुका है कि चक्रवर्ती सम्राट् भरत के कुछ पूर्व से भारत युद्ध के लगभग २०० वर्ष पूर्व तक भरद्वाज जीवित रहा। यह आयु-परिमाण लगभग ४५०० वर्ष है।

क्या यह असम्भव है—पूर्व-प्रदर्शित तथ्य असत्य नहीं। इस के कारण हैं। उनका उल्लेख पहले हो चुका है। यहां संक्षेप में पुनः स्पष्ट करते हैं।

भरद्वाज—

१. ऋषि था।

२. उसे इन्द्र ने तीन बार आयु-दान किया।

तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण के एतद्विषयक वचनों में अविश्वास करने का कोई हेतु नहीं है।

३. उग्रतपस्या करता था।

४. आयुर्वेद-ज्ञाता था।

आयुर्वेद-ज्ञान का महत्व—आयुर्वेद उस विज्ञान का नाम है जिसके द्वारा आयु की रक्षा के विषय में पूर्ण ज्ञान होता है। चरक संहिता, सू० ३०।२३ में आयुर्वेद शब्द की अति सुन्दर व्युत्पत्ति निरूपित की गई है। यथा—

तत्रायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः.........। यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः।

अर्थात्—जो आयु का ज्ञान कराता है उसे आयुर्वेद कहते हैं।......। और क्योंकि आयु के लिए हितकर तथा आयु को न्यून करने वाले द्रव्य, गुण एवं कर्मों को बताता है, इस कारण भी आयुर्वेद कहाता है।

इसी की सुन्दर व्याख्या काश्यप संहिता, विमान स्थान पृ० ४२ पर भी की गई है—

विद् ज्ञाने धातुः, 'विदॢ' लाभे च, आयुरनेन ज्ञानेन विद्यते ज्ञायते विन्दते लभ्यते न रिष्यतीत्यायुर्वेदः।

अर्थात्—विद् धातु ज्ञानार्थक तथा 'विदॢ' लाभार्थक है। इस ज्ञान से आयु होती है, तथा जानी जाती है अथवा आयु प्राप्त की जाती है, वा (इसके ज्ञान से) आयु का ह्रास नहीं होता, अतः यह आयुर्वेद कहाता है।

---

1. व्या० शा० का इतिहास, पृ० ६८।

सारांश यह कि आयुर्वेद में स्वास्थ्य-स्थिरीकरण के मार्ग, नियमित-जीवन व्यतीत करने की विधि तथा आतुरों की रोगनिवृत्ति के उपाय वर्णित हैं। अतः आयुर्वेद-विशेषज्ञों की आवश्यकता रोगी की चिकित्सा के लिए ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति के वास्तविक स्वास्थ्य-लाभ के लिए भी होती है। अति-प्राचीन काल से आर्य-लोग शरीर-रक्षा विषयक गहन-तत्त्वों से परिचित थे। वे उनका पूर्ण पालन करते थे। अतः दीर्घायु होते थे। इस पर भी ऋषि आदि सामान्य मनुष्यों से आचार और नियमों का पालन कहीं अधिक करते थे। अतएव वे अति दीर्घायु होते थे।

वेद में सहस्रायु होने की प्रार्थना—अथर्ववेद १७।१।२७ में सहस्रायु होने के लिए प्रार्थना की गई है। यथा—

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥

अर्थात्—मैं प्रजापति ब्रह्मा[1] के कवच तथा कश्यप[1] की ज्योति और वर्चस से ढका हुआ, वृद्धावस्था को प्राप्त, पूर्ण शक्तिशाली, श्रेष्ठ कर्म करता हुआ सहस्र वर्ष आयु वाला पृथ्वी पर विचरूं।

टिप्पण—यास्कीय निघण्टु के अनुसार वेद में शत तथा सहस्र का अर्थ बहुत भी होता है। परन्तु यहाँ बहुत अर्थ संगत नहीं। कारण, वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वत्र शतायु का अर्थ सौ वर्ष की आयु वाला लिया जाता है। अतः सहस्रायु का अर्थ बहुत आयु वाला नहीं अपितु सहस्र वर्ष की आयु वाला है।

पं० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ७३, टिप्पण २ में शांखायन आरण्यक २।१७ का प्रमाण दिया है—

तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव।

अर्थात्—इस कारण ऋषि दीर्घतमा दश पुरुषों की आयु अर्थात् एक सहस्र वर्ष जिया।

एक पुरुष की सामान्य आयु सौ वर्ष से न्यून नहीं मानी गई। परन्तु कृत-युग आदि में जब पुरुष-आयु ४०० वर्ष थी, तब सामर्थ्ययुक्त ऋषि ४००० वर्ष तक जीते थे।

वर्तमान ऐतिहासिक, डाक्टर अथवा वैज्ञानिकों को इस विषय का अधिक ज्ञान नहीं, अतः आयु के दैर्घ्य के विषय में उनके मत महत्व नहीं रखते।

---

१. वेद में ये दोनों शब्द सामान्य हैं। व्यक्तिविशेष का नाम नहीं।

प्रश्न—पक्षपाती पाश्चात्य प्रश्न करता है कि यदि पूर्वकाल में आयु इतनी लम्बी हो सकती थी तो वर्तमान काल में क्यों नहीं हो सकती।

उत्तर—हमारा उत्तर है, इस समय पूर्वकाल सदृश ऋषि अथवा देव नहीं हैं। कलियुग में उनका अभाव सा हो जाता है। अतः आयु उतनी दीर्घ दिखाई नहीं देती। फिर भी प्रश्नकर्ता के प्रति हमारा कथन है कि पुरातन काल की सब बातें अब नहीं हो सकतीं।

प्रश्न—पाश्चात्य वैज्ञानिक कहता है। जो पहले हो सका था, वह अब भी हो सकता है।

उत्तर—हमारा उत्तर है—

(क) विकास पक्ष वालों को सृष्टि-उत्पत्ति का जो प्रकार मान्य है, उस प्रकार से पृथ्वी पर अब मनुष्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

(ख) पहले पशु एक शफ थे।[1] अब गो आदि पशु दो शफ वाले हो गए हैं, केवल अश्व आदि एक शफ वाले हैं।

(ग) पहले पशु एक रूप रोहित थे।[2] अब श्वेत, कृष्ण और रोहित हो गए हैं।[2] पहले गौएं एक वर्ण थीं।[3] अब अनेक वर्ण हैं।[3]

(घ) पहले पृथ्वी अलोमिका थी।[4] पुनः पृथ्वी पर ओषधि मात्र थी। अब पृथ्वी पर ओषधि, वनस्पति, पशु, पक्षी तथा मनुष्य आदि हैं।

(ङ) पहले कभी इन सब लोकों से वृष्टि परे चली गई थी।[5]

(च) कभी जल क्षीर-रसा थे। ता० ब्रा० १३।४।७॥

ये सारी पूर्वावस्थाएं अब नहीं हो सकतीं।

अतः निष्कर्ष यह है कि विकासमत वाले उलटे पक्ष में भी हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा कि अनेक बातें अपने समय पर ही होती हैं। पूर्व-युगों की बातें, अब भी हों, यह आवश्यक नहीं। वे बातें अगले सृष्टि-चक्र में अपने समय पर पुनः हो सकेंगी।

कृत और त्रेता युग के पुरातन-ऋषियों के शरीर परम बलवती ओषधियों तथा अनुपम अन्नों से बने थे। फलतः वे लोग दीर्घायु थे।[6] युग के ह्रास के साथ यह बात अब लुप्त है। देवों के शरीर अमृत के कारण अत्यन्त पुष्ट और जरा-रहित हुए।

---

१. जै० ब्रा० २।१४॥ २. जै० ब्रा० १।१६०॥
३. महा० अनुशासन २०६।२६—। ४. ऐ० ब्रा० २४।२३॥
५. ता० ब्रा० १३।५।१३॥ ६. तुलना, च०, चि० १।४।८॥

कलियुग का आयु-परिमाण—कृत, त्रेता तथा द्वापर का मानव आयु-परिमाण क्रमशः ४००, ३०० तथा २०० वर्ष है। कलियुग में मानव आयु-परिमाण सौ वर्ष रह गया है। कलि के आरम्भ में प्रतिसंस्कृत, आयुर्वेदीय चरकसंहिता, शा० ६।२६ में लिखा है—

वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले।

अर्थात्—इस (कलि) काल में (मानव) आयु का प्रमाण सौ वर्ष है।

प्रतियुगीण नियतायु का उल्लङ्घन सम्भव—यद्यपि प्रत्येक युग का सामान्य मानव-आयु-परिमाण निश्चित है, तथापि युग-प्रभाव के अनुसार निश्चित आयु-परिमाण का उल्लङ्घन प्रत्येक युग में हो सकता है। चरकसंहिता, सू० १।३ की टीका में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

यदा त्वनियतायुषो रसायनमाचरन्ति तदा तत्प्रभावाद्युगप्रभाव-नियतायुर्लङ्घनं भवति।

अर्थात्—जब अनियतायु लोग रसायन-सेवन करते हैं तब उस रसायन के प्रभाव से (तत् तत्) युग के प्रभाव वाले निश्चित आयु (परिमाण) का उल्लङ्घन हो जाता है।

तिब्बत में अनेक लामाओं की आयु आज भी डेढ़ सौ वर्ष की होती है। अन्ततः निश्चय है कि इस युग में भी सौ वर्ष से अधिक आयु हो सकती है। तथा ऐसे लोग कहीं-कहीं देख भी जाते हैं।

शास्त्री उदयवीरजी की सूझ

दीर्घायु-विषयक तथ्य का पूर्ण-ज्ञान न होने से अनेक पाश्चात्य तथा एत-द्देशीय लेखक समूचे आर्य-इतिहास को विस्मृति का क्रीड़ास्थल पुकार उठते हैं। अभी-अभी योग्य संस्कृतज्ञ श्री पं० उदयवीरजी शास्त्री ने 'सांख्यदर्शन का इतिहास' में लिखा है—

१. यद्यपि अभी तक दशरथ और महाभारत युद्धकाल के अन्तर का पूर्ण निश्चय नहीं, पर इतना निश्चय अवश्य है, कि वह अन्तर काल इतना अधिक था, कि उतने समय तक कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। पृ० ४८७।

२. ब्रह्मा को आदिसर्ग अथवा सत्ययुग के आरम्भ में मानकर यह स्वीकार किया जाना कि महाभारत-कालिक व्यास उसकी चौथी पीढ़ी में था, इतना सत्य नहीं कहा जा सकता। पृ० ४८८।

३. परन्तु यह वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था, अथवा दशरथ-कालिक वसिष्ठ था, इतना असत्य किसी पुराण के मुँह में ही समा सकता है। पृ० ४८८।

४. इतिहास के संशोधन में हम उसी समय पथभ्रष्ट हो जाते हैं, जब पुराने साहित्य में लिखे कुछ नामों को सिलसिलेवार जोड़ने का यत्न करते हैं। इतिहास जितना अधिक पुराना होता जाता है, उतना ही अधिक संक्षिप्त, तथा और अधिक पुराना होने पर वह हमारी विस्मृति का ही क्रीड़ास्थल रह जाता है। ऐसी दशा में हम अपने समीप के इतिहास के समान उसको अव्यवहित क्रमानुसार कैसे जोड़ सकते हैं? पृ० ४८९।

पं० जी के ये वाक्य भारतीय इतिहास के साथ भारी अन्याय हैं। इन वाक्यों में पं० जी ने जो सात प्रधान प्रतिज्ञाएं की हैं। उनको क्रमपूर्वक लिखा जाता है—

(क) दशरथ और भारतयुद्ध काल का अन्तर अनिश्चित है।

(ख) इस अन्तर के परिमाण की आयु कोई भोग नहीं सकता।

(ग) इतनी लम्बी आयु का मानना पुराण की गप्प है।

(घ) ब्रह्मा की वंश-परम्परा में चौथी पीढ़ी में कृष्ण द्वैपायन व्यास नहीं हो सकता।

(ङ) नामों से इतिहास का सिलसिलेवार जोड़ना पथ-भ्रष्ट होना है।

(च) अधिक पुराना इतिहास विस्मृति का क्रीड़ास्थल होता है।

(छ) पुराना इतिहास अपने समीप के इतिहास के समान अव्यवहित क्रमानुसार नहीं जुड़ सकता।

इन सब वाक्यों से स्पष्ट है कि शास्त्री जी ऋषियों तथा देवों की, रामायण, ब्राह्मणग्रन्थ आदि में वर्णित दीर्घायु में विश्वास नहीं रखते। इन हेतु-रहित प्रतिज्ञाओं का क्रमिक उत्तर निम्नलिखित है—

(क) यह निश्चय है कि दशरथ त्रेता के अन्त में था, तथा भारत-युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ। प्रश्न इतना है कि ये त्रेता आदि युग ज्योतिष-स्वीकृत त्रेता आदि हैं अथवा अन्य।

काल-गणना—हमने इन त्रेता आदि का जो काल पू० पृ० २१ पर स्वीकार किया है, उसमें किसी को थोड़ी-बहुत आपत्ति हो सकती है, परन्तु अनेक ऋषि पर्याप्त दीर्घकाल तक जीवित रहे, यह सन्देह से परे है।

(ख) पूर्व पृष्ठों में अनेक ऐसे ऋषियों का वर्णन कर चुके हैं जिन्होंने अतिदीर्घ आयु का उपभोग किया। प्रमाणार्थ उन स्थलों को देखें।

(ग) इतनी लम्बी आयु का वर्णन पुराणों की कथाओं में ही नहीं, अपितु वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, रामायण, तथा महाभारत आदि में भी है। इनके प्रमाण पूर्व पृष्ठों में लिखते आ रहे हैं, तथा आगे भी लिखते जाएंगे।

(घ) कृष्ण द्वैपायन व्यास ब्रह्मा की वंश-परम्परा में ही हुए हैं। गोत्र-प्रदर्शक श्रौतसूत्रादि सम्पूर्ण ग्रन्थों में यह वंशक्रम सत्य स्वीकार किया गया है। यह क्रम निम्नलिखित है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ (मानसपुत्र, प्रथम-जन्म)
|
वसिष्ठ (मैत्रावरुणी, द्वितीय-जन्म)
|
शक्ति
|
पराशर
|
कृष्ण द्वैपायन व्यास
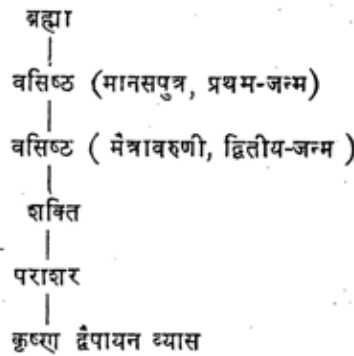
यदि किसी को यह वंश-परम्परा मान्य नहीं तो उसे वसिष्ठ-पुत्र शक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति बताना पड़ेगा। इस विषय में अनुमान-मात्र से काम नहीं चल सकता। पूर्व लिख चुके हैं कि सत्य-वक्ता आर्य ऋषि इतिहास की रक्षा में तत्पर समान-नामों का पार्थक्य प्रदर्शित करने के लिए उन नामों के साथ किसी विशेषण का प्रयोग प्रायः करते थे। शक्ति के नाम के साथ पार्थक्य-प्रदर्शक ऐसा कोई विशेषण प्राचीन वाङ्मय में प्रयुक्त नहीं हुआ। अतः शक्ति एक था।[1]

यही वंश-परम्परा वैदिक ऋषियों को मान्य हैं। ऋक्सर्वानुक्रमणी का कर्ता इसी परम्परा को सत्य मानता है। मानव-आयु-परिमाण ४०० वर्ष मानने वाले श्री स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी ने भी इस वंश-परम्परा को माना है।[2]

(ङ) अब पं० जी की अगली धारणा को लेते हैं। भारतीय इतिहास के पारंगत लेखक साहित्य में लिखे गए नामों को सिलसिलेवार नहीं जोड़ते। प्रत्युत इतिहास में लिखे नामों को पुनः विद्वानों के सामने लाते हैं। इतिहास में लिखे नाम पहले ही सिलसिलेवार जुड़े हैं। अतः उनका क्रम जोड़ा नहीं जाता। इतिहास पहले से ही शुद्ध, सत्य और जुड़ा हुआ है। इतिहास पुस्तकों में लेखक-प्रमाद से कहीं-कहीं जो भूल हो गई है, ऐतिहासिक उसे दूर करते हैं।

(च) आर्य लोग आरम्भ से अपने इतिहास को पूर्ण सुरक्षित रखते आए

---

१. इक्ष्वाकु की ४२वीं पीढ़ी मे सुदास तथा ६३वीं में दाशरथि राम था। ऋक् स० ६।४२ के अनुसार राम से पूर्व सौदासों द्वारा शक्ति की मृत्यु हुई।

२. सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास ।

हैं। विद्याध्ययन में इतिहास-पुराण को विशेष स्थान दिया जाता था। इतिहास का श्रवण और लेखन परम्परा से अविच्छिन्न चला आता है।

विशेष-विशेष ऋषियों के साथ इतिहास-पुराणज्ञ विशेषण पाया जाता है। पूर्व पृ० ११२ पर लिख चुके हैं कि नारद सनत्कुमार को कहता है कि मैं इतिहास पुराण जानता हूँ। इसी विशेषता के कारण हमारे यहाँ विद्या-वंशावलियाँ तथा कुल-वंशावलियाँ पृथक्-पृथक् बनती रही हैं। जिस जाति ने अपने इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए इतना सूक्ष्म वर्गीकरण किया था, उस जाति के परम पुनीत वंशधरों के सम्बद्ध इतिहास को विस्मृति का क्रीडास्थल कहना चिररक्षित ऐतिहासिक परम्परा पर हड़ताल फेरना है। आर्य जाति के पुरातन इतिहास के सुरक्षित रहने के कारण ही आज भी सारे संसार को आर्यों के गौरव के सामने झुकना पड़ता है। यदि शास्त्री जी के अनुसार मान लें कि इतिहास भूलता जाता है तो यह इतिहास न रहेगा, खिलवाड बन जाएगा। हमारी इस पुस्तक में ब्रह्मा से लेकर चरक आदि पर्यन्त के सम्बद्ध आयुर्वेदीय ऐतिहासिक नामों को जनता के समक्ष पुनः रखने का यत्न किया गया है।

(छ) पुरातन इतिहास-क्रम ऋषियों द्वारा लेख-बद्ध किया गया था। अतः वह अव्यवहित क्रमानुसार जुड़ा हुआ है। आर्य वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों के नष्ट हो जाने पर भी इतिहास-ग्रन्थों में वह पूर्ण सम्बद्ध है। वास्तव में भारत का नवीन इतिहास जुड़ा हुआ नहीं है। अतः उसे जोड़ने की आवश्यकता पड़ती है। प्राचीन इतिहास के जोड़ने की नहीं। फलतः ऋषियों के उस इतिहास को समझ न सकना मानव-बुद्धि का फेर है।

पं० उदयवीरजी ने दीर्घायु को न मानने के लिए कोई युक्ति उपस्थित नहीं की। केवल दीर्घायु को न मानने की मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

पार्जिटर—पू० पृ० ११ पर पार्जिटर महोदय का वाक्य लिख चुके हैं। उसमें भी लेखक की दीर्घायु न मानने की मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शन है। युक्ति वहाँ भी नहीं दी गई।

कीथ—श्री पं० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० १४० पर टिप्पणी संख्या १ में कीथ का एक वाक्य उद्धृत किया है। उसका भावार्थ निम्नलिखित है—

आर्य लोग वारम्वार दीर्घायु होने के लिए प्रार्थना करते हैं। वेद-मन्त्रों में इस पर बहुत बल दिया जाता है। अतः प्रतीत होता है कि उनकी आयु अति न्यून होती थी।

टिप्पणी—दीर्घायु के लिए वारम्वार की गई प्रार्थना का अभिप्राय इतना

मात्र है कि आर्य लोग आयु की दीर्घता के महत्व को समझें। अतः ईश्वर द्वारा वेदमन्त्रों में उपदेश है कि प्रत्येक मनुष्य की आयु अवश्यमेव दीर्घ हो, तथा वह तदर्थ भारी परिश्रम करे।

सातवलेकर—श्री पं० पाद दामोदर सातवलेकरजी भी दीर्घ आयु के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखते। वे आयु का अधिकाधिक परिमाण २०० वर्ष का मानते हैं।[1] उन्होंने भी इतिहास के इस क्षेत्र में सम्पूर्ण आर्य वाङ्मय को परे फेंका है। पूर्व-प्रमाणों से हम सिद्ध कर चुके हैं कि आर्य वाङ्मय दीर्घायु-विषयक हमारे पक्ष के प्रमाणों से ओतप्रोत है, अतः वर्तमान मिथ्या-तर्क के कारण उन सब ग्रन्थों की अवहेलना नहीं की जा सकती।

गुरु

१. **इन्द्र**—भरद्वाज ने इन्द्र से अथाह ज्ञान प्राप्त किया—

(क) **आयुर्वेद**—पूर्व प्रमाणों से लिख चुके है कि भरद्वाज ने इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद सीखा।

(ख) **व्याकरण**—ऋक्तन्त्र के अनुसार भरद्वाज ने इन्द्र से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया।[2]

(ग) **यज्ञ-ज्ञान**—इनके अतिरिक्त भरद्वाज ने दीर्घायु-विषयक यज्ञ-ज्ञान भी इन्द्र से प्राप्त किया।

(घ) **वेद की अनन्तता का उपदेश**—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।११ के अनुसार भरद्वाज की तृतीय पुरुषायुष की समाप्ति पर इन्द्र ने उसको वेद की अनन्तता का उपदेश किया।

२. **तृणञ्जय**—वायुपुराण १०३।६३ के अनुसार तृणञ्जय ने भरद्वाज के लिए पुराण का प्रवचन किया।

शिष्य

१. **आयुर्वेद**—भरद्वाज ने आयुर्वेद ज्ञान कई शिष्यों को दिया—

(क) **अनेक ऋषि**—चरक संहिता सू० अध्याय प्रथम में वर्णित, हिमवत्पार्श्व पर होने वाले सम्मेलन में एकत्रित अनेक ऋषियों ने भरद्वाज से आयुर्वेद सीखा।

(ख) **आत्रेय पुनर्वसु**—चरकसंहिता सू० १।३० के अनुसार भरद्वाज से

---

१. देखो, मानव आयुष्य की वैदिक मर्यादा।

२. इसके प्रमाण पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास पृ० ६६ पर देखो।

आयुर्वेद सीखने वाले शिष्यों में आत्रेय पुनर्वसु प्रमुख था।

(ग) धन्वन्तरि द्वितीय—पूर्व-प्रमाणों से लिख चुके हैं कि धन्वन्तरि द्वितीय ने अपने पिता के पुरोहित, इसी भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान उपलब्ध किया था।

२. व्याकरण—ऋक्तन्त्र १।४ के अनुसार भरद्वाज ने अनेक ऋषियों को व्याकरण पढ़ाया था।

३. वायुपुराण—१०३।६३ में लिखा है कि भरद्वाज ने गौतम को पुराण पढ़ाया।

स्थान—वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५४ में लिखा है कि दशरथ के काल में भरद्वाज का आश्रम प्रयाग के निकट गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर था।

विशेष घटना

१. उन्नीसवें परिवर्त का व्यास—पूर्व पृ० १३८ पर कुछ व्यासों की एक सूचि प्रस्तुत की गई है। भारतीय इतिहास को समझने के लिए समय-समय पर होने वाले इन व्यासों का परिचय अत्यन्त आवश्यक है। ये व्यास चरणों, वेद की शाखाओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों और कल्पसूत्र आदिकों का प्रवचन तथा संकलन तथा अन्य अनेक तन्त्रों और शास्त्रों का प्रवचन भी करते थे। एक ओर ये वैदिक ग्रन्थों के प्रवचन-कर्ता थे, तो दूसरी ओर लोकभाषा में लिखे गए धर्मशास्त्रों, आयुर्वेद ग्रन्थों, ज्योतिष ग्रन्थों तथा इतिहास पुराणों के भी कर्ता थे। इसी कारण वात्स्यायन मुनि न्यायदर्शन २। २। ६७ के भाष्य में लिखते हैं कि वैदिक ग्रन्थों के प्रवचन कर्ताओं और इतिहास-पुराण के कर्ताओं का अभेद है।[1]

२. तरखान से गो-ग्रहण—मनुस्मृति १०।१०७ में लिखा है कि एक वार भरद्वाज पुत्रों-सहित क्षुधा-पीड़ित हो निर्जन बन में घूम रहा था। ऐसी अवस्था में उसे बृव नामक तरखान से अनेक गौएं लेनी पड़ीं—

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह बृबोस्तक्ष्णो महातपाः॥

३. भृगु-भरद्वाज संवाद—महाभारत, शा० अ० १७५-१८५ तक भृगु तथा भरद्वाज का अति सुन्दर विज्ञानपूर्ण संवाद वर्णित है।

---

१. देखो, पं० भगवद्दत्त कृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७२-७६।

ब्रह्मा की समता को प्राप्त—बौधायन धर्मसूत्र ४।६।६ में लिखा है—

मन्त्रमार्गप्रमाणं तु विधाने समुदीरितम् ।
भरद्वाजादयो येन ब्रह्मणस्समतां गताः ॥

स्पष्ट है कि भरद्वाज आदि ऋषि वेद-मन्त्रों के मार्ग से ब्रह्मा की समता को प्राप्त हुए।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—भावप्रकाश १।५५ में लिखा है कि भरद्वाज ने इन्द्र से उपलब्ध ज्ञान तन्त्ररूप में उपबद्ध किया—

(क) तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ।
गुणान्द्रव्याणि कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥

अष्टाङ्गसङ्ग्रह उत्तरस्थान, अ० ३६ पृ० २७० पर किसी टीका से भरद्वाज का मत उद्धृत है—

पृथग्दोषसंसर्गसन्निपातरक्तविषद्रुमप्रसवाघ्राणजत्वभेदेनास्या नवविधत्वमाख्यातवान् भरद्वाजः ।

चरकसंहिता, सिद्धिस्थान १।३२५ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त भरद्वाज का एक वचन उद्धृत करता है—

यदुक्तं भरद्वाजेन—

अप्रदुष्टेन भावेन प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
शिष्येण सम्यक् पृष्टस्य गुरोर्बुद्धिः प्रकाशते ॥ इति ॥

इन वचनों से स्पष्ट है कि ये वचन भरद्वाज के किसी आयुर्वेदीय ग्रन्थ से उद्धृत हैं। भरद्वाज की इस आयुर्वेदीय रचना का नाम अभी ज्ञात नहीं हो सका।

(ख) भेषजकल्प—भरद्वाज का यह ग्रन्थ मद्रास पुस्तक-भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि संख्या १३१७६, १३१८० तथा १३१८१ के अन्तर्गत है।

(ग) भारद्वाजीय प्रकरण—मद्रास पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि संख्या १३१७८ के अन्तर्गत भारद्वाजीय प्रकरण का उल्लेख है।

२. धनुर्वेद—महाभारत शान्तिपर्व २१०।२१ के अनुसार भरद्वाज ने धनुर्वेद का प्रवचन किया।

शान्तिपर्व १६४।८१ में लिखा है कि भरद्वाज ने रुशदश्व से असि-शास्त्र प्राप्त किया।

३. राजशास्त्र—भरद्वाज को राजशास्त्र-प्रणेता कहा गया है।

महाभारत शा० ५८।२, ३ में इसका उल्लेख है—

विशालाक्षश्च भगवान्काव्यश्चैव महातपाः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः ।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थात्—विशालाक्ष [शिव], महातपस्वी काव्य [उशना], सहस्राक्ष महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भगवान् भरद्वाज तथा मुनि गौरशिरा राजशास्त्र के प्रणेता हैं। ये सब वेद के जानने वाले तथा वेद के प्रवचनकर्ता हैं।

टिप्पण—महाभारत पूना संस्करण के मूल पाठ में भरद्वाज पाठ है परन्तु पाठान्तरों में भारद्वाज है। अभिमन्यु-पौत्र जनमेजयकृत नीतिप्रकाशिका में भी भारद्वाज पाठ है—

बृहस्पतिश्च शुक्रश्च भारद्वाजो महातपाः।
वेदव्यासश्च भगवान् तथा गौरशिरा मुनिः।
एते हि राजशास्त्राणां प्रणेतारः परन्तपाः ॥

विष्णुगुप्तकृत अर्थशास्त्र में भारद्वाज के अर्थशास्त्र विषयक मत बहुधा उद्धृत हैं, अतः निश्चय से नहीं कह सकते कि भरद्वाज राजशास्त्र का प्रणेता था अथवा भारद्वाज द्रोण।

४. यन्त्र सर्वस्व—भरद्वाज के कला-कौशल विषयक बृहद् ग्रन्थ का नाम यन्त्रसर्वस्व' था। इसका कुछ भाग बड़ोदा के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसका विमान विषय से सम्बद्ध, स्वल्पतम उपलब्ध भाग श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष (वर्तमान स्वामी ब्रह्ममुनि जी) ने विमानशास्त्र के नाम से प्रकाशित किया है।

५. पुराण—पूर्व लिख चुके हैं कि भरद्वाज पुराण-प्रवक्ता था।

६. शिक्षा—भण्डारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट पूना से एक भरद्वाज शिक्षा प्रकाशित हुई है। उसके अन्तिम श्लोक तथा टीकाकार नागेश्वर भट्ट के मतानुसार यह शिक्षा भरद्वाज-प्रणीत है।[1]

७. उपलेख सूत्र—बड़ोदा के राजकीय पुस्तक भण्डार में उपलेख सूत्र

---

१. देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इ० पृ० ६६।

सभाष्य विद्यमान है।[1] तदनुसार मूल सूत्र भरद्वाज-रचित है।

८. **मन्त्रद्रष्टा**—ऋग्वेद के छटे मण्डल के अधिकांश सूक्तों के द्रष्टा भरद्वाज तथा उसके पुत्र हैं।

आक्सफोर्ड अध्यापक मोनिअर विलियम्स की घबराहट—ईसाई महोपाध्याय मो० वि० पाश्चात्य मिथ्या भाषा-मत के भय के कारण लिखता है—

भरद्वाज The supposed author of RV. vi, I–30...

अर्थात्—भरद्वाज ऋग्वेद मण्डल छः के सूक्तों का अनुमानित कर्ता है। इति।

अध्यापक को क्या ज्ञान नहीं था कि ऋषि मन्त्रद्रष्टा थे, मन्त्रकर्ता नहीं। पुनः उन्हें कर्ता लिखना महापक्षपात है। तथा भरद्वाज अनुमानित-द्रष्टा नहीं था। वह तो सत्य इतिहास के अनुसार वास्तविक द्रष्टा था। इन पाश्चात्य लेखकों ने ऐसी अगणित भूलें की हैं।

पूर्व लिख चुके हैं कि भरद्वाज उन्नीसवें परिवर्त का व्यास था। अतः उसने अनेक ग्रन्थ रचे होंगे। उनका ज्ञान हमें अभी नहीं हो सका।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने 'बृहत् फलघृत' तथा 'फलघृत' नामक भरद्वाज के दो योग उद्धृत किए हैं।

इति कविराज सूरमचन्दकृते आयुर्वेदेतिहासेऽष्टमोऽध्यायः।

---

१. देखो, सन् १९४२ में मुद्रित सूचिपत्र भाग प्रथम, पृ० ३८, प्रवेश-संख्या २५२।

नवम अध्याय

३१. धन्वन्तरि द्वितीय

वंश—देवयुग में अमृत-मन्थन के समय अमृत निकाल कर लाने वाले धन्वन्तरि का वर्णन हो चुका। सुश्रुतसंहिता, तथा पुराण आदि के पाठों से यह स्पष्ट है कि उसी धन्वन्तरि ने मनुष्यलोक में पुन: जन्म लिया।

चन्द्रवंशी धन्वन्तरि—पुराणों की वंशावलियों के अनुसार धन्वन्तरि द्वितीय का जन्म काशी के चन्द्रवंशी राजकुल में हुआ। हरिवंश तथा पुराणों के अनुसार उस कुल का वंशवृक्ष निम्नलिखित है—

इन वंशावलियों में स्वल्प भेद है। कहीं दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि माना

१. हरिवंश १।३२।१८-२२,२८ ॥

२. हरिवंश १।२९।९-१० ॥

३. ब्रह्माण्ड पुराण ३।६६।३—॥ ४. वायु ९२। १८—॥

गया है और कहीं दीर्घतपा का पुत्र धन्व तथा धन्व का पुत्र धन्वन्तरि। भागवत तथा गरुड पुराण में दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि आयुर्वेद-प्रवर्तक माना गया है। अतः यह भेद विचारणीय है।

महाभारत उद्योगपर्व अ० ११७ का निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य है—

महाबलो महावीर्यः काशीनामीश्वरः प्रभुः।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिः नराधिपः॥

इस श्लोक के अनुसार वायुपुराण के पाठ में भीमरथ और दिवोदास को एक मानना सत्य नहीं दीखता। वायु में दिवोदास नाम छूट गया है। काठकसंहिता ७।१।८ में भी भीमसेन का पुत्र दिवोदास लिखा है।

ऋक् सर्वानुक्रमणी के अनुसार प्रतर्दन ऋषि था। उसका पिता दिवोदास था। यथा—प्रतर्दनो दैवोदासिः। ९।९६॥

आयुर्वेद-प्रवर्तक—इतना निश्चय है कि यह धन्वन्तरि आयुर्वेद-प्रवर्तक था। इसने प्रसिद्ध बार्हस्पत्य भरद्वाज से भिषक्-क्रिया सहित आयुर्वेद प्राप्त किया। तदनु उसका अष्टाङ्ग विभाग करके उसे शिष्यों को दिया।

सुश्रुत सं० का धन्वन्तरि—विश्वामित्र-पुत्र सुश्रुत का गुरु धन्वन्तरि था। परन्तु उसका मूलनाम दिवोदास था। धन्वन्तरि उसका औपचारिक नाम था। वह काशिराज था। उसका एक विशषण अमरवर भी है। सुश्रुतसंहिता, सू० १।३ में लिखा है—

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षित-सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः।

अर्थात्—भगवान्, अमरश्रेष्ठ, ऋषिगणों से घिरे आश्रम में बैठे हुए, काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि को औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, सुश्रुत आदि बोले।

स्पष्ट है कि काशिनरेश दिवोदास धन्वन्तरि उस समय आश्रमस्थ=वानप्रस्थ हो चुका था।

भावप्रकाश १।७८ से पूर्ण निश्चय हो जाता है कि सुश्रुत-गुरु दिवोदास उपचार रूप से धन्वन्तरि कहाता था। यथा—

तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः।
स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदां वरः।

अर्थात्—वहां [काशि में] दिवोदास नाम वाला, क्षत्रियवंशोत्पन्न काशिराज है। वह साक्षात् धन्वन्तरि है, तथा आयुर्वेद जानने वालों में श्रेष्ठ है।

धन्वन्तरि तथा दिवोदास—उपरिलिखित सम्पूर्ण प्रकरण पढ़ने से स्पष्ट है कि द्वितीय धन्वन्तरि को सुश्रुत का गुरु मानना कुछ आपत्तिजनक है, क्योंकि उसका दिवोदास नाम अभी तक कहीं दिखाई नहीं दिया। अब प्रश्न यह है कि यहाँ किस काशिराज दिवोदास ने धन्वन्तरि नाम ग्रहण किया। पूर्व पृष्ठ १६० पर लिखी वंशावली में धन्वन्तरि की चतुर्थ पीढ़ी में दिवोदास नाम दिखाई देता है। गृह्यसूत्रोंके अनुसार किसी व्यक्ति का प्रपौत्र अपने प्रपितामह का नाम रख सकता है। अतः सम्भव है कि धन्वन्तरि-प्रपौत्र दिवोदास का नाम भी धन्वन्तरि हो गया हो। अथवा प्रकाशिराट्-पुत्र अथवा प्रपौत्र धन्वन्तरि भी दिवोदास कहाता हो। वाग्भट के पितामह का नाम भी वाग्भट था।

राजगुरु हेमराज जी का मत—राजगुरु जी काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ५८ पर लिखते हैं—

धन्वन्तरेः सन्निकृष्टसन्ततित्वेन, तदीयसम्प्रदायप्रकाशकत्वेन धन्वन्तरिस्थानापन्नतया धन्वन्तरेरवताररूपत्वेन सम्मान्य सुश्रुतसंहितायां धन्वन्तरिं दिवोदासं सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः।

अर्थात्—धन्वन्तरि के कुल में होने से, तथा उसके सम्प्रदाय का प्रकाशक होने से, धन्वन्तरि का स्थानापन्न व्यक्ति धन्वन्तरि का अवतार-रूप समझा गया। अतएव सुश्रुत संहिता में लिखा है कि—धन्वन्तरि दिवोदास को सुश्रुत आदि बोले।

इस वचन का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि धन्वन्तरि प्रपौत्र तथा धन्वन्तरि सम्प्रदाय का होने से दिवोदास ही धन्वन्तरि कहाया।

पूर्वोक्त धन्वन्तरि-द्वय को पृथक् मानने में आपत्ति

(क) हरिवंश तथा पुराणों के वचनों से यह स्पष्ट है कि सौनहोत्रि दीर्घतपा नें उग्र तपस्या की। फलतः मथित-समुद्र में से अमृत निकालने वाले धन्वन्तरि का दूसरा जन्म उसके यहाँ हुआ।

(ख) सुश्रुत-संहिता १।२१ में सुश्रुत-गुरु दिवोदास धन्वन्तरि को ही देव-चिकित्सक तथा आदि-काल वाला देव धन्वन्तरि कहा गया है। यथा—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥

इससे स्पष्ट है कि सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि का प्रथम जन्म देवलोक में हुआ था, तथा दूसरा पृथ्वी पर हुआ।

इससे आगे सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्र ३९।३ में लिखा है—

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि।

अर्थात्—(सुश्रुत आदि ने ऐसे गुरु से प्रश्न पूछा) जिसने पूर्वजन्म म [मथित] जल में से अमृत निकाला था।

फलतः इस विषय में अभी कुछ निश्चय नहीं हो सकता कि धन्वन्तरि द्वितीय तथा सुश्रुत-गुरु दिवोदास अथवा धन्वन्तरि तृतीय ? भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, अथवा नहीं।

काल—धन्वन्तरि द्वितीय का काल-निर्णय करना कठिन नहीं। दाशरथि राम त्रेता-द्वापर की सन्धि में हुए। काशिपति प्रतर्दन उनका मित्र था। त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल ३०० वर्ष का था। अतः प्रतर्दन से लगभग चार पीढ़ी पूर्व अर्थात् त्रेता के अन्त में अथवा विक्रम से लगभग ५७४४ वर्ष पूर्व धन्वन्तरि द्वितीय का काल था। रामाभिषेक में प्रत० उपस्थित था (रा०उ० ३८।१५।)

स्थान—काशी अर्थात् वर्तमान वाराणसी—बनारस, काशि—नृपों की राजधानी थी। काशिराज होने के कारण धन्वन्तरि-द्वितीय का निवास काशी में ही था। वानप्रस्थ होने पर काशिराज धन्वन्तरि का आश्रम काशी के समीप होना सम्भव है। यह आश्रम ऋषि-गण-परिवृत रहता था। वहां अनेक शिष्य धन्वन्तरि से विद्याध्ययन करते थे।

विशेषण

हरिवंश १।२९ में धन्वन्तरि को **विद्वान्** कहा है। प्राचीन वाङ्मय में मन्त्रद्रष्टा तथा शास्त्र-रचयिता को विद्वान् कहा जाता है।[1] पूर्व पृ० १३७ पर लिख चुके हैं कि धन्वन्तरि **सर्वरोगप्रणाशन** अर्थात् सब रोगों को नष्ट करने वाला था। भागवत पुराण में धन्वन्तरि को **आयुर्वेद-प्रवर्तक** कहा है। पूर्व पृ० १६१ पर उद्धृत सुश्रुत सं० के वचन में **काशिराज, दिवोदास** तथा **धन्वन्तरि** पद एक ही व्यक्तिके लिए प्रयुक्त हुए हैं। सुश्रुत संहिता चि० २।३ में धन्वन्तरि को **धर्मभृतां वरिष्ठ** अर्थात् परम धर्माचरणयुक्त तथा **वाग्विशारद** पदों से विशेषित किया है। सुश्रुत सं० नि० १।३ में धन्वन्तरि को **राजर्षि** पद से स्मरण किया है। सुश्रुत सं० क० ४।३ से ज्ञात होता है कि धन्वन्तरि **महाप्राज्ञ** तथा **सर्वशास्त्रविशारद** था। सुश्रुत सं०, उ० १८।३ में धन्वन्तरि को **तपोदृष्टि, उदारधी** तथा **मुनि** कहा है। सुश्रुत सं० उ० ६६।३ में दिवोदास धन्वन्तरि के ज्ञान-समुद्र का अति सुन्दर वर्णन है—

अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम्।
छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम्॥

---

1. देखो भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सं० पृ० ४८।

अर्थात्—अष्टाङ्ग आयुर्वेद के विद्वान्, महा ओजस्वी, शास्त्रों के अर्थ-विषयक संदेह को दूर करने वाले, सूक्ष्म तथा अगाध आगम के समुद्र [अर्थात् अनेक कठिन तथा सूक्ष्म शास्त्रों के ज्ञाता], दिवोदास को [सुश्रुत बोला]।

इन विशेषणों से स्पष्ट है कि काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि परम तपस्वी, शास्त्रों का मर्मज्ञ, भाषा का पण्डित, धर्मात्मा तथा अष्टांग आयुर्वेदज्ञ था।

धन्वन्तरि दिवोदास तथा काशिराज

पूर्वलिखित विशेषणों में धन्वन्तरि, काशिराज तथा दिवोदास पद स्पष्टतया एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु अन्य स्थलों में धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज पदों का प्रयोग तीन पृथक् व्यक्तियों के लिए हुआ है। ऐसे स्थल नीचे उद्धृत किए जाते हैं। यथा—

१. ब्रह्मवैवर्त की सूचि—पूर्व पृ० ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त पुराण की भास्कर-शिष्यों की सूचि में धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज नामक तीन व्यक्तियों को भास्कर-शिष्य कहा है। उक्त सूचि में भास्कर के सोलह शिष्य कहे हैं। पूर्वोक्त तीनों नामों को पृथक् गिने बिना सोलह की संख्या पूर्ण नहीं होती।

२. षड्व्याधि-घातक—पूर्व पृ० ११८ पर उद्धृत एक वचन में छः व्याधिघातक आचार्यों के नाम हैं। इनमें भी धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज नामक तीन आचार्यों को पृथक् स्मरण किया है।

३. हर्नलि का मत—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय, पृ० ३१२ पर हर्नलि का एक वाक्य उद्धृत करते हैं—

"The work called Navanitaka (in the Bower MS.) professes to be by Sushruta,to whom it was declared by the Muni Kasiraja. The latter is clearly a proper name, not a title 'a king of Kasi'."

अर्थात्—नावनीतक का प्रवचन सुश्रुत ने किया। सुश्रुत को इसका उपदेश मुनि काशिराज ने किया। यहां काशिराज शब्द व्यक्ति-विशेष का नाम है, विशेषण नहीं।

गिरिन्द्रनाथ की भूल—मुखोपाध्याय जी का अभिप्राय यह है कि हर्नलि के अनुसार नावनीतक ग्रन्थ अपने को सुश्रुत की रचना सिद्ध करता है। यह ठीक प्रतीत नहीं होता। Bower MS. के तीन भाग हैं। पहले भाग में पांच पत्र हैं। उनमें पहले लशुन कल्प उल्लिखित है। वस्तुतः इस लशुनकल्प का

उपदेश काशिराज ने सुश्रुत को किया। यथा—

मुनिमुपगतः सुश्रुतः काशिराजं किन्नु-एतत् स्यात्।
अथ स भगवानाह।

नावनीतक अथवा सिद्ध-सङ्कर्ष ग्रन्थ इन पांच पत्रोंके पश्चात्, द्वितीय भाग से आरंभ होता है। हर्नलि इस बात को जानता था। गिरिन्द्रनाथजी ने हर्नलि का भाव नहीं समझा। हर्नलि लिखता है—The present work professes to be by Sushruta. (Bower MS. part I, p. 11)

नाथजी ने भूल से हर्नलि का पाठ बदला है—

गिरिन्द्रनाथ-उद्धृत हर्नलि-पाठ	हर्नलि का पाठ
the work called नावनीतक (in the Bower MS.) professes.	the present work professes

अतः निश्चय है कि नावनीतक सुश्रुत का ग्रन्थ नहीं है।

वास्तव में काशिराज और धन्वन्तरि के नामैक्य का विषय विचारणीय है।

गुरु

१. भरद्वाज—पूर्व पृ० १३७ पर लिखे अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है कि धन्वन्तरि द्वितीय ने भिषक्-क्रिया सहित आयुर्वेद-ज्ञान भरद्वाज से प्राप्त किया। दिवोदास भी भरद्वाज का शिष्य था। अनुशासन प० अ० २६ में दिवोदास स्वयं भरद्वाज से कहता है—

शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि।

२. इन्द्र—सुश्रुतसं० सू० १।२० में धन्वन्तरि-तृतीय ? स्वयं कहता है—

ब्रह्मा प्रोवाच, ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनौ, अश्विभ्यामिन्द्रः, इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः।

अर्थात्—ब्रह्मा ने आयुर्वेद का प्रवचन किया, उससे प्रजापति दक्ष ने प्राप्त किया, उससे अश्विद्वय ने, अश्विद्वय से इन्द्र ने, तथा इन्द्र से मैंने [दिवोदास=धन्वन्तरि ने]। अब में प्रजाओं के कल्याण के लिए इस लोक में अर्थियों [आयुर्वेद जानने की इच्छा करने वालों को] दूंगा।

अष्टाङ्गसङ्ग्रह, सू० अ० १, पृ० २ पर भी धन्वन्तरि द्वितीय का, साक्षात् इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण करने का वर्णन है—

नरेषु पीड्यमानेषु पुरस्कृत्य पुनर्वसुम्
धन्वन्तरि-भरद्वाज-निमि-काश्यप-कश्यपाः।
महर्षयो महात्मानस्तथालम्बायनादयः।
शतक्रतुमुपाजग्मुश्शरण्यममरेश्वरम्॥

इस श्लोक में धन्वन्तरि, भरद्वाज, निमि, काश्यप, कश्यप तथा आलम्बायन आदि अन्य महर्षियों का पुनर्वसु की प्रमुखता में इन्द्र से आयुर्वेद सीखने का उल्लेख है।

सम्भवतः सुश्रुतसंहिता के पूर्वलिखित उद्धरणान्तर्गत अहं पद संग्रह-वर्णित परम्परा का पोषक है।

३. भास्कर—पूर्व पृ० ९२ पर लिखी गई भास्कर-शिष्यों की सूचि संख्या २ में दिवोदास का नाम है। इसी सूचि की संख्या ३ में काशिराज को भी भास्कर-शिष्य कहा है। इससे इतना निश्चय अवश्य है कि दिवोदास ने भास्कर से चिकित्सा का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

शिष्य

(क) धन्वन्तरि द्वितीय ने अपने गुरु भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त करके उसका अष्टाङ्ग-विभाग किया। यह ज्ञान उसने अनेक शिष्यों को दिया।

(ख) पूर्व पृ० १६१ पर लिखे गए सुश्रुतसंहिता के वचन में दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? के औपधेनव आदि सात शिष्यों के नाम लिख चुके हैं। उन नामों के आगे प्रभृति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द की व्याख्या में डल्हणाचार्य लिखता है—

प्रभृतिग्रहणात् निमि-काङ्कायन-गार्ग्य-गालवाः।

अर्थात्—प्रभृति शब्द के प्रयोग से निमि, काङ्कायन, गार्ग्य तथा गालव अभिप्रेत हैं।

(ग) भावप्रकाश १।८० में लिखा है कि सुश्रुत के साथ एकशत मुनिपुत्र दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? से आयुर्वेद सीखने आए।

फलतः दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? ने अनेक शिष्यों को आयुर्वेद-ज्ञान दिया। इन शिष्यों में विश्वामित्र-सुत सुश्रुत प्रधान था। सब सहाध्यायियों ने एकमति से उसे प्रश्न पूछने के लिए अपना प्रतिनिधि बनाया। शिष्यों की इच्छानुसार धन्वन्तरि तृतीय ? ने उन्हें शल्यशास्त्र का उपदेश दिया।

आयुर्वेद के विभिन्न अङ्गों का ज्ञाता धन्वन्तरि

१. अष्टाङ्गायुर्वेद-ज्ञाता—पूर्व पृ० १६३ पर उद्धृत विशेषणों से स्पष्ट है कि धन्वन्तरि तृतीय ? आयुर्वेद के आठों अङ्गों का ज्ञाता था। अष्टाङ्गसंग्रह के पूर्वलिखित पाठ में आगे स्पष्ट लिखा है कि पुनर्वसु की प्रमुखता में इन्द्र के पास जाकर धन्वन्तरि आदि ऋषियों ने ब्रह्मा का आठ अङ्गों वाला आयुर्वेद सीखा।

२. अश्व तथा गजायुर्वेदज्ञ—काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ६९ पर श्री

राजगुरु हेमराजजी ने आग्नेय पुराण (अ० २७९-२९२) के प्रमाण से लिखा है कि सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि न केवल मनुष्य–आयुर्वेद का ज्ञाता था अपितु अश्व तथा गज आयुर्वेदज्ञ भी था।

३. भिषक्-क्रिया विशेषज्ञ—पूर्व पृ०१६१ पर लिख चुके हैं कि शिष्यों की प्रार्थना पर दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? ने सुश्रुत आदि को शल्य-शास्त्र का विशेष उपदेश किया। पुराणों के पाठों से स्पष्ट है कि भरद्वाज से धन्वन्तरि द्वितीय ने भिषक् क्रिया अर्थात् शल्य-शास्त्र सीखा। अतः आयुर्वेद के आठों अङ्गों का ज्ञान रखते हुए भी धन्वन्तरि ने भिषक् क्रिया का विशेष ज्ञान दिया। यह ज्ञानामृत सुश्रुतसंहिता में आज भी विद्यमान है।

भिषक् क्रिया=शल्य शास्त्र—आयुर्वेद के ग्रन्थों में भिषक् क्रिया तथा भिषग् विद्या शब्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रतीत होता है भिषक् क्रिया का मूलार्थ शल्य क्रिया तथा भिषग्-विद्या का प्रधानार्थ काय-चिकित्सा है।

४. व्याधिप्रणाशबीज-ज्ञाता—आयुर्वेद का सामान्य ज्ञान अनेक व्यक्तियों को था परन्तु विशेष व्यक्ति केवल चिकित्सा-विषयक ज्ञान में विशेषता प्राप्त करते थे। ब्रह्मवैवर्त के प्रमाण से स्पष्ट है कि ऐसे लोगों को व्याधिप्रणाश-बीज-ज्ञाता कहा है। पूर्व पृ०११८ पर उद्धृत प्रमाण में इन्हीं को व्याधि-घातक कहा है। धन्वन्तरि ने भी गुरु भास्कर से चिकित्सा का विशेष ज्ञान सीखा। फलतः उसकी गणना छः व्याधिघातकों में हुई।

धन्वन्तरि-सम्प्रदाय—पूर्व पृ० ११७ पर लिख चुके हैं कि अपरकाल में धन्वन्तरि शब्द का प्रयोग शल्यतन्त्रज्ञों के लिए सामान्यरूपेण होने लगा।

आयुर्वेदीय चरकसंहिता, चि० ५।६३ में शल्यतन्त्रज्ञों के लिए धान्वन्तरीय शब्द का प्रयोग हुआ है—

दाहे धान्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्।

अर्थात्—दाह आदि की आवश्यकता हो तो धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालों का प्रामाण्य है।

अष्टाङ्गसंग्रह सू०, अ० २८, पृ० २१६ पर धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालों का मत प्रदर्शित करने के लिए लिखा है—

धन्वन्तरीयाः पुनराहुः।

स्पष्ट है कि मानव संसार में शल्यशास्त्र का अधिक ज्ञान धन्वन्तरि ने विस्तृत किया। अतः उसके शास्त्र को जानने वालों को धान्वन्तरीय कहा गया।

धन्वन्तरि के वचन

सुश्रुत सं० के अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदीय संहिताओं, उनकी टीकाओं तथा

संग्रह ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर धन्वन्तरि के वचन, धन्वन्तरि-संहिता के उद्धरण तथा धन्वन्तरि-सम्प्रदाय वालों के मत उद्धृत हैं। उन ग्रन्थों के ऐसे कतिपय वचन कालक्रमानुसार नीचे उद्धृत किए जाते हैं। यथा—

१. अष्टाङ्गहृदय ५।४४ की सर्वाङ्गसुन्दरा टीका में धन्वन्तरि के ग्रन्थ का वचन उद्धृत है—

तथा चोक्तं धान्वन्तरे—

शालिपिष्टमयं सर्वं गुरुभावाद्विदह्यते ।इति।

धन्वन्तरि का यह वचन सुश्रुतसंहिता में उपलब्ध नहीं होता।

२. वाग्भट अपने अष्टांगहृदय, शा० ३।१६ में धन्वन्तरि का मत प्रदर्शित करता है। यथा—

धन्वन्तरिस्तु त्रीण्याह सन्धीनां च शतद्वयम्।
दशोत्तरम्।

३. अष्टाङ्गहृदय, शा० ३।५० में वाग्भट ने पुनः धन्वन्तरि का मत उद्धृत किया है—

तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता।
सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराह्वया ॥

४. अष्टाङ्गहृदय सू० ६।१५८ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या में धन्वन्तरि-निघण्टु का एक प्रमाण उल्लिखित है—

तथा च धन्वन्तरिराख्यत् (ध० निघण्टौ व० १।२१२)—बिभीतकः कर्षफल इत्यादि।

५. अष्टाङ्गसङ्ग्रह उत्तर स्थान, अ० ३४ की इन्दु टीका के पश्चात सम्पादक ने किसी अन्य टीका का पाठ उद्धृत किया है—

धन्वन्तरिणाप्युक्तम्—

ग्रन्थिः सिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात् सरुजश्चलश्च।
तत्रारुजश्चाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीय. ॥ इति।

यह वचन सुश्रुतसंहिता में से लिया गया है।

६. अष्टाङ्गसंग्रह उ० अ० १६ पर इन्दु टीका के पश्चात् सम्पादक द्वारा उद्धृत किसी अन्य टीका में धन्वन्तरि का निम्नलिखित वचन उल्लिखित है—

धन्वन्तरिणा तु धूमरचिकित्सायामुक्तम्—

घृतं पिबेद् धूमदर्शी नरस्तु कुर्याद्विधिं पित्तहरं च सर्वम् ।।इति।

हमारी अब तक की खोज में धन्वन्तरि का यह वचन सुश्रुतसंहिता में उपलब्ध नहीं हुआ।

७. अष्टाङ्गसंग्रह उ०, अ० ३६ पृ० २७१ पर धन्वन्तरि का अधोलिखित वचन भी उद्धृत है—

उक्तं च धन्वन्तरिणा—
विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षवङ्क्षणसन्धिषु।
विदारिका सा विज्ञेया सरुजा सर्वलक्षणा॥ इति।

यह वचन किञ्चित् पाठ-भेद से सुश्रुतसंहिता नि० १३।२४,२५ में उपलब्ध होता है।

८. आयुर्वेदीय चरकसंहिता, शा० ६।२१ में पुनर्वसु आत्रेय गर्भशरीर-विचायक प्रकरण आरम्भ करने से पूर्व सूत्रकार ऋषियों के विप्रतिवादों का वर्णन करते हुए कहता है—

सर्वाङ्गाभिनिर्वृत्तिर्युगपदिति धन्वन्तरिः।

अर्थात्—सारे अङ्गों का निर्माण तत्काल होता है, यह धन्वन्तरि का मत है।

आत्रेय पुनर्वसु इस विषय में धन्वन्तरि के मत को मान्य कहते हैं।

९. पूर्व० पृ० १६७ पर लिख चुके हैं कि चरकसंहिता चि० ५।६३ में धन्वन्तरि-सम्प्रदायानुवर्त्तियों का एक वचन उल्लिखित है।

१०. चरकसंहिता वि० ७।११ में धन्वन्तरि के लिए आहुति विहित है।

११. आयुर्वेदीय काश्यपसंहिता पृ० ३९ पर भी धन्वन्तरि के निमित्त आहुति-दान विहित है।

१२. अ० सं०उ०, पृ० ३१४ पर धन्वन्तरि मत लिखा है।

इन वचनों को पढ़कर निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. धन्वन्तरि के कई ऐसे वचन हैं जो सुश्रुत संहिता में उपलब्ध नहीं। अतः धन्वन्तरि की अपनी रचना अवश्य थी।

२. धान्वन्तरीय पद से शल्यशास्त्रज्ञ अभिप्रेत हैं।

३. धन्वन्तरि-निघण्टु अवश्य था। एक निघण्टु प्रकाशित भी हो चुका है। यह विचारणीय है कि वह विक्रमकालिक धन्वन्तरि का था अथवा किसी पूर्ववर्ती धन्वन्तरि का।

४. चरकसंहिता में उद्धृत धान्वन्तरीय-मत से स्पष्ट है कि पुनर्वसु आत्रेय के काल में ही धन्वन्तरि-सम्प्रदाय पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था।

ग्रन्थ

१. चिकित्सा दर्शन—पूर्व० पृ० ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्तपुराण की सूचि के अनुसार दिवोदास ने चिकित्सादर्शन नामक तन्त्र रचा।

२. **चिकित्साकौमुदी**—ब्रह्मवैवर्त पु० की पूर्वोक्त सूचि में काशिराज द्वारा चिकित्साकौमुदी नामक तन्त्र-निर्माण का उल्लेख है।

३. **योगचिन्तामणि**—पूना के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि में संख्या १५७ के अन्तर्गत किसी धन्वन्तरि के योगचिन्तामणि नामक ग्रन्थ का उल्लेख है।

४. **सन्निपातकलिका**—धन्वन्तरि की इस रचना का उल्लेख पूना के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि संख्या ३०६ के अन्तर्गत है।

५. **गुटिकाधिकार**—बड़ोदा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि भाग द्वितीय, सन् १९५०, प्रवेशसंख्या १५६५ के अन्तर्गत किसी धन्वन्तरि के इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

६. **धातुकल्प**—धन्वन्तरि का यह ग्रन्थ बड़ोदा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि, भाग द्वितीय, सन् १९५० की प्रवेश संख्या १५७६ (ए) के अन्तर्गत सन्निविष्ट है।

इन हस्तलिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने छः निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख अपनी हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन भाग २, पृ० ३२८ पर किया है। यथा—

७. **अजीर्णामृतमञ्जरी**—यह काशिराज की रचना है।

८. **रोग निदान**—इसका रचयिता धन्वन्तरि है।

९. **वैद्य चिन्तामणि**—यह भी धन्वन्तरि की कृति है।

१०. **विद्याप्रकाश-चिकित्सा**—इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि यह धन्वन्तरि की रचना है।

११. **धन्वन्तरि-निघण्टु**—धन्वन्तरि की यह रचना प्रकाशित हो चुकी है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ निम्नलिखित पुस्तकालयों में हैं—

बीकानेर—१३९२। इण्डिया आफिस— २७३६, २७३७।

आक्सफोर्ड सूचिपत्र—४५१। मद्रास पुस्तक-भण्डार १३२८३-१३२९४।

बड़ोदा पुस्तकालय—३५५४, इस पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख मुखोपाध्याय जी ने नहीं किया।

१२. **वैद्यक भास्करोदय**—यह रचना भी धन्वन्तरि की है।

१३. **चिकित्सासारसंग्रह**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि संख्या १३१३७–१३१४५ के अन्तर्गत धन्वन्तरि की यह रचना सन्निविष्ट है। मुखोपाध्याय जी लिखते हैं कि यह नवीन रचना है। वास्तव में उपरि-लिखित सम्पूर्ण गन्थों के विषय में विचारना होगा कि ये किस-किस धन्वतरि की रचनाएं हैं।

३२. भिषग्विद्या-प्रवर्तक, संसार का महान् वैज्ञानिक पुनर्वसु आत्रेय

त्रेता का अन्त=भारतयुद्ध से लगभग २७०० वर्ष पूर्व

दो विशिष्ट सहाध्यायी—आरम्भ से हम ब्रह्मोपदिष्ट आयुर्वेद-परम्परा का क्रमिक निदर्शन करते आ रहे हैं। ब्रह्मा का विस्तृत आयुर्वेद-ज्ञान यथाक्रम देवलोक में से परमर्षि भरद्वाज द्वारा सर्वाङ्गरूपेण मनुष्यलोक में लाया गया। उस अष्टाङ्गीण ज्ञान में से धन्वन्तरि ने शल्य-चिकित्सा का विशिष्ट उपदेश किया। काय-चिकित्सा के ज्ञान को विस्तृत करने का श्रेय पुनर्वसु आत्रेय को है। मुद्रित आयुर्वेदीय वाङ्मय में से यदि धन्वन्तरि तथा पुनर्वसु की चिकित्सा-पद्धति को निकाल दिया जाए तो आज के वैज्ञानिक-ब्रुव-जगत् से टक्कर लेने का कोई साधन हमारे पास न रहेगा। धन्वन्तरि तथा पुनर्वसु एक ही गुरु भरद्वाज के शिष्य थे। इन्द्र से ज्ञान लेने के लिए भी ये एक साथ गए थे। अतः दोनों सहाध्यायी आचार्यों का एक अध्याय में वर्णन करना उचित है। इनमें से शल्यतन्त्र-प्रवर्तक का वर्णन हम कर चुके हैं, अब भिषग्विद्या-प्रवर्तक का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

वंश

अत्रिपुत्र—ब्रह्मा के मानसपुत्र महर्षि अत्रि का वृत्त पूर्व पृ० ६१-६३ पर लिख चुके हैं। स्वनामधन्य पुनर्वसु आत्रेय इन्हीं अत्रि का पुत्र था। आयुर्वेदीय चरकसंहिता सू० ३।२९ का निम्नलिखित वचन पुनर्वसु के अत्रि-पुत्रत्व को सिद्ध करता है। यथा—

इहात्रिजः सिद्धतमानुवाच।

पुनः चरकसंहिता सू० ३०।५० में महर्षि पुनर्वसु को अत्रिसूनु कहा है। तथा देखो, चरकसंहिता, चि० १२।३, ४।। २२।३।। ३०।७।। इत्यादि।।

अश्वघोष का लेख—प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् भिक्षु अश्वघोष (विक्रम से लगभग ३००-४०० वर्ष पूर्व)[१] अपने बुद्धचरित १।४३ में लिखता है—

चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद ।।

अर्थात्—जो चिकित्सा शास्त्र अत्रि ने न लिखा, उसे अत्रिपुत्र ऋषि आत्रेय उपदेश रूप से बोला।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि पुनर्वसु आत्रेय साक्षात् अत्रि ऋषि का पुत्र था।

---

१. पाश्चात्य ढंग के वर्तमान लेखक इतिहास न जानने के कारण अश्वघोष को विक्रम प्रथम अथवा द्वितीय शती में मानते हैं।

चान्द्रभागी-पुनर्वसु—पुनर्वसु आत्रेय को चान्द्रभागी भी कहा जाता है। चरकसंहिता सू० १३।१०० में पुनर्वसु का यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है—

यथाप्रश्नं भगवता व्याहृतं चान्द्रभागिना।

यह वचन स्नेहाध्याय की समाप्ति पर लिखा गया है। इस अध्याय के आरम्भ से पुनर्वसु-आत्रेय का उपदेश चल रहा है। अध्याय के अन्त में प्रयुक्त चान्द्रभागी विशेषण उपदेष्टा पुनर्वसु के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इसी वचन की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

चान्द्रभागी=पुनर्वसुः।

अर्थात्—पुनर्वसु ही चान्द्रभागी है।

इसी तथ्य की पुष्टि में चरकसंहिता के लाहौर-संस्करण के सम्पादक श्री हरिदत्तजी शास्त्री चरकसंहिता के उपोद्घात पृ० च पर भेडसंहिता के दो प्रमाण उद्धृत करते हैं—

गान्धारदेशे राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्गमार्गदः।
संगृह्य पादौ पप्रच्छ चान्द्रभागं पुनर्वसुम्॥ भेलसंहिता पृ० ३०

इस स्थल में भी पुनर्वसु के लिए चान्द्रभाग विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भेलसंहिता पृ ३९ पर भी पुनर्वसु को चान्द्रभाग कहा है—

सुश्रोता नाम मेधावी चान्द्रभागमुवाच ह।

राजगुरुजी का मत—श्री० राजगुरु हेमराज जी काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ७७ पर लिखते हैं कि पुनर्वसु की माता का नाम चन्द्रभागा था। अतः उसे चान्द्रभाग तथा चान्द्रभागी कहा है।

एक अन्य सम्भावना—आगे आत्रेय देश के विषय में यथास्थान लिखेंगे। सम्भवतः किसी समय चन्द्रभागा नदी इस प्रदेश के निकट बहती थी। अतः चन्द्रभागा नदी के तटवर्ती प्रदेश में रहने के कारण पुनर्वसु का एक विशेषण चान्द्रभागी हो सकता है। संस्कृत-वाङ्मय में ऐसे विशेषणों का प्रयोग प्रायः पाया जाता है। देखो अष्टाध्यायी ४।१।११३॥

अत्रि-वंश का विस्तार—पूर्व पृ० ६१ पर लिख चुके हैं कि महर्षि अत्रि का वंश अतिविस्तृत हुआ। बौधायन मुनि (२८०० वर्ष विक्रम पूर्व) अपने श्रौतसूत्र के प्रवराध्याय में लिखते हैं—

अत्रीन्व्याख्यास्यामो अत्रयो भूरयः ..... कृष्णात्रेया गौरात्रेया अरुणात्रेया नीलात्रेया श्वेतात्रेयाः श्यामात्रेया महात्रेया आत्रेयाः .....।

अर्थात्—अब अत्रियों की व्याख्या करेंगे। अत्रि अनेक हैं......कृष्णात्रेय,

गौरात्रेय, अरुणात्रेय, नीलात्रेय, श्वेतात्रेय, श्यामात्रेय, महात्रेय, तथा आत्रेय...।

स्पष्ट है कि अत्रि के वंशज कृष्ण-आत्रेय आदि कहाए।

प्रतीत होता है कि कृष्णात्रेय कहाए जाने वालों का पूर्वपुरुष पुनर्वसु अपरनाम कृष्ण था। चरकसंहिता के प्रमाणों से स्पष्ट है कि पुनर्वसु साक्षात अत्रि का पुत्र था। आगे स्पष्ट करेंगे कि पुनर्वसु आत्रेय ही कृष्ण-आत्रेय कहाता था।

पुनर्वसु आत्रेय अपरनाम कृष्ण-आत्रेय—भरद्वाज के प्रकरण में लिख चुके हैं कि पुनर्वसु आत्रेय ही भरद्वाज का प्रमुख शिष्य था। आयुर्वेदीय चरकसंहिता के अनुसार चरकसंहिता के गुरुसूत्र आत्रेय पुनर्वसु के हैं। आयुर्वेदीय संहिताओं में कहीं-कहीं इन्हीं पुनर्वसु आत्रेय को कृष्ण आत्रेय भी कहा है। हम कतिपय ऐसे स्थल नीचे उद्धृत करते हैं, जहाँ कृष्णात्रेय पद पुनर्वसु आत्रेय के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा—

१. त्रित्वेनाष्टौ समुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेण धीमता। चरक सं० सू० ११।६५॥

२. अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम्। च० चि० २८। १५७॥

३. कृष्णात्रेयेण गुरुणा भाषितं वैद्यपूजितम्। च० चि० २८।१६४॥

४. नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम्। च० चि० १५।१३२॥

इनमें से संख्या चार के वचन की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

५. कृष्णात्रेयः पुनर्वसोरभिन्न एवेति वृद्धाः।

अर्थात्—वृद्धों [चक्रपाणिदत्त से पूर्ववर्ती लेखकों] का मत है कि कृष्णात्रेय, पुनर्वसु आत्रेय से भिन्न नहीं।

चक्रपाणिदत्त का उत्तरवर्ती श्रीकण्ठदत्त व्याख्या-कुसुमावलि में लिखता है—

६. कृष्णात्रेयः पुनर्वसुः। द्वि० सं०, पृ० ८४।

अर्थात्—कृष्णात्रेय पुनर्वसु है।

चरकसंहिता, चि० ३०।४ में **पुनर्वसु** का पाठान्तर **कृष्णात्रेय** भी है। देखो पं० हरिदत्तजी का लाहौर संस्करण, द्वितीयावृत्ति, पृ० १५०१।

इन सब वचनों को पढ़ने से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. चरकसंहिता सू० अध्याय ११ के आरम्भ में लिखा है—

अथातस्तिस्रैषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥२॥

स्पष्ट है कि अग्निवेश के गुरु भगवान् आत्रेय तिस्रैषणीय अध्याय की व्याख्या करते हैं। इससे आगे समस्त अध्याय में केवल गुरुसूत्र हैं। अर्थात अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु का ही उपदेश है। इस अध्याय की समाप्ति पर संग्रहश्लोकों में संख्या १ वाला निम्नलिखित वचन लिखा है—

त्रित्वेनाष्टौ समुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेण धीमता।

इस प्रसंग से स्पष्ट है कि आरम्भ में जिस आचार्य को पुनर्वसु आत्रेय के नाम से स्मरण किया है, अध्याय के अन्त में उसी आचार्य को उसके अपर नाम "कृष्ण आत्रेय" से पुकारा है।

२. पूर्व लिखित संख्या २ तथा ३ के वचन स्पष्ट करते हैं कि अग्निवेश के गुरु का नाम कृष्णात्रेय भी था। चरकसंहिता के अनेक प्रकरणों में पुनर्वसु आत्रेय ही अग्निवेश का गुरु स्वीकृत किया गया है। फलतः पूर्वलिखित वचनों में स्मृत कृष्ण-आत्रेय अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु आत्रेय का ही अपरनाम है।

३. संख्या ५ के वचन से निश्चय है कि चक्रपाणिदत्त के पूर्ववर्ती आचार्य पुनर्वसु आत्रेय का अपरनाम कृष्ण-आत्रेय स्वीकार करते थे।

४. चक्रपाणिदत्त भी इस विषय में पूर्व आचार्यों से सहमत था, अन्यथा वह इस मत का प्रतिवाद करता।

५. चक्रपाणिदत्त का उत्तरवर्ती श्रीकण्ठदत्त भी पूर्वोक्त परम्परा से सहमत है।

६. चरकसंहिता का पाठान्तर इस मत को अति दृढ़ करता है।

अन्ततः यह परिणाम निकलता है कि पुनर्वसु आत्रेय का अपरनाम कृष्ण-आत्रेय था।

हिमवत्पार्श्वस्थ ऋषि-सम्मेलन में दो आत्रेय

पूर्व पृ० १३५ पर चरक-वर्णित ऋषि-सम्मेलन में उपस्थित होने वाले कतिपय ऋषियों में संख्या ६ तथा १७ के अन्तर्गत दो आत्रेयों का उल्लेख है। पहला आत्रेय चरक-परम्परा का प्रसिद्ध पुनर्वसु आत्रेय है। दूसरा आत्रेय भिक्षुरात्रेय है। चरकसंहिता सू० अध्याय २५ में लिखित विचार-विनिमय करने वाले ऋषियों में भिक्षुरात्रेय भी सम्मिलित है।

भिक्षु विशेषण सांख्य-ज्ञाता संन्यासियों का है। यथा भिक्षु पञ्चशिख, भिक्षु याज्ञवल्क्य आदि। बौद्धों ने इन्हीं सांख्याचार्यों से यह पद ले लिया है। भिक्षु आत्रेय ऐसा ही महापुरुष था। स्मरण रहे कि आयुर्वेद का सांख्य-शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कृष्णात्रेय को पुनर्वसु से भिन्न मानने वाला पक्ष

गिरिन्द्रनाथ की युक्तियाँ—गिरिन्द्रनाथ जी ने अपनी हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय में पुनर्वसु आत्रेय तथा कृष्ण-आत्रेय को भिन्न मान कर उनका पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए वे निम्नलिखित युक्तियाँ उपस्थित करते हैं। यथा—

१. In the Charaka Samhita Punarvasu Atreya appears to have taught six disciples Agnivesha and others; and in that book his name is always written as Punarvasu Atreya and never as Krishna Atreya.

अर्थात्—चरक संहिता से ज्ञात होता है कि पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश आदि छः शिष्यों को पढ़ाया। इस पुस्तक में सदा उसका नाम पुनर्वसु आत्रेय लिखा गया है। कृष्णात्रेय नाम कभी नहीं लिखा गया।

२. इससे आगे मुखोपाध्याय जी फिर लिखते हैं—

We find from quotations from Krishna Atreya that he belonged to the surgical school and could not have been the same as the Punarvasu Atreya, the speaker in the Agnivesha Tantra. Srikantha Datta in commenting on Kavaladhikara (Vrinda's Sidhayoga) says:—

ननु च तन्त्रान्तरीयै षड्विधः कवलः पठितः। तथा च कृष्णात्रेयः; again **शालाकिभिस्तु प्रतिदोषं पठितानि द्रव्याणि। तथा च कृष्णात्रेयः। इत्यादि।**

अर्थात्—अनेक उद्धरणों से स्पष्ट है कि कृष्ण-आत्रेय शल्य-परम्परानुवर्ती था। अतः वह चरकसंहिता वर्णित, अग्निवेश-गुरु पुनर्वसु आत्रेय नहीं हो सकता। कवलाधिकार की व्याख्या में श्रीकण्ठदत्त का वचन द्रष्टव्य है।

३. **गिरिन्द्रनाथ जी की तीसरी युक्ति**—In the Tattva Chandrika Sivadasa while commenting on **दशमूलाष्टपल घृत** quoted from **ज्वराधिकार** of **चक्रदत्त 'पञ्च प्रभृतिभ्य यत्रस्य'** cites the names of Gopura Rakshita.........and Krishna Atreya. This proves that Krishna Atreya's work was quite different from that of Charaka.

अर्थात्—तत्त्वचन्द्रिका में शिवदास ने दशमूलाष्टपल-घृत की व्याख्या की है। यह घृत, चक्रदत्त के ज्वराधिकार प्रकरण के पञ्चप्रभृतिभ्य पत्रस्य'

नामक प्रसङ्ग से उद्धृत है। इसकी व्याख्या में शिवदास ने गोपुररक्षित, जतूकर्ण, [चरक, सुश्रुत] तथा कृष्णात्रेय के नाम लिखे हैं। अतः सिद्ध होता है कि कृष्ण-आत्रेय की रचना चरक की रचना से सर्वथा भिन्न थी।

गिरिन्द्रनाथ की उलझन—पूर्व पृ० १७३ पर हम श्रीकण्ठदत्त का एक वचन उद्धृत कर चुके हैं कि कृष्ण-आत्रेय पुनर्वसु है। इस वचन से गिरिन्द्रनाथ जी उलझन में पड़ गए हैं। जिस श्रीकण्ठदत्त के लेख से मुखोपाध्याय जी कृष्ण-आत्रेय को पुनर्वसु आत्रेय से भिन्न सिद्ध करना चाहते हैं, वही श्रीकण्ठदत्त कृष्ण-आत्रेय को पुनर्वसु आत्रेय से अभिन्न मानता है। इस वचन की कठिनाई को जानकर गिरिन्द्रनाथ जी लिखते हैं—

We cannot explain this identity satisfactorily.

अर्थात्—हम इस ऐक्य की सन्तोषप्रद व्याख्या नहीं कर सकते।

जोगिन्द्रनाथ सेन का मत—पं० जोगिन्द्रनाथ सेन अपनी चरकोपस्कार नाम की चरकसंहिता की व्याख्या में एतद्विषयक कठिनाई को दूर करने के लिए लिखते हैं—

अत्रि का नाम कृष्ण-अत्रि हो सकता है। अतः आत्रेय कृष्णात्रिपुत्र पुनर्वसु है।

गिरिन्द्रनाथ, जोगिन्द्रनाथ के खण्डन में—गिरिन्द्रनाथ जी इस विषय में जोगिन्द्रनाथ से सहमत नहीं। अतः वे फिर लिखते हैं—

This no doubt reconciles the conflicting statements of commentators but makes Krishna Atreya and Punarvasu Atreya to be the same rishi............Nowhere has he been so styled in Charaka Samhita.

अर्थात्—[जोगिन्द्रनाथ जी का] यह मत व्याख्याकारों के परस्पर-विरुद्ध कथनों का समाधान निःसन्देह कर देता है किन्तु कृष्ण-आत्रेय तथा पुनर्वसु आत्रेय को एक ऋषि बना देता है.........चरकसंहिता में उसका इस प्रकार से उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

स्पष्ट है कि गिरिन्द्रनाथ जी पुनर्वसु तथा कृष्ण आत्रेय को एक नहीं मानते। अतः उन्हें जोगिन्द्रनाथ की युक्ति मान्य नहीं।

नाथ-द्वय की आलोचना

वास्तव में गिरिन्द्रनाथ तथा जोगिन्द्रनाथ, दोनों महानुभाव, तथ्य से दूर चले गए हैं। नीचे नाथ-द्वय की एतद्विषयक युक्तियों की क्रमशः आलोचना की जाती है—

(क) गिरिन्द्रनाथ जी ने श्रीकण्ठदत्त तथा शिवदास नामक दोनों व्याख्याकारों के वचनों की कल्पित-व्याख्या से स्वयमेव विरोध उत्पन्न किया है। श्रीकण्ठदत्त के दोनों स्थलों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकण्ठदत्त कभी भी पुनर्वसु तथा कृष्ण-आत्रेय को भिन्न नहीं मानता। गिरिन्द्रनाथ जी स्वकल्पित मत के कारण चक्कर में पड़ गए हैं।

(ख) जोगिन्द्रनाथ सेन जी का यह मत भी उपपन्न नहीं कि अत्रि का अपरनाम कृष्ण-अत्रि है, अतः पुनर्वसु को कृष्ण-आत्रेय कहा जाता है।

पूर्व पृ० १०२ पर बौधायन श्रौतसूत्र के प्रमाण से लिख चुके हैं कि अत्रि के वंशज कृष्णात्रेय, श्वेतात्रेय, नीलात्रेय तथा अरुणात्रेय आदि कहाए। पुनर्वसु आत्रेय महर्षि अत्रि का साक्षात् पुत्र था। यदि कृष्णात्रेय पद देखकर अत्रि के अपरनाम कृष्ण की कल्पना की जाए तो अत्रि के श्वेत, नील तथा अरुण आदि अनेक अपरनाम होने चाहिएं। पर यह था नहीं।

चक्रदत्त पृ० ४३ पर कृष्ण-अत्रि-पुत्र का कुटज-पुटपाक नामक एक योग है। उसका अधोलिखित वचन द्रष्टव्य है—

कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः।

अर्थात्—यह योग कृष्ण-अत्रि-पुत्र को मान्य है। इस वचन से ही प्रायः यह कल्पना की जाती है कि अत्रि का अपरनाम कृष्ण-अत्रि है, तथा कृष्ण-अत्रि का पुत्र कृष्ण-आत्रेय हुआ।

इसके विपरीत यदि उपरिलिखित वचन का निम्नलिखित प्रकार से समास तोड़ा जाए तो सब स्पष्ट हो जाता है—

कृष्ण एव अत्रि-पुत्र इति कृष्णात्रिपुत्रः, तन्मते पूजित इति कृष्णात्रिमतपूजितः।

अन्ततः प्रतीत होता है कि पुनर्वसु का अपरनाम कृष्ण था, तथा अत्रि का पुत्र होने से वह आत्रेय कहाता था। अतः उसके दो नाम हुए, पुनर्वसु आत्रेय तथा कृष्णात्रेय।

याजुष आत्रेय संहिता के विषय में पं० भगवद्दत्त जी वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० १९८, १९९ पर लिखते हैं—

"स्कन्द पुराण नागर खण्ड अध्याय ११५ में अनेक गोत्रों की गणना की गई है। वहां लिखा है—

आत्रेया दश संख्याताः शुक्लात्रेयास्तथैव च ॥१६॥
कृष्णात्रेयास्तथा पञ्च······················ ॥२६॥

अर्थात्—दश आत्रेय गोत्र वाले, दश ही शुक्ल आत्रेय गोत्र वाले, तथा

पाँच कृष्णात्रेय थे ।

आयुर्वेद की चरकसंहिता जो महाभारत काल में लिखी गई, पुनर्वसु आत्रेय का ही उपदेश है । हमें इस पुनर्वसु आत्रेय का सम्बन्ध इस [याजुष] आत्रेयी संहिता से प्रतीत होता है । लगभग सातवीं शताब्दी का जैन आचार्य अकलङ्क-देव अपने राजवार्तिक के पृ० ५१ और २९४ पर अज्ञान-दृष्टि वाले वैदिक लोगों की ६७ शाखाएं गिनाता हुआ, वसु का भी स्मरण करता है । बहुत सम्भव है कि इस नाम से भी आत्रेय शाखा कभी प्रसिद्ध रही हो । आत्रेय शाखा वाले ही कृष्ण-आत्रेय कहाते होंगे।.........पुनर्वसु को भेलसंहिता में कृष्णात्रेय भी कहा गया है । महाभारत में लिखा है कि कृष्ण-आत्रेय ने चिकित्सा शास्त्र रचा । इन सब स्थलों के देखने से प्रतीत होता है कि पुनर्वसु, पुनर्वसु आत्रेय, और कृष्ण-आत्रेय एक ही व्यक्ति के नाम हैं ।"

इस पक्ष की तथ्यता विचारणीय है । श्वेत, कृष्ण, नील आदि अनेक आत्रेय थे । इन सब नामों का वास्तविक कारण अभी अज्ञात है ।

(ग) इसके आगे मुखोपाध्यायजी लिखते हैं कि कृष्णात्रिपुत्र पद की जोगिन्द्रनाथ सेन निर्दिष्ट व्याख्या से आत्रेय तथा कृष्ण-आत्रेय एक ही ऋषि के नाम हो जाएंगे, परन्तु चरकसंहिता में उसका इस प्रकार से उल्लेख नहीं ।

पूर्व पृ० १७३ पर चरकसंहिता से उद्धृत संख्या २ तथा ३ के बचनों में कृष्णात्रेय को स्पष्ट शब्दों में अग्निवेश का गुरु कहा है । अतः गिरिन्द्रनाथजी का पूर्व लेख मान्य नहीं । प्रतीत होता है, उनकी दृष्टि में चरकसंहिता का यह पाठ नहीं पड़ा ।

गिरिन्द्रनाथ के युक्तित्रय का क्रमिक उत्तर

गिरिन्द्रनाथजी की तीन युक्तियों का उल्लेख पूर्व कर चुके हैं । उनका क्रमिक उत्तर निम्नलिखित है—

१. मुखोपाध्यायजी की प्रथम युक्ति का उत्तर उनके अन्तिम लेख के उत्तर में दे चुके हैं । संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि चरकसंहिता का निम्नलिखित वचन उनकी पुनरावृत्त युक्ति को खण्डित करता है—

अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम् ।

२. अपनी दूसरी युक्ति में गिरिन्द्रनाथ जी कहते हैं कि कृष्ण-आत्रेय शल्य-परम्परानुवर्ती था, परन्तु अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु ने कायचिकित्सा का उपदेश किया, अतः उन्हें दो भिन्न व्यक्ति समझना चाहिए ।

(क) एक ही व्यक्ति शल्यतन्त्रज्ञ तथा कायचिकित्सक हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । हम आरम्भ से लिखते आ रहे हैं कि एक-एक ऋषि अनेक विद्याओं

का युगपद् ज्ञाता था। संस्कृत वाङ्मय की विशेषता इसी में है। ऋषियों की उग्र-तपस्या, समाधिजन्य बुद्धि तथा दीर्घजीवन द्वारा उन्हें यह शक्ति प्राप्त थी। पाश्चात्य प्रभाव के कारण गिरिन्द्रनाथजी को इसमें सन्देह हुआ है। धन्वन्तरि तथा भरद्वाज आदि महर्षि अष्टाङ्ग-आयुर्वेद के ज्ञाता थे। अतः कृष्ण-आत्रेय का कायचिकित्सक होते हुए शल्यतन्त्रज्ञ होना पूर्ण सम्भव है।

(ख) कृष्ण-आत्रेय को केवल शल्य-परम्परानुवर्ती लिखते हुए मुखोपाध्याय जी ने महाभारत शा० प० २१२।३३ का निम्नलिखित वचन नहीं देखा—

कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्।

अर्थात्—कृष्णात्रेय को [परम्परा-क्रम से] चिकित्सा का ज्ञान था।

यदि कृष्ण-आत्रेय केवल शल्यतन्त्रज्ञ होता तो परम इतिहासज्ञ व्यास उसे चिकित्सक न लिखता। आयुर्वेद के आठों अङ्गों में चिकित्सा शब्द प्रधानतया कायचिकित्सा के साथ प्रयुक्त हुआ है। पुनर्वसु=कृष्ण आत्रेय आयुर्वेद के अन्य अङ्गों का ज्ञाता होते हुए भी कायचिकित्सा-विशेषज्ञ था। इसी कारण पदे-पदे ऐतिहासिक परम्परा को सुरक्षित रखने वाले व्यास ने पुनर्वसु का अपरनाम कृष्ण आत्रेय प्रयुक्त करके उसका विशेषण लिखा, चिकित्सक। यदि कृष्ण-आत्रेय किसी अन्य अङ्ग का विशेषज्ञ होता तो व्यास उसके नाम के साथ वैसा विशेषण अवश्य प्रयुक्त करता।

भेलसंहिता का निर्णय—अग्निवेश का एक सहपाठी भेल था। पुनर्वसु आत्रेय का उपदेश दोनों ने ग्रहण किया। अब भेलसंहिता के निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं—

१. सिद्ध्यति प्रतिकुर्वाण इत्यात्रेयस्य शासनम्। पृ० १५।
२. कस्मिन् जनपदे रोगाः के भवन्त्यधिका इति।
गुर्दालभेकिना[1] पृष्टो व्याचचक्षे पुनर्वसुः। पृ० २२।
३. शताभ्यधिको दोषो न्यूनश्चैवेति पठ्यते।
कृष्णात्रेयं पुरस्कृत्य कथाश्चक्रुर्महर्षयः। पृ० २६।
४. यमौ तदौ संभवतः कृष्णात्रेयवचो यथा। पृ० ७६।
५. अशीतिकं नरं विद्यात् कृष्णात्रेयवचो यथा। पृ० ६८।

इन पांच स्थानों का पाठ पुनर्वसु और कृष्ण नामों का तत्त्व जानने के लिए पर्याप्त है। भेल पर-तन्त्रकार का प्रमाण नहीं देता। वह पुनर्वसु आत्रेय,

---

१. गिरिन्द्रनाथ पार्श्ववर्ती मूल हस्तलेख की प्रतिलिपि का पाठ।
गुर्दालुभेः (लि) ना—मुद्रित पाठ।

अथवा कृष्ण आत्रेय का ऐक्य तथा कायचिकित्सा का तन्त्रकार होना निश्चित मानता है।

सम्भवतः आत्रेय ने कायचिकित्सा तथा शालाक्य विषयक दो तन्त्र लिखे।

३. अपनी तीसरी युक्ति में मुखोपाध्याय जी कहते हैं कि तत्त्व-चन्द्रिका में शिवदास ने अन्य आचार्यों का मत प्रदर्शित करते हुए चरक तथा कृष्ण-आत्रेय का नाम पृथक्-पृथक् ग्रहण किया है। अतः प्रतीत होता है कि कृष्ण-आत्रेय की रचना चरक की रचना से सर्वथा भिन्न थी।

वस्तुतः पुनर्वसु अपरनाम कृष्ण-आत्रेय ने अग्निवेश आदि शिष्यों को जो उपदेश दिया, वह गुरुसूत्रों के रूप में उन शिष्यों की संहिताओं में अब भी सुरक्षित है, परन्तु पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय की स्वतन्त्र आयुर्वेदीय संहिता अवश्य थी। अतः आत्रेय-शिष्य अग्निवेश के पर्याप्त उत्तरवर्ती चरक का यदि किसी विषय में कृष्ण-आत्रेय से न्यूनाधिक्य हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

अष्टाङ्गसंग्रह कल्प० अ०८, पृ० ३६८ पर इन्दुटीका में कृष्णात्रेय का मत बहुधा उद्धृत है। एक स्थल पर कृष्णात्रेय का मत उद्धृत करते हुए इन्दु अपनी टीका में लिखता है कि यह मत चरक को भी अभिमत है—

१. कृष्णात्रेयमतो वाहटेनाङ्गीकृतो यतश्चरकस्यैष एव पक्षः।

२. कृष्णात्रेयमतानुसारेणैव द्रव्याणां पलमित्युक्तम्। तदेव च चरकस्याभिमतमेव।

अर्थात्—१. कृष्णात्रेय का मत वाहट ने स्वीकार किया है क्योंकि चरक का भी यही पक्ष है।

२. कृष्णात्रेय के मत के अनुसार द्रव्यों का एक पल कहा है। यही चरक को सम्मत है। तुलना करो चरक सं० चक्र० टीका, पृ० ९४।

३. चक्रपाणिदत्त चरकसंहिता चि० ३।१९७-१९९ की व्याख्या में कृष्णात्रेय नामक ग्रन्थ का एक वचन उद्धृत करता है—

कृष्णात्रेये—स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नोदितं क्वचित्।
स्नेहस्य कुडवं तत्र पचेत् कल्कपलेन तु॥ इति।

इन वचनों से स्पष्ट है कि कृष्णात्रेय की स्वतन्त्र संहिता थी, तथा इन स्थलों में चरक आचार्य कृष्णात्रेय की स्वतन्त्र संहिता स्वीकार करता है। अतः शिवदास द्वारा चरक तथा कृष्णात्रेय के पृथक् नामग्रहण-मात्र से यह अनुमान करना कि कृष्णात्रेय पुनर्वसु आत्रेय का विरोधी अथवा उस से भिन्न है, उचित नहीं।

राजगुरुजी का मत—श्री राजगुरु हेमराज जी भी काश्यपसंहिता के

उपोद्घात पृ० ७७ पर लिखते हैं—

कृष्णात्रेयः पुनर्वसुरात्रेयश्च विभिन्नौ आचार्यौ इत्यपि वक्तुं शक्यते ।

अर्थात्—कृष्णात्रेय तथा पुनर्वसु आत्रेय दो भिन्न आचार्य हैं, यह कहा जा सकता है ।

राजगुरु जी ने अपने मत की पुष्टि में मुखोपाध्याय जी द्वारा उपस्थापित युक्तियों का ही आश्रय लिया है। अतः गिरिन्द्रनाथ के खण्डनपरक पूर्व-प्रदर्शित तर्कों से राजगुरुजी का मत भी खण्डित हो जाता है ।

काल—पुनर्वसु-कृष्ण आत्रेय का वही काल है जो धन्वन्तरि द्वितीय तथा आयुर्वेदावतार का काल है। पुनर्वसु आत्रेय ने द्वापर के आरम्भ में अग्निवेश आदि शिष्यों को आयुर्वेदोपदेश किया ।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय बौद्धकालीन नहीं

आयुर्वेदीय ग्रन्थों के महान् उद्धारक तथा आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अनुपम स्तम्भ श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने चक्रपाणि-टीकायुत चरक संहिता के द्वितीय संस्करण (सन् १९३५)की भूमिका में पूर्व पक्षियोंका अनुमान लिखा है कि तक्षशिला-विश्वविद्यालय का बुद्ध-कालीन आचार्य आत्रेय चरकसंहिता का उपदेष्टा पुनर्वसु आत्रेय हो सकता है। यह मत भेलसंहिता के प्राक्टिप्पण में परलोकगत श्री आशुतोष मुखोपाध्याय ने (सन् १९३०) प्रकट किया है—

"Atreya is said to have flourished in the sixth century B. C. and to have had six pupils."

अर्थात्—आत्रेय ईसा-पूर्व छटी शती में था। उसके छः शिष्य थे ।

हर्नलि का अनुमान—तक्षशिला के अध्यापक जीवक-गुरु आत्रेय का उल्लेख करके हर्नलि (सन् १९०७) लिखता है ।

He, accordingly, should have flourished at some time in the sixth century B. C. (आस्टिआलोजि, पृ० ७,८)

अर्थात्—आत्रेय को ईसा-पूर्व छटी शती में होना चाहिए ।

टिप्पण—हर्नलि के असिद्ध अनुमान से इतिहास में एक भयानक भ्रान्ति उत्पन्न हुई ।

पूर्वोक्त अनुमान का खण्डन, राजगुरुजी द्वारा

राजगुरु श्री हेमराज जी ने अनेक युक्तियां देकर इस मत का खण्डन किया है।[1] हम राजगुरु जी के निष्कर्ष से सहमत हैं, परन्तु जीवक-गुरु कोई आत्रेय-

---

१. काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ७९–८२ ।

नामक व्यक्ति न था, उनके इस तर्क को उत्पन्न नहीं मानते।

संस्कृत ग्रन्थ मूल-सर्वास्तिवाद की, विनयवस्तु के, चीवरवस्तु में जीवक की वैद्यक शिक्षा आदि का विस्तृत इतिवृत्त मिलता है। उसमें जीवक गुरु तक्षशिला के वैद्य आचार्य आत्रेय का स्पष्ट उल्लेख है—

तेन श्रुतं तक्षशिलायाम् आत्रेयो नाम वैद्यराजः। (पृ०२८)

अर्थात्—उस (जीवक ने) सुना कि तक्षशिला में आत्रेय नामक वैद्यराज है।

आगे भी प्रसङ्गानुपूर्वी से जीवक-गुरु आत्रेय का उल्लेख है।

इस बुद्धकालीन वैद्यराज आत्रेय की उन सर्वतन्त्रार्थवित्, अग्निहोत्रपरायण, भगवान् पुनर्वसु आत्रेय से कैसी तुलना।

१. आगे पृ० १८५ पर उल्लिखित आत्रेय पुनर्वसु के जितने विशेषण प्रयुक्त हुए हैं उनमें से एक भी विशेषण का प्रयोग तक्षशिला के वैद्यराज आत्रेय के नाम के साथ नहीं हुआ।

२. आत्रेय पुनर्वसु के प्रसिद्ध छः शिष्यों का उल्लेख आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों में है। परन्तु तक्षशिला के वैद्याचार्य आत्रेय के जीवक-व्यतिरिक्त किसी अन्य प्रसिद्ध शिष्य का कहीं भी उल्लेख नहीं।

३. आत्रेय पुनर्वसु पर्यटन-शील था। उसका छात्रावास तक्षशिला का भवन नहीं था। वह तो पार्वत्य तथा अन्य प्रदेशों में इतस्ततः विचरण करते हुए शिष्यों को शिक्षा दिया करता था। इसके विपरीत तक्षशिला का आचार्य विद्यालय में बैठ कर शिक्षा देता था।

४.पुनर्वसु आत्रेय के दो शिष्य अग्निवेश और पराशर दशरथ-सखा महाराज रोमपाद के दरबार में उपस्थित थे। ऐसा उल्लेख पालकाप्य ग्रंथ के अन्त में है। कहां वह काल और कहां तथागत बुद्ध का काल।

५. जो लोग तक्षशिला के अध्यापक आत्रेय का पुनर्वसु आत्रेय से ऐक्य मानते हैं, उन्हें स्वतन्त्र प्रमाणों से सिद्ध करना होगा, कि वह आत्रेय ऋषि अत्रि का पुत्र था। केवल अनुमानमात्र साधक प्रमाण नहीं हो सकता।

इस पाश्चात्य मत का सुन्दर खण्डन वैद्य यादवजी ने सटीक चरकसंहिता के तृतीय संस्करण (सन् १९४१) की भूमिका में कर दिया है। हमारे उपर्युक्त तर्कों से भी इस मत का खण्डन हो गया।

आत्रेय द्वापर के आरम्भ में था।

स्थान—चरकसंहिता के पाठ से ज्ञात होता है कि पुनर्वसु आत्रेय जिज्ञासु-प्रकृति का था। वह अन्य अनेक ऋषियों के साथ स्थान-स्थान पर ओषधियों के अन्वेषण तथा सामयिक सम्मेलनों में भाग लेने के लिए घूमता रहता था। काशिराज धन्वन्तरि के समान उसने आश्रम में बैठ कर उपदेश नहीं दिया। अपितु शिष्य-मण्डल के साथ यत्र-तत्र विचरण करते हुए वह अनेक आयुर्वेदीय विषयों का उपदेश करता रहा। अग्निवेश आदि ने जिन भिन्न-भिन्न स्थानों पर आचार्य पुनर्वसु से उपदेश ग्रहण किया, उसका मुख्यतया चरकसंहिता के आधार पर निम्नलिखित संग्रह प्रस्तुत किया जाता है—

१. वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजिहीर्षवः। च० सू० २६।६॥

अर्थात्—सुन्दर चैत्ररथ वन में रोगों का हरण करने की इच्छा वाले [ऋषि] एकत्र हुए।

सिद्धविद्याधराकीर्णे कैलासे नन्दनोपमे। तप्यमानं तपस्तीव्रम्······
च० चि० १३।३॥

अर्थात्—सिद्धों तथा विद्याधरों से आवृत नन्दनवन सदृश कैलास पर तीव्र तप तपते हुए [पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

कैलासे किन्नराकीर्णे बहुप्रस्रवणौषधे। च० चि० २१।३॥

अर्थात—बहुत झरनों तथा औषधों से युक्त, किन्नरगण-आकीर्ण कैलास पर [विहार करते हुए पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धनेशायतनस्य पार्श्वे। च० सि० ३।३॥

अर्थात्—पर्वत श्रेष्ठ हिमालय के कुबेर-भवन वाले सुन्दर पार्श्व पर ठहरे हुए [पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

इन सन्दर्भों से निश्चय है कि अनेक वार कैलास-पर्वत के कुबर-भवन के समीपवर्ती प्रदेशों में पुनर्वसु ने अग्निवेश को उपदेश दिया।

२. जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्य-राजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गङ्गातीरे वनविचारमनुविचरञ् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत्। च० वि० ३।३॥

अर्थात्—पञ्चाल जनपद मण्डल की द्विजातिवर-सेवित काम्पिल्य नामक राजधानी में शिष्यगण सहित भगवान् पुनर्वसु आत्रेय गर्मी के महीने में गङ्गा तटवर्ती वन में विचरण करता हुआ, शिष्य अग्निवेश को बोला।

३. विहरन्तं जितात्मानं पञ्चगंगे पुनर्वसुम्। चि० ४।३॥

स्पष्ट है कि पञ्चगङ्ग प्रदेश में विचरण करते हुए आत्रेय ने शिष्य

अग्निवेश को उपदेश किया।

४. ऋषिगणपरिवृतमुत्तरे हिमवतः पार्श्वे विनयादुपेत्य। च० चि० १।३।।

अर्थात्—हिमालय के उत्तर पार्श्व पर ऋषिगण परिवृत [पुनर्वसु के समीप] सविनय जाकर [अग्निवेश बोला]।

पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुर-सिद्धर्षिसेविते

अर्थात्—देवों, सिद्धों तथा ऋषियों से सेवित हिमालय के पुण्य पार्श्व पर। इन दोनों प्रकरणों में संकेतित हिमवत्पार्श्व भी कैलास का प्रदेश प्रतीत होता है।

५. भेलसंहिता के अनुसार पुनर्वसु आत्रेय एक बार गान्धार भूमि में गया था।

६. बावर हस्तलेख के अन्तर्गत लशुन कल्प आदि के प्रकरणानुसार आत्रेय आदि ऋषि ओषधियों के रस, गण, आकृति, वीर्य तथा नामों को जानने की इच्छा से पर्वतश्रेष्ठ पर शतशः विचरण करते थे। यथा—

आत्रेय-हारित-पराशर-भेल-गर्ग-शाम्बव्य-सुश्रुत-वसिष्ठ-कराल-काप्याः।
सर्वौषधि-रस-गण-आकृति-वीर्य-नाम जिज्ञासवः समुदिताः शतशः प्रचेरुः

स्पष्ट है कि सर्वोषधि-समन्वित पर्वतराज हिमालय के पुण्य-प्रदेशों में पुनर्वसु आत्रेय की उपदेश-गङ्गा अविरत-रूपेण प्रवाहित हुई।

चलता-फिरता आयुर्वेद विद्यालय

उपरिलिखित उद्धरणों से विदित होता है कि आत्रेय पुनर्वसु सशिष्य भ्रमण करता था। अवसर पाकर अग्निवेश प्रमुख शिष्य-गण ने स्थान-स्थान पर गुरु से उपदेश ग्रहण किया। गुरु उपदेशमात्र से सन्तुष्ट न था। वह भिषग्विद्या का साक्षात् अभ्यास कराता था। अन्य ऋषि-गण के सहित जड़ी बूटियों का पूर्ण ज्ञान करके, उनके रस, गण, आकृति, वीर्य तथा नाम का साक्षात् ज्ञान देने का यह प्रकार देख, हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वह चलता-फिरता आयुर्वेद विद्यालय था। ऐसे अनुपम आचार्य तथा उसके अद्वितीय शिष्यों का इतिहास में प्रमुख स्थान है।

आत्रेय देश

श्री पं० भगवद्दत्त कृत भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० १६१ पर आत्रेय तथा भरद्वाज देश के विषय में लिखा है—

अष्टाध्यायी ४।२।१४५ में भरद्वाज देश का उल्लेख है। वहीं इस देश के दो ग्राम कृकण और पर्ण भी वर्णित हैं। आयुर्वेदीय चरकसंहिता का मूल

उपदेष्टा आत्रेय था। और वह भरद्वाज का शिष्य था। किसी पुरातन राजा ने इन दोनों को ये प्रदेश दिए होंगे। वे प्रदेश इन दो ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्मपर्व १०।६७ में इसका उल्लेख है—आत्रेयाः सभरद्वाजाः

ये म्लेच्छ देश थे। वहाँ ओषधियाँ अधिक होती होंगी। इति।

हेमाद्रि टीका सू० १५। ८ में भारद्वाजी वनकार्पासी का उल्लेख है। तथा नया अमर कोश २। ४। ११५ में लिखा है ·····कार्पासी भारद्वाजी भरद्वाजसृष्टित्यागमः।

विशेषण—पुनर्वसु आत्रेय के अनेक विशेषण चरकसंहिता में प्रयुक्त हुए हैं। इनसे उस महान् वैज्ञानिक का व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता आलोकित हो उठती है। यथा—

१. प्रत्यक्षधर्मा	च० सू० २५।२॥
२. प्रजाओं का पितृवत् शरण्य	च० चि० ५।३॥
३. भूतभविष्यदीश ...	,,
४. वदतां वरिष्ठ-वाग्मी	,,
५. मोह तथा मान से ऊपर	च० चि० ६।३॥
६. ज्ञान-तपो-विशाल	,,
७. तीव्र तप तपने वाला	च० चि० १३।३॥
८. आयुर्वेद-विदों में श्रेष्ठ	च० चि० १३।४॥
९. भिषग्विद्या-प्रवर्तक	,,
१०. जितात्मा	,,
११. अव्यग्र	च० चि० १४।३॥
१२. प्रातः जपशील	,,
१३. परावरज्ञ	च० चि० २५।३॥
१४. गतमानमत्व्यथः	,,
१५. ब्राह्मी लक्ष्मी से युक्त	,
१६. धी } से युक्त	च० चि० २७।३४॥
१७. स्मृति	,,
१८. धृति	,,
१९. विज्ञान	,,
२०. ज्ञान	,,
२१. कीर्ति	,,
२२. क्षमा	

२३. हुताग्निहोत्र च० चि० २६।३॥
२४. अग्निवर्चस ''
२५. तत्वज्ञानार्थदर्शी च० चि० ३०।३४॥

सम्पूर्ण आर्य वाङ्मय ऐसे ही चमत्कारी गुणयुक्त ऋषियों की दी हुई सम्पत्ति है। पुनर्वसु भी सिद्धतम-ऋषि-सन्तान होने के कारण दिव्य-गुण-सम्पन्न हुआ। इन सब विशेषणों में एक ऐसा विशेषण है, जिससे एक विशेष ऐतिहासिक तथ्य समझ में आता है। वह संख्या ६ वाला विशेषण यहां पुनः लिखते हैं—

भिषग्विद्याप्रवर्तक

धन्वन्तरि के प्रकरण में लिख चुके हैं कि यहां भिषग्विद्या का स्पष्ट अभिप्राय कायचिकित्सा से है। पुनर्वसु के साथी धन्वन्तरि ने भिषक्-क्रिया अर्थात् शल्य-क्रिया सीखी, परन्तु पुनर्वसु ने भिषक्-विद्या का विशिष्ट प्रचार किया। अतः उसे भिषग्विद्या-प्रवर्तक कहा गया।

अवेस्ता में भिषक् शब्द—पारसी धर्म पुस्तक अवेस्ता में भिषक् के लिए बएरषज्य (Baesazya) शब्द प्रयुक्त हुआ है।[1] पारसी जाति में कभी संस्कृत भाषा का पूर्ण प्रचार था।

गुरु

१. भरद्वाज—चरकसंहिता सूत्र स्थान अ० १ के अनुसार पुनर्वसु आत्रेय का गुरु भरद्वाज था।

२. इन्द्र—अष्टाङ्ग संग्रह सूत्रस्थान, अ० १ में लिखा है कि पुनर्वसु आदि ने इन्द्र से अष्टाङ्ग आम्नाय का ज्ञान प्राप्त करके तन्त्र-रचना की। यथा—

> नरेषु पीड्यमानेषु पुरस्कृत्य पुनर्वसुम्।
> धन्वन्तरि-भरद्वाज-निमि-काश्यप कश्यपाः॥
> तान्दृष्ट्वैव सहस्राक्षो निजगाद यथागमम्।
> आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः॥
> कायबालग्रहोर्ध्वाङ्ग शल्यदंष्ट्राजरावृषैः।
> गतमष्टाङ्गतां पुण्यं बुबुधे यं पितामहः॥
> गृहीत्वा ते तमाम्नायं प्रकाश्य च परस्परम्।

---

[1] श्री हलियाराम कश्यप कृत "दि वैदिक ओरिजिन्स आफ ज़ोरास्ट्रियनिज़्म" सन् १६४०, पृ० १२१, १२२।

आययुर्मानुषं लोकं मुदिताः परमर्षयः ॥
स्थित्यर्थमायुर्वेदस्य तेऽथ तन्त्राणि चक्रिरे ।
कृत्वाग्निवेश-हारीत-भेल-माण्डव्य-सुश्रुतान् ॥
करालादींश्च तच्छिष्यान् ग्राहयामासुराहताः ।
स्वं स्वं तन्त्रं ततस्तेऽपि चक्रुस्तानि कृतानि च ॥
गुरून् संश्रावयामासुस्सर्षिसंघान्सुमेधसः ।
तैः प्रशस्तानि तान्येषां प्रतिष्ठां भुवि लेभिरे ॥

अर्थात्—लोगों के रोग-पीड़ित होने पर पुनर्वसु की प्रमुखता में धन्वन्तरि आदि ऋषि [इन्द्र के पास गए।] इन्द्र ने तत्काल अथर्ववेद के उपाङ्ग आयुर्वेद का आगम के अनुसार प्रवचन किया। यह आगम ब्रह्मा का अष्टाङ्ग ज्ञान था। उस आम्नाय को ग्रहण तथा परस्पर प्रकाशित करके मुदित ऋषिगण मनुष्य-लोक में आए। आयुर्वेद की स्थिति के लिए उन्होंने अपने तन्त्र रचे। तन्त्र रचना करके अग्निवेश, हारीत, भेल, माण्डव्य, सुश्रुत को तथा उनके शिष्य कराल आदियों को वे तन्त्र समझाए। तत्पश्चात् शिष्यों ने अपने तन्त्र रच के बुद्धिमान् ऋषियों की सभा में गुरुओं को सुनाए। उन ऋषियों तथा गुरुओं से स्वीकृत तन्त्र संसार में प्रसिद्ध हुए।

३. अत्रि—पुनर्वसु आत्रेय ने अपने पिता अत्रि से भी आयुर्वेद सीखा। काश्यपसंहिता पृ० ६२ तथा अष्टाङ्गहृदय में इसका उल्लेख है।

शिष्य

१–६. अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत, तथा क्षारपाणि नामक छः शिष्यों ने गुरु आत्रेय से एक साथ आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त किया। चरकसंहिता सू० १।३०, ३१ में इसका वर्णन है। इन शिष्यों में अग्निवेश प्रमुख था। सब शिष्यों ने पृथक्-पृथक् तन्त्र रचे।

आत्रेय तथा ऋषि-सङ्घ अनुमत तन्त्र

छः शिष्यों की तन्त्र-रचना के पश्चात् आत्रेय तथा अन्य अनेक ऋषियों की सभा हुई। अष्टाङ्गसंग्रह के अनुसार धन्वन्तरि आदि गुरुओं के शिष्यों ने भी उस काल तक तन्त्ररचना कर ली थी। अतः उस सभा में सब गुरु एकत्रित हुए। इन सब शिष्यों के तन्त्र उस सभा में सुनाए गए। उन सबकी रचनाएं सुनने के अनन्तर सर्वभूतहितैषि ऋषियों ने प्रसन्नता से कहा—यथावत् रचना की गई है। तदनु परमर्षि-अनुमत ये तन्त्र प्रसिद्ध हुए।

टिप्पणी—उपरिलिखित सन्दर्भ से आर्यों की उच्च सभ्यता तथा ऐतिहासिक दृष्टि का प्रभूत निदर्शन होता है। हम स्थान-स्थान पर लिखते आ रहे

हैं कि अनेक ऋषि सभाओं में सर्वसम्मति से निर्णय करके गुरु-विशेष से ज्ञान प्राप्त करने जाते थे। तदनन्तर उस पर पूर्णतया विचार करते थे। उपरिलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है कि उस उपदेश को ग्रन्थ-रूप में उपनिबद्ध करके ऋषि-सम्मेलन में सुनाया गया। सर्वस्वीकृति के पश्चात् ये ग्रन्थ मान्य हुए। पुनर्वसु के सब शिष्यों में से अग्निवेश का तन्त्र रचना-कौशल के कारण अधिक प्रसिद्ध हुआ।

कितने सुसंस्कृत तथा परिष्कृत थे वे लोग जिन्होंने यह सुन्दर परम्परा बनाई। उस युग में वर्तमान-युग के समान प्रत्येक व्यक्ति मनचाही तथा अनावश्यक रचनाएं नहीं करता था। उन दिनों कागज काला करने की खुली छुट्टी न थी। अतः उस समय व्यर्थ वाङ्मय नहीं बढ़ा।

आत्रेय के प्रधानत्व में वाद-सभाएं

दो प्रकार की ऋषिसभाओं का वर्णन यथाप्रसंग कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त आत्रेय की प्रमुखता में होने वाली तीन वाद-सभाओं का वर्णन चरकसंहिता में मिलता है। उन वाद-सभाओं में सम्मिलित होने वाले ऋषियों की नामावलि आगे प्रस्तुत की जाती है—

प्रथम सभा[1]	द्वितीय सभा[2]	तृतीय सभा[3]
१. काशिपति वामक	१. आत्रेय	१. भृगु
२. मौद्गल्य	२. भद्रकाप्य	२. कौशिक
३. शरलोमा	३. शाकुन्तेय ब्राह्मण	३. काप्य
४. हिरण्याक्ष-कुशिक	४. पूर्णाक्ष मौद्गल्य	४. शौनक
५. कौशिक (शौनक)[4]	५. हिरण्याक्ष कौशिक	५. पुलस्त्य
६. भद्रकाप्य	६. कुमारशिरा भरद्वाज	६. असित
७. भरद्वाज (कुमारशिरा)	७. वार्योविद राजर्षि	७. गौतम
८ काङ्कायन	८. निमि वैदेह	
९. भिक्षुरात्रेय	९. बडिश धामार्गव	
	१०. काङ्कायन बाह्लीक भिषक्	

पुनर्वसु=कृष्ण आत्रेय के वचन

पुनर्वसु आत्रेय के वचनों का संग्रह करना आवश्यक नहीं, क्योंकि आयुर्वे-

---

१. चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय २५॥
२. चरकसंहिता　,,　　,,　२६॥
३. चरकसंहिता सिद्धिस्थान　,,　११॥
४. चरकसंहिता के लाहौर-संस्करण में कौशिक की अपेक्षा शौनक पाठान्तर है।

दीय ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर आत्रेय के मत तथा वचन उद्धृत हैं। वर्तमान आयुर्वेदीय जगत् में पुनर्वसु के कृष्ण नाम पर कुछ सन्देह प्रकट किया जाता है। अतः पुनर्वसु के जितने वचन कृष्णात्रेय नाम से उद्धृत हैं उनका यथा-सम्भव एकत्र करना आवश्यक प्रतीत होता है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय, पृ० ४४२ पर ऐसे आठ वचन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से उद्धृत किए हैं। इनके अतिरिक्त जो वचन हमने संगृहीत किए हैं, उन्हें नीचे लिखा जाता है—

१. कृष्णात्रेयोपि-षष्टिकस्सुकर इत्यादि पठित्वा लघवः कटुपाकाश्चेत्याह। अष्टाङ्गसंग्रह सू०, पृ० ३।

२. कृष्णात्रेयो द्विधारिष्टं स्थिरास्थिरविभेदतः। अ० सं० पृ० ८५।

३. कृष्णात्रेयस्तु षोडशगुणम्। अ० सं० क० पृ० ३६६।

४. कषायपाककल्पोऽयं कृष्णात्रेयेण वर्णितः। अ० सं० पृ० ३७५।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—आत्रेय पुनर्वसु की आयुर्वेदीय रचना अवश्य थी। अष्टाङ्ग-संग्रह सू० पृ० २ के कुछ वचन पूर्व पृ० १८६ पर उद्धृत कर चुके हैं उनमें लिखा है—

तेऽथ तन्त्राणि चक्रिरे

अर्थात्—पुनर्वसु आदि ऋषियों ने इन्द्र से ज्ञान प्राप्त करके अपने तन्त्र रचे। इसके आगे पृ० ४ पर संग्रहकार पुनः लिखता है—

स्वान्यतन्त्रविरोधानां भूयिष्ठं विनिवर्तकः।

अर्थात्—यह (अष्टाङ्गसंग्रह) स्व-तन्त्र तथा अन्य-तन्त्रों के विरोध का अतितरां हटाने वाला है।

इस वचन की टीका में इन्दु लिखता है—

स्वतन्त्रविरोधो य एकस्मिन्नेव तन्त्रेऽन्यस्थानस्थितो ग्रन्थोऽन्यस्थान-स्थितेन विरुध्यते। एतच्च सम्मोहनमात्रनिवृत्तये उक्तं न हि वस्तुतो विरुद्धस्सम्भवति। परतन्त्रविरोधो यथा चरकग्रन्थेन कृष्णात्रेयो विरुद्धः।

इस सन्दर्भ में चरक तथा कृष्णात्रेय के ग्रन्थ को स्पष्टतया पर-तन्त्र कहा है। स्पष्ट है कि पुनर्वसु की एक रचना कृष्णात्रेय नाम से थी। इसी कारण चरक तथा कृष्णात्रेय के मत में कुछ न्यूनाधिक्य हुआ है।

गदनिग्रह भाग प्रथम में कई योग कृष्णात्रेय की संहिता से उद्धृत किये गए हैं—

कृष्णात्रेयाद्व्रणे महागौर्याद्यं घृतम्।

स्पष्ट है कि शोढल के पास अन्य संहिताओं तथा तन्त्रों के अतिरिक्त कृष्णात्रेय की आयुर्वेदीय रचना भी विद्यमान थी। उसमें से अनेक योग गद-निग्रह में उद्धृत हैं।

आत्रेय की पाँच संहिताएं

मुद्रित हारीतसंहिता अ० १ में ऋषि आत्रेय की पांच संहिताओं का उल्लेख है—

> चतुर्विंशसहस्रैस्तु मयोक्ता चाद्यसंहिता।
> तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता मता॥
> तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च।
> पञ्चमी दिक् पञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः॥

अर्थात्—मैंने पहिली संहिता चौबीस सहस्र श्लोकों में कही है। दूसरी संहिता द्वादशसाहस्री थी। तीसरी षट्सहस्र श्लोकात्मिकता थी। चौथी तीन सहस्र श्लोकों में कही गई। पांचवीं संहिता में पांच सौ श्लोक थे।

भरत-नाट्यवेद की दो संहिताएं—प्रसिद्ध नाट्यशास्त्र रचियता भरत (महाभारत युद्ध से बहुत पूर्व) के नाट्यशास्त्र की दो संहिताएं थीं। एक थी द्वादशसाहस्री तथा दूसरी षट्साहस्री।

> एकं द्वादशसाहस्रैश्श्लोकैरेकं तदर्धतः।
> षड्भिश्श्लोकसहस्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः॥

इसी प्रकार कुमारिल (विक्रम संवत् ६०० से पूर्व) का ग्रन्थ भी तीन प्रकार का था— १. बृहट्टीका, २. टुप् टीका, ३. लघु टीका।

अतः हारित के अनुसार यदि आत्रेय की पांच प्रकार की संहिता थी, तो इसमें सन्देह नहीं।

वसेन अपने को आत्रेय संहिता का रूपान्तर लिखता है।

आत्रेयसंहिता के विषय में गिरिन्द्रनाथ का लेख

मुखोपाध्यायजी हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय, पृ० ४३१-४३३ पर मिसिज मैनिङ्ग कृत एंशिएंट एण्ड मेडिविअल इण्डिया, भाग प्रथम पृ० ३४०-३४२ से आत्रेय संहिता का विस्तृत विवरण लिखते हैं। संक्षेप में उसकी कुछ आवश्यक बातें हम नीचे लिखते हैं—

१. इस ग्रन्थ के अनेक भाग हैं।

२. प्रथम भाग में २१ अध्याय हैं।

३. द्वितीय भाग में आठ अध्याय हैं, तथा यह अरिष्टक कहाता है।

४. तृतीय भाग में चिकित्सा है। गिरिन्द्रनाथ जी लिखते हैं कि यह भाग

चिकित्सा-विषयक अति-सूक्ष्म परीक्षण बताता है, जिनका ज्ञान उन पृष्ठों में ही हो सकता है।

५. अन्तिम भाग में अगदों का वर्णन है।

इस विवरण के अनुसार आत्रेय-संहिता अत्यन्त व्याख्यापूर्ण थी।

आत्रेय-संहिता के उपलब्ध हस्तलेख—अनेक पुस्तकालयों में आत्रेयसंहिता के हस्तलेख उपलब्ध होते हैं।

१. बड़ोदा पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि संख्या ११४, प्रवेश-संख्या ५८२६ के अन्तर्गत आत्रेय संहिता का उल्लेख है।

२. गिरिन्द्रनाथ जी लिखते हैं कि—डाक्टर भण्डारकर के सेकेण्ड रिपोर्ट फार दी सर्च आफ संस्कृत मेन्युस्कृप्ट्स पृ० ४६ पर आत्रेयसंहिता की एक अति-प्राचीन प्रति उल्लिखित है।

३. L. २६३३ के अन्तर्गत एक अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध है।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने चरकसंहिता के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में से आत्रेय पुनर्वसु के नाम मे सात योग संगृहीत किए हैं। कृष्ण-आत्रेय के नाम से एकत्रित योगों की संख्या बीस है।

हमने चरकसंहिता में से कृष्ण-आत्रेय नाम से उल्लिखित दो नए योग ढूंढे हैं—

१. बला तैल च० चि० २८।१४८-१५६।।

२. अमृताद्य तैल च० चि० २८।१५७-१६४।।

पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके हैं कि हारीतसंहिता के अनुसार च्यवनप्राश नामक योग भी कृष्णात्रेय का है। इस प्रकार कुल योग हुए तीस।

इति कविराज सूरमचन्द्र कृते आयुर्वेदेतिहासे नवमोऽध्यायः।

दशम अध्याय

अष्टाङ्ग विभाजन-क्रम

प्रत्यक विद्या के प्रथम प्रवक्ता के लक्षश्लोकात्मक आयुर्वेदीय आगम का उल्लेख पूर्व पृ० २० पर हो चुका। यह आगम अतिविस्तृत तथा गम्भीर था। इसमें आयुर्वेद का स्वरूप क्रमबद्ध तथा परमवैज्ञानिक परिभाषाओं आदि से युक्त था। लोगों की आयु तथा बुद्धि का ह्रास देख ब्रह्माजी ने उस विस्तृत आगम को अष्टाङ्गविभागात्मक करा जीका या दक्षिके उत्तरवर्ती आचार्य जापति दक्ष, अश्विद्वय तथा इन्द्र को यह ज्ञान परम्परा-क्रम से मिलता गया। मानवयुग से बुद्धि का अधिकाधिक ह्रास हुआ, अतः अष्टाङ्गविभागात्मक यह ज्ञान अधिक संक्षिप्त यद्यपि व्याख्यामय होता गया। ऐसे काल में ऋषिसम्मत परमर्षि भरद्वाज ने इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेदीय ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु युग ह्रास के कारण मानव-बुद्धि अधिक मन्द हो रही थी। अतः परमकारुणिक ऋषियों को वारम्वार गुरु का आश्रय लेना पड़ा। वाग्भट अपने संग्रह में लिखता है कि एक वार धन्वन्तरि, भरद्वाज आदि ऋषि पुनर्वसु की प्रमुखता में देवराज इन्द्र से उपदेश लेने गए। इस वार भी इन्द्र ने आगम के आधार पर अष्टाङ्गविभागात्मक उपदेश किया। ऋषिगण ने सम्प्राप्त-ज्ञान पर वहीं परस्पर विमर्श किया। इस काल में पुनर्वसु तथा धन्वन्तरि आदि की रचनाएँ विशिष्ट हुईं। ये रचनाएं अष्टाङ्गपूर्ण होती हुई भी किसी विशेष अङ्ग पर अधिक बल देती थीं। यथा—धन्वन्तरि ने भिषक्-क्रिया पर बल दिया, तो पुनर्वसु ने कायचिकित्सा पर। काश्यप ने कौमारभृत्य को प्रथम स्थान दिया। इस पद्धति पर उत्तरोत्तर विभक्त अष्टाङ्ग आयुर्वेद-ज्ञान इस युग के लोगों को बुद्धि-गम्य हुआ।

सर प्रफुल्लचन्द्र रे का भ्रम—जर्मन भाषा-मत से प्रभावित आचार्य रे ने इस ऐतिहासिक तथ्य पर अविश्वास करके "दि हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री" भाग प्रथम की भूमिका अ० २, पृ० ११ पर लिखा है—

We now alight upon a period when we find the

Hindu system of medicine methodised and arranged on a rational basis with a scientific terminology.

अर्थात्—(अथर्ववेद के जादू टोने के युग के पश्चात्) अब हम एक ऐसे युग में पदार्पण करते हैं जब हिन्दू-चिकित्सा-पद्धति को नियमित तथा युक्ति-युक्त आधार पर क्रमबद्ध और वैज्ञानिक परिभाषाओं से युक्त पाते हैं। इति।

रे महोदय के इस वाक्य से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. आयुर्वेद का इतिहास वैदिक तथा आयुर्वैदिक युगों में विभक्त है।

२. आयुर्वैदिक युग से पूर्व अर्थात् वैदिक युग में हिन्दू-चिकित्सा-पद्धति परिपूर्ण नहीं थी। उसमें अनेक न्यूनताएं थीं।

३. चरक से पूर्व विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति का अभाव था।

४. इस युग से पूर्व हिन्दू-चिकित्सा का क्रम युक्तियुक्त आधार पर आश्रित न था।

५. आयुर्वैदिक युग से पूर्व आयुर्वेद की वैज्ञानिक परिभाषाएं न थीं।

अब हम इन विचारों की क्रमशः आलोचना करते हैं।

१. आर्य-इतिहास में वैदिक युग की कल्पना करना आर्य वाङ्मय तथा आर्यजाति के साथ भारी अन्याय करना है। वर्तमान पाश्चात्य लेखकों ने मिथ्या जर्मन भाषामत के आधार पर भारतीय इतिहास में वैदिक वाङ्मय के तीन काल माने हैं, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल तथा सूत्रकाल। इसी विचारधारा के प्रभाव से आचार्य रे ने आयुर्वेद के इतिहास में वैदिक तथा आयुर्वैदिक युगों की कल्पना की, तथा चरक से पूर्ववर्ती सम्पूर्ण आयुर्वेदाचार्यों को अवैज्ञानिक मान उन्हें कल्पित वैदिक-युग में रख दिया। अपरञ्च उस वैदिक युग को अथर्ववेद के जादू टोनों का युग कह दिया।

आदिकाल के ब्रह्मा आदि महान् वैज्ञानिकों का क्रमबद्ध इतिहास इस ग्रन्थ में लिखा गया है। पूर्वकाल के इन आचार्यों के अनेक वचन, मत तथा योग हम उद्धृत करते आ रहे हैं। उनके ये वचन उन्हीं की भाषा में हैं। उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन आचार्यों ने लोकभाषा संस्कृत में परम वैज्ञानिक रचनाएं कीं। उन्हीं आचार्यों ने किञ्चित् विभिन्न शैली में ब्राह्मण-ग्रन्थ रचे। अतः ब्राह्मणकाल तथा लोकभाषाकाल पृथक् नहीं थे। एक ही काल में ये सब रचनाएं हो रही थीं। आथर्वण ऋचाओं में जो जादू-टोने समझे जाते हैं, उनका कुछ स्पष्टीकरण आगे भूतविद्या-प्रकरण में करेंगे। अधिक विस्तार के लिए पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता है।

श्री तारापद भट्टाचार्य—भारतीय वाङ्मय के सब अंगों के इति-

हास में पाश्चात्यानुयायी यही कठिनाई अनुभव करते हैं। इसका स्वल्पाभास वास्तुविद्या पर लिखने वाले तारापदजी (सन् १९४७) को भी हुआ है। यथा—

Many scholars think that the list (of ancient teachers of Vastu) is a mere traditional one and that the persons mentioned had not really written any work on Vastu.......I shall try to show below that both these objections are untenable (p. 89)

अर्थात्—बहुत विद्वान् सोचते हैं कि मत्स्यपुराण में उल्लिखित वास्तु-विद्या के १८ उपदेशक भृगु, अत्रि, ब्रह्मा आदि ने वास्तु-विद्या का कोई ग्रन्थ नहीं लिखा···मैं इन आक्षेपों की निराधारता आगे लिखूंगा। इति।

यदि तारापदजी के मन से मैक्समूलर आदि के मिथ्या भाषामत का रहा-सहा प्रभाव भी चला जाता, तो वे इस पूर्व-पक्ष का बहुत अधिक खण्डन करते।

स्पष्ट है कि पं० भगवद्दत्त जी ने सन् १९२७ में जिस भूल का उद्घाटन वैदिक वाङ्मय का इतिहास ब्राह्मण भाग में कर दिया था, उसकी ओर अब विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है।

२. भारतीय इतिहास में सर्वसम्मत है कि प्रत्येक विद्या का प्रथम-प्रवक्ता तथा आदि-विद्वान् ब्रह्मा था। यद्यपि उत्तरकाल में किसी भी चतुर्वेदविद् व्यक्ति के लिए ब्रह्मा पद प्रयुक्त हो सकता था, तथापि आदिदेव ब्रह्मा निस्सन्देह ऐतिह्य-सिद्ध एक विशेष व्यक्ति था। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, मोक्षशास्त्र, अश्वशास्त्र, तथा हस्तिशास्त्र आदि प्रत्येक विषय के आदिम ग्रन्थों का रचयिता ब्रह्मा था। उसने प्रत्येक विषय का परिपूर्ण ज्ञान दिया। उस ज्ञान में किसी प्रकार की न्यूनता न थी। मनुष्यों की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के उत्तरोत्तर ह्रास के कारण अति विस्तृत प्राचीन ग्रन्थ शनैः शनैः संक्षिप्त परन्तु व्याख्यामय होने लगे। इस प्रकार आयुर्वेद का मूल प्रवक्ता भी ब्रह्मा था। ब्रह्मा के आगम के आधार पर प्रवृत्त आर्य-चिकित्सा-पद्धति आदि से सर्वाङ्गपूर्ण थी।

भारतीय इतिहास का यह चिर-विस्मृत पक्ष इतिहासाचार्य पं० भगवद्दत्तजी[1] तथा महावैयाकरण श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक[2] ने परम

---

१. देखो पं० भगवद्दत्त जी कृत भारतवर्ष का इतिहास द्वि० सं०, पृ० ३१ तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० ७२-७९।

२. पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक कृत संस्कृत व्या० शा० इतिहास पृ० १०—।

प्रबल युक्तियों से उपस्थापित किया है।

३. चरक मुनि अग्निवेश-तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता-मात्र था। उसने मूल-तन्त्र को निःसन्देह अधिक व्याख्या-युक्त किया। उस व्याख्या-युक्त रचना को देख रे महोदय भ्रम में पड़ गए। फलतः यह कहना कि चरक से पूर्व आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति विशिष्ट न थी, आयुर्वेद पर भारी कुठाराघात है। पूर्व लेख से हम स्पष्ट कर चुके हैं कि चरक से पूर्व अग्निवेश का ऋषिसम्मत तं विद्यमान था।[1] अग्निवेश से पूर्व अन्य अनेक आचार्यों के अतिरिक्त, अद्भुत मृतसंजीवनी विद्या के ज्ञाता भृगु तथा उशना दोनों पिता-पुत्र के आयुर्वेदीय शास्त्र विद्यमान थे। परम रसायनज्ञ देवराज इन्द्र तथा अश्विद्वय की रचनाओं का तो कहना ही क्या। ऐसे अद्भुत आचार्यों की रचनाओं को विशिष्ट पद्धति-हीन कहना सर्वथा इतिहास-विरुद्ध है। रे जो पुरातन इतिहास में यदि अधिक यत्नवान होते तो ऐसी भयङ्कर भूल न करते।

४. आज के युग में अधिकतर वैद्य चरक तथा सुश्रुत संहिताओं के आधार पर चिकित्सा नहीं करते, अपितु संग्रह-ग्रन्थों का अधिक प्रयोग करते हैं। निश्चित है कि चरक के युग की अपेक्षा वर्तमान युग के लोगों की बुद्धि का अधिकाधिक ह्रास हो गया है। एवं आपाततः मानना पड़ेगा कि वर्तमान काल की अपेक्षा पूर्व, पूर्वतर तथा पूर्वतम काल में आयुर्वेद-ज्ञान विस्तृत, विस्तृततर तथा विस्तृततम था। चरक से प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों के उपलब्ध उद्धरणों में प्रायः वही परिभाषाएं मिलती हैं जो चरक आदि में व्यवहृत हैं। अतः यह कहना कि चरक के काल से वैज्ञानिक परिभाषाओं का प्रयोग आरम्भ हुआ, सम्पूर्ण आयुर्वेदीय आगम, तन्त्र तथा संहिताओं की उपेक्षा करना अपरञ्च परम सत्यनिष्ठ ऋषि मुनियों को अनृतवादी सिद्ध करना है।

---

१. इस विषय का विशेष वृत्त "अग्निवेश-तन्त्र का स्वरूप" नामक शीर्षक के अन्तर्गत आगे पृष्ठ २०१ पर देखें।

भारत में कायचिकित्सा का विस्तार

छः आत्रेय शिष्य

३३. अग्निवेश (अलौकिक प्रतिभावान्) ।।१।।

वंश—ऐतिहासिक कहते हैं कि अग्निवेश अग्नि का पुत्र था। भागवत पुराण ६।२।२१–२२ में इसे देवदत्त का पुत्र तथा अग्नि का अवतार लिखा है। अग्निवेश का इससे अधिक परिचय अभी नहीं मिल सका। मत्स्य १९६।१२ में अग्निवेश्य नाम अङ्गिरा गोत्रान्तर्गत है।

अपरनाम—पुरातन आर्य वाङ्मय में नाम के पर्यायों के प्रयोग की विधि भी पाई जाती है। अग्नि के दो पर्याय वह्नि तथा हुताश भी हैं। अतः चरक-संहिता में अग्निवेश के स्थान में वह्निवेश (सू० १३।३) तथा हुताशवेश (सू० १७।५) नामों का प्रयोग भी हुआ है।

अनेक स्थानों में अग्निवेश्य नाम मिलता है। अष्टाध्यायी ४।१।१०५ के अनुसार यह गोत्रापत्य प्रत्यान्त नाम है।

व्याख्या मधुकोश पृ० २४८ पर श्रीकण्ठदत्त लिखता है—

हुताश इति अग्निवेश-सम्बोधनम्। चरके हुताशवेशशब्देनाग्नि-वेशोऽभिधीयते।

अर्थात्—यहाँ पर हुताश अग्निवेश का सम्बोधन है, क्योंकि चरक में हुताशवेश शब्द से अग्निवेश कहा जाता है।

काल—श्री दाशरथि राम के काल के कुछ पूर्व से भारत युद्ध से लगभग २५० वर्ष पूर्व तक अग्निवेश जीवित रहा। इस लम्बे काल में उसने अनेक मुनियों को आयुर्वेद ज्ञान दिया। द्रोण जी उससे सक्रिय धनुर्वेद सीखते थे।

ब्रह्माण्ड पुराण ३।४७।४९ के अनुसार जामदग्न्य परशुराम के अश्वमेध यज्ञ में काश्यप, गौतम, विश्वामित्र, मार्कण्डेय तथा भरद्वाज के साथ वेदवेदाङ्ग-पारग अग्निवेश्य भी भाग ले रहा था।

पालकाप्य मुनि के हस्ति-आयुर्वेद के १।१।२५, २८ श्लोक के अनुसार महाराज रोमपाद की सभा में अग्निवेश्य और पराशर दोनों उपस्थित थे।

चौबीसवें परिवर्त में जब वाल्मीकि=ऋक्ष व्यास था, तब उसके साथ शालिहोत्र और अग्निवेश्य भी थे। (देखो, वायु पु० २३।२०७।।)

अग्निवेश्य तथा वाल्मीकि की याजुष शाखाएं थीं। तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य-कार ने १।९।४ में इन दोनों आचार्यों की शाखाओं में प्रयुक्त होने वाले विसर्ग विषयक एक समान नियम का निर्देश किया है। इस सूत्र की व्याख्या में माहिषेय लिखता है—**अग्निवेश्यवाल्मीक्योः शाखिनोः**। निश्चय है कि दोनों आचार्य समकालिक थे।

अतः पूर्वोक्त काल लगभग ठीक गिना गया है।

स्थान—महाभारत आ० १४१।४१ के प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि अग्निवेश का आश्रम था। उसका स्थान अन्वेषणीय है।

गुरु

१. पुनर्वसु आत्रेय—अग्निवेश का आयुर्वेद-विद्या-दाता गुरु भिषग्विद्या-प्रवर्तक पुनर्वसु आत्रेय था।

२. भरद्वाज—महाभारत आ० १४०।४१ के अनुसार अग्निवेश ने ऋषि भरद्वाज से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया—

अग्निवेश्यं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः॥

स्पष्ट है कि प्रतापी भरद्वाज ने महाभाग अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखाया।

सम्भवतः परमर्षि भरद्वाज से समय-समय पर आयुर्वेद का ज्ञान भी अग्निवेश ग्रहण करता रहा।

३. अगस्त्य—पूर्व पृ० ७४ पर लिख चुके हैं कि अग्निवेश ने ऋषि अगस्त्य से धनुर्वेद सीखा। महाभारत आ० १५१।१२ के पाठ से ज्ञात होता है कि अग्निवेश को ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र प्राप्त था।

शिष्य

१. आचार्य द्रोण—भारत-युद्ध काल के समस्त क्षत्र-समूह का धनुर्वेदाचार्य द्रोण अग्निवेश महर्षि का शिष्य था। यथा—

महर्षेरग्निवेश्यस्य सकाशमहमच्युत।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदजिघृक्षया॥

महा० १४१।४१॥

अर्थात्—मैं धनुर्वेद सीखने की इच्छा से महर्षि अग्निवेश के पास गया।

२. महाराज द्रुपद—गुरु द्रोण के साथ ही पाञ्चाल्य यज्ञसेन=द्रुपद

ने भी महर्षि अग्निवेश के आश्रम में धनुर्वेद सीखा था ।

पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबल ।
इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ॥
महा० आ० १४१।४३ ॥

अर्थात्—पाञ्चाल्य यज्ञसेन भी धनुर्वेद सीखने की इच्छा से उसी गुरु के पास रहता था ।

पराशर-सतीर्थ्य

पराशर तथा भेलादि अन्य पांच ऋषि अग्निवेश के सतीर्थ्य थे । गुरु आत्रेय से प्राप्त ज्ञान उन्होंने बहुधा समान शब्दों में लिखा है । पराशर तथा अग्निवेश का एक ऐसा वचन हम नीचे उद्धृत करते हैं—

अग्निवेश

आदिकाले हि अदितिसुतसमौजसोऽतिविमलविपुलप्रभावा व्यपगत—आलस्यपरिग्रहाश्च पुरुषा बभूवुरमितायुषः । भ्रश्यति तु कृत-युगे साम्पन्निकानां शरीरगौरवमासीत् सत्वानाम् गौरवात् श्रमः, श्रमादालस्यम्, आलस्यात् सञ्चयः, सञ्चयात् परिग्रहः, परिग्रहात् लोभः प्रादुर्भूतः कृते । चरक सं० विमान अ० ३ ।

पराशर

पुरा खलु—अपरिमित-शक्ति-प्रभा-प्रभाव-वीर्य ······ धर्मसत्व-शुद्धतेजसः पुरुषाः बभूवुः । तेषां क्रमाद् अपचीयमानसत्वानाम् उपचीय-मानरजस्तमस्कानां लोभः प्रादुरभवत् । लोभात् परिग्रहम् । परिग्रहात गौरवम् । गौरवाद् आलस्यम् । आलस्यात् तेजोऽन्तर्दधे ।

इन दोनों वाक्यों में शैलि तथा भाव-साम्य आश्चर्यकर है । हमारे पास आयुर्वेदीय पराशर-तन्त्र इस समय उपलब्ध नहीं । पराशर का पूर्वोद्धृत वचन पराशरकृत ज्योतिष संहिता का है । वह संहिता भी अभी उपलब्ध नहीं । यह वचन भट्ट उत्पल (शक ८८८) ने वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता की टीका में उद्धृत किया है ।

विशेषण—चरकसंहिता में अग्निवेश के केवल तीन विशेषण प्रयुक्त हुए हैं । परन्तु ये विशेषण इतने आवश्यक हैं कि इन्हें लिखे विना हम नहीं रह सकते । इन्हीं तीन गुणों से अग्निवेश का व्यक्तित्व अद्भुत प्रभावशाली हो गया ।

१. धीमान्—इस गुण ने अग्निवेश को चिर स्मरणीय बना दिया । गुरु उस शिष्य से प्रसन्न होते हैं जो तीक्ष्ण-बुद्धि हो । शिष्य की प्रखर-बुद्धि से गुरु की विद्या चमक उठती है ।

२. कृताञ्जलि[1]—सम्पूर्ण आर्ष-शास्त्र इस विषय में एकमति हैं कि शिष्य को परम-विनीत होना चाहिए। अग्निवेश अति विनीत था। वह गुरु के समीप सविनय उपस्थित होता था।

३. यथासमय प्रश्न पूछने वाला—चरकसंहिता के अनेक प्रकरणों में लिखा है—

अग्निवेशो गुरुं काले विनयादिदमुक्तवान्।[2]

अर्थात्—अग्निवेश ने यथासमय विनय-पूर्वक गुरु को यह कहा।

वस्तुतः अग्निवेश देख लेता था कि गुरु श्रान्त तथा अन्यविषयासक्त-बुद्धि तो नहीं। ऐसे समय में प्रश्न करने से गुरु के अन्तस्तल से ज्ञान के सूक्ष्म तत्वों का भण्डार उमड़ पड़ता था। अतः यह विशेषण वारम्वार प्रयुक्त हुआ है।

अग्निवेश-तन्त्र

रचना-कौशल में सर्वोत्तम—गुरु से आयुर्वेद सीखकर अग्निवेश ने तन्त्र रचा। आत्रेय पुनर्वसु के शिष्यों में अग्निवेश सबसे अधिक कुशाग्र-बुद्धि तथा तन्त्र-रचना कुशल था। चरकसंहिता सू० १।१ में इसका सुन्दर उल्लेख है—

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः।
तन्त्रस्य कर्ता प्रथमं अग्निवेशो यतोऽभवत्।

अर्थात्—मुनि पुनर्वसु के उपदेश में कोई भेद न था। परन्तु बुद्धि की विशेषता से तन्त्र-कर्ताओं में अग्निवेश प्रथम रहा।

कायचिकित्सा-प्रधान—आत्रेय-शिष्यों ने गुरु से काय-चिकित्सा का विशिष्ट उपदेश लिया। अतः अग्निवेश-तन्त्र अष्टाङ्गात्मक होते हुए भी कायचिकित्सा-प्रधान हुआ।

नागार्जुन-प्रतिसंस्कृता सुश्रुतसंहिता, उ० १।६ में लिखा है—

षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ता परमर्षिभिः।

अर्थात्—[सुश्रुत सं० के इस उत्तर तन्त्र में पृथग्विध रोग कहे जायेंगे] जो काय-चिकित्सा के ग्रन्थों में परमर्षियों ने कहे हैं।

इस वचन की व्याख्या में डल्हणाचार्य लिखता है—

षट्सु कायचिकित्सासु अग्निवेश - भेड - जतूकर्ण-पराशर-हारीत-क्षारपाणि-प्रोक्तासु।

---

1. चरकसंहिता, लाहौर संस्करण चि० १७।३॥
2. ,, ,, चि० २१।२॥

अर्थात्—अग्निवेशादि [छः आत्रेय-शिष्यों से] प्रोक्त कायचिकित्सा के छः ग्रन्थ हैं।

इसका अभिप्राय है कि अग्निवेश-तन्त्र कायचिकित्सा-परक था। नागार्जुन द्वारा सौश्रुत-तन्त्र के प्रतिसंस्कृत होने के समय मूल अग्निवेश-तन्त्र उपलब्ध था।

वाग्भट के संग्रह तथा हृदय का आधार अग्निवेश-तन्त्र

१. अष्टाङ्गहृदय का कर्ता वाग्भट सूत्रस्थान १।४ में लिखता है—

तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे।
तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः।
क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम् ॥

अर्थात्—उन आत्रेय आदिकों ने अग्निवेश आदि को आयुर्वेद ज्ञान दिया। उन्होंने पृथक् तन्त्र रचे। उन अतिविस्तीर्ण अग्निवेशादि के तन्त्रों से यह अनति-संक्षिप्त तथा अनति-विस्तृत अष्टाङ्गहृदय रचा जाता है।

निश्चित है कि अष्टाङ्गहृदय की रचना का आधार अन्य तन्त्र तथा अग्निवेश-तन्त्र भी था।

२. अष्टाङ्गसंग्रह उत्तरस्थान, अध्याय ५०, पृ० ४८० पर वाग्भट लिखता है कि ब्रह्मा के लक्षश्लोकात्मक आगम का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके अग्निवेशादि ने अपने तन्त्र रचे—

आयुर्वेदं श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्रह्माम्नासीदग्निवेशादयस्तु।
कृत्स्नज्ञेयप्राप्तसाराः स्वतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधाङ्गं वितेनुः॥
समाधिगम्य गुरोरवलोकितात्……………।

इस वचन पर इन्दु अपनी व्याख्या शशिलेखा में लिखता है—

मया च अग्निवेशादिकृतायुर्वेदाङ्गविभागविनिश्चयो रचितः।

अर्थात्—मैंने अग्निवेशादि रचित आयुर्वेदीय तन्त्रों के अनुकूल अङ्गविभाग का विनिश्चय अर्थात् अष्टाङ्गसंग्रह रचा है—

अग्निवेश तन्त्र का स्वरूप

यह सर्वमान्य है कि अग्निवेश ने तन्त्र-रचना की। पुरातन संग्रह-ग्रन्थों तथा टीकाओं में अग्निवेश के ग्रन्थ के लिए तन्त्र शब्द प्रयुक्त हुआ है, परन्तु चरकसंहिता चिकित्सास्थान पृ० ६४० पर चक्रपाणिदत्त लिखता है—

अत्राग्निवेशसंहितायामभिधीयते।

अर्थात—अग्निवेश-संहिता में यह कहा जाता है।

क्या अग्निवेश की कोई संहिता भी थी। तन्त्र और संहिता में भेद है।

जेज्जट की टीका में उद्धृत अग्निवेश-तन्त्र के वचन

जेज्जट अपनी टीकामें कहीं कहीं अग्निवेश-तन्त्र के वचन उद्धृत करता है। उन वचनों से अग्निवेश-तन्त्र के स्वरूप का कुछ आभास प्राप्त होता है। यथा—

१. अग्निवेशतन्त्रं चरकाचार्येण संस्कृतम्। तथा हि तद्वचः[1]—

धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसां व्यापिनो मलाः।
तापयन्तस्तनुं सर्वां तुल्यदूष्यादिवर्धिताः।
बलिनो गुरवः स्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः।
सन्ततं निष्प्रतिद्वन्द्वं ज्वरं कुर्युः सुदुःसहम्।
मलाज्ज्वरोष्मा धातून्वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः।
सर्वाकारं रसादीनां शुद्ध्याऽशुद्ध्यापि वा क्रमात्।
वातपित्तकफैः सप्त दश द्वादशवासरान्।
प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च॥

२. अत्राग्निवेशसंहितायामभिधीयते—

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके।
पादशेषेण तेनाथ यवागूरुपकल्पयेत्।
कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम्।
विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम्। इति॥[2]

चक्रपाणिदत्त की टीका में उद्धृत अग्निवेश-तन्त्र का वचन

३. अग्निवेशो हि श्रूयते—

द्रव्यमापोथितं क्वाथ्यं दत्वा षोडशिकं जलम्।
पादशेषं च कर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः।
चतुर्गुणेनाम्भसा वा द्वितीयः समुदाहृतः। इति चि० ३।१९७

अग्निवेश-तन्त्र के इन वचनों से स्पष्ट है कि चरक से पूर्व भी अग्निवेश का तन्त्र लोकभाषा संस्कृत में विद्यमान था। वह ब्राह्मण-ग्रन्थों के वर्तमान प्रवचन से पूर्व रचा गया था। पुरातन-परम्परा को असत्य सिद्धकरनेवाले, कल्पित जर्मनभाषामत पर यह कुठाराघात है।

इन वचनों में वही वैज्ञानिक परिभाषाएं वर्ती गई हैं, जो अपर काल के चरक आदि ने स्वीकारकी हैं। पहले वचन में पूर्ण विशिष्ट-पद्धति तथा नियमित क्रम का दिग्दर्शन है। अतः रे महोदय का मत (पृ० १९५) तथ्य-हीन है।

---

१. चरकसंहिता चिकित्सास्थान, अ० ३, पृ० ८९६, लाहौर संस्करण।
२. „ „ „ „ „ ९४०, „ „ ।

संख्या २ का पहला श्लोक कुछ पाठान्तर से तत्त्वचन्द्रिका, पृ०५ पर भी है।

गदनिग्रह में अग्निवेश-तन्त्र से उद्धृत आठ योग

४—११. गदनिग्रह भाग प्रथम में अग्निवेश तन्त्र से आठ योग उद्धृत किए गए हैं। इन सब योगों के आरम्भ में लिखा है—

अग्निवेशात्

अर्थात्—अग्निवेश-तन्त्र से।

१२. वाग्भट अपने अष्टाङ्गसंग्रह के नि०, अ० २, पृ० १८ पर अग्निवेश का मत कह कर दो श्लोक उद्धृत करता है। तुलना करो संख्या १ का वचन।

१३-१९. उपरिलिखित वचनों के अतिरिक्त मुखोपाध्याय जी ने व्याख्या कुसुमावलि, निबन्धसंग्रह तथा तत्वचन्द्रिका से अग्निवेश के सात अन्य वचन संगृहीत किए हैं।

२०. पालकाप्यकृत हस्ति-आयुर्वेद के चतुर्थस्थान अ० ४ के आरम्भ में गार्ग्य, गौतम, तथा भरद्वाज के साथ अग्निवेश का मत उल्लिखित है—

प्रयोगात् स्नेहान् सप्ताग्निवेशः।

ग्रन्थ

१. अग्निवेश तन्त्र —आयुर्वेद का पूर्व लिखित महान् ग्रन्थ।

२. नाड़ी परीक्षा—बड़ोदा पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि वैद्यक प्रकरण संख्या १२४, प्रवेश संख्या १५७९ के अन्तर्गत अग्निवेश का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३. अग्निवेश्य हस्तिशास्त्र—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचि संख्या ३७९१ के अन्तर्गत शिवरामभूपति के कल्पनारत्न का उल्लेख है। यह ग्रन्थ हस्तिविद्यापरक है। इस ग्रन्थ में अग्निवेश के हस्तिशास्त्र का उल्लेख है।

एल० राईस द्वारा भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ० २४४, २४५ पर एक शिलालेख का उल्लेख है। उस शिलालेख में गाङ्गराज श्रीपुरुष के गज-शास्त्र का वर्णन है। श्रीपुरुष का राज्यकाल शक ६७२-६९८ अथवा विक्रम संवत् ८०७-८३३ है। शिलालेख के अनुसार श्रीपुरुष का उत्तराधिकारी शिवमार था (विक्रम सं० ८४०)। शिवमार ने भी गजशास्त्र रचा था। सम्भव है कल्पनारत्न का रचयिता शिवरामभूपति तथा शिलालेख वाला राजा शिवमार एक हों।

४. अग्निवेश रामायण—न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम पृ० ३० पर अग्निवेश-रामायण का उल्लेख है।

५. अग्निवेश-संहिता[1]—पूर्व पृ० १९७ पर तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के प्रमाण से लिख चुके हैं कि कृष्ण यजुर्वेद की अग्निवेश-संहिता भी थी। वह इस समय उपलब्ध नहीं। अग्निवेश कल्प का रचयिता भी अग्निवेश था। इसका एक भाग आग्निवेश्य-गृह्यसूत्र प्रकाशित हो चुका है।

३४. भेल = भेड ॥२॥

वंश—भेल के वंश के विषय में अभी हम कुछ नहीं कह सकते।

नाम—पुरातन ग्रन्थों में भेल तथा भेड दोनों नाम प्रयुक्त हुए हैं।

काल—अग्निवेश का काल ही भेल का काल था। काश्यप संहिता में अनेक आयुर्वेदीय विचार-परिषदों का वर्णन है। ऐसी ही एक परिषद् में गार्ग्य, माठर, आत्रेय पुनर्वसु, पाराशर्य तथा कश्यप के साथ भेल भी उपस्थित था।[2] निश्चय है कि भेल इन सब आचार्यों का समकालिक था। भेलसंहिता में वर्णित एक आयुर्वेद-परिषद् में बडिश, शौनक, खण्डकाप्य, पराशर, भरद्वाज काश्यप तथा भेल उपस्थित थे।[3] इस परिषद् का प्रधान पुनर्वसु आत्रेय था। इससे ज्ञात होता है कि आत्रेय पुनर्वसु तथा भेल, दोनों गुरु-शिष्य साथ-साथ अनेक सम्मेलनों में विद्यमान थे। चरकसंहिता सू० १।३१ में लिखा है कि अग्निवेश तथा ल आदि भेड: सहपाठियों ने एक काल में ही तन्त्र-रचना की। जेज्जट, वाग्भट (तीसरी-चौथी शती विक्रम), सुश्रुत-प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन आदि पूर्व, पूर्वतर तथा पूर्वतम आचार्य अपने ग्रन्थों में इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

गुरु—पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय भेल का गुरु था। अग्निवेशतन्त्र के समान भेलसंहिता में मूल-उपदेष्टा पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय है।

भेल-तन्त्र—भेल का तन्त्र कायचिकित्सा-परक था। पूर्व प्रमाणों से निश्चय होता है कि भेल तथा अग्निवेश के तन्त्र समकाल में रचे गए। परन्तु रचना-कौशल में भेलतन्त्र अग्निवेश-तन्त्र के तुल्य न था। अतः वाग्भट अष्टाङ्गहृदय, उ० ४०।८८ में लिखता है—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

अर्थात्—यदि ऋषियों के रचे ग्रन्थ पढ़ने में ही प्रीति है तो चरक तथा सुश्रुत ही क्यों पढ़े जाते हैं। [भेड आदि के ग्रन्थ भी ऋषि-प्रणीत हैं] वे

---

१. देखो पं० भगवद्दत्त जी रचित वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०१।

२. काश्यपसंहिता पृ० ११०। ३. भेलसंहिता पृ० ८४।

क्यों नहीं पढ़े जाते। निष्कर्ष यह है कि सुभाषित कहीं से भी ग्रहण करना चाहिए।

स्पष्ट है कि भेड आदि कृत ग्रन्थों की अपेक्षा चरक तथा सुश्रुत तन्त्रों का अधिक आदर था।

भेल संहिता में वर्णित पुरातन आचार्य—भेलसंहिता पृ० ११ पर ब्रह्म-प्रोक्त मन्त्र का उल्लेख है। इससे आगे पृ० १४३, १६३ पर धान्वन्तर-सर्पि के सेवन का विधान है। परिणामतः भेल की तन्त्र रचना के समय से पूर्व धन्वन्तरि का ग्रन्थ रचा जा चुका था। पृ० २१० पर अगस्त्याभयलेह का प्रयोग निर्दिष्ट है। इससे पूर्व, पृ० १८७ पर निम्नलिखित वचन है—

तं तं निहन्ति वै रोगं देवारीन् केशवो यथा।

यहां केशव शब्द से कृष्ण नहीं अपितु विष्णु अभिप्रेत है।

विचार-परिषदों में उपस्थित ऋषि—चरक संहिता में वर्णित आयुर्वेदीय विचार-परिषदों का वर्णन कर चुके हैं। उसी ढंग की विचार-परिषदों का वर्णन भेलसंहिता में भी है। इन परिषदों में अनेक पुरातन ऋषि विद्यमान थे। यथा, क्रमशः पृ० २०, पृ० २६, पृ० ८४—

प्रथम सभा	द्वितीय सभा	तृतीय सभा
१. आत्रेय	१. कृष्णात्रेय	१. बडिश
२. (खण्ड) काप्य	२. अनेक ऋषि	२. शौनक
३. मैत्रेय		३. खण्डकाप्य
		४. पराशर
		५. भरद्वाज
		६. काश्यप
		७. पुनर्वसु आत्रेय

भेल के काल में अभ्यास द्वारा शल्य-क्रिया शिक्षण

आज के काल में वैद्य लोग शल्य-क्रिया विशेषज्ञ नहीं हो सकते। कारण, उनके लिए शल्य-क्रिया के अभ्यास का समुचित प्रबन्ध नहीं। एलोपैथिक सिद्धान्तानुसार डाक्टरों को शल्य-क्रिया का अभ्यास करवाने का पूर्ण प्रबन्ध है। अतः आयुर्वेदिक ढंग से शल्य-क्रिया में अभ्यस्त वैद्यों का अभाव है। पुरातन काल में इसका पूर्ण प्रबन्ध था। भेल के एक शब्द से यह तथ्य सामने आ जाता है। भेलसंहिता पृ० १८२ पर लिखा है—

शल्यकर्ता प्रयुञ्जीत दृष्टकर्मा चिकित्सितम्।

अर्थात्—दृष्टकर्मा शल्यकर्ता [जिसने साक्षात् क्रिया देखकर शल्यक्रिया

सीखी हो, वह अर्श की शल्य] चिकित्सा करे।

भेल के काल में आयुर्वेद पूर्ण ऐश्वर्य पर था। उस काल के आर्यों को इन बातों का पूर्ण ज्ञान था। यह असत्य-प्रचार है कि आज मानव-बुद्धि अधिक विकसित हो गई है।

भेलसंहिता के हस्तलेख

१. प्रथम हस्तलेख—तञ्जोर के राजप्रासाद के पुस्तकालय में तैलगु लिपि में भेलसंहिता का एक हस्तलेख विद्यमान है। विद्वान् लोग इसी की प्रतिलिपियां मंगा कर समय-समय पर प्रयोग में लाते रहे हैं। श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय भेलसंहिता के मुद्रित ग्रन्थ के अंग्रेजी प्राक्कथन में लिखते हैं—

"सन् १६०५ में डाक्टर हर्नलि ने अपने लिए इस हस्तलेख की एक प्रतिलिपि बनवाई थी।"

इसके आगे वे पुनः लिखते हैं—

This manuscript is taken by Dr. Hoernle to have been written about 1650 A. D.

अर्थात—डा० हर्नलि का मत है कि यह हस्तलेख लगभग सन् १६५० में लिखा गया था।

२. द्वितीय हस्तलेख—जर्मन विद्वान् आफ्रेक्ट के कैटेलोगस कैटेलोगोरम के अनुसार लाहौर के पं० राधाकृष्ण के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ का एक अन्य कोश था। पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थों के अन्वेषक पं० भगवद्दत्तजी ने बताया था कि उन्होंने सन् १६१६-१७ के समीप उस घर की पूर्ण छानबीन की थी। वहां से पता लगा था कि वह कोश ग्रन्थ अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के साथ जर्मनी पहुँच गया था। परन्तु जर्मनी में भी इस ग्रन्थ का पता नहीं लगा। उसी संग्रह के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ पण्डितजी ने डा० बालकृष्ण (काश्मीरक) के घर लाहौर में देखे थे। परन्तु वहां भी यह कोश नहीं था।

३. तृतीय हस्तलेख—भेलसंहिता के इस हस्तलेख की सूचना अध्यापक कीथ ने दी है—

Some light has been thrown by the discoveries of manuscripts in East Turkestan on the Bheda-Samhita. A paper manuscript with a fragment of the text, which can be assigned to the ninth century A. D., suggests strongly that the text published from a single Telugu ms. presents a version of the samhita which has

suffered alteration, a chapter on रक्तपित्त in the निदानस्थान having been replaced by one on कास।

अर्थात—पूर्वी पाकिस्तान में हस्तलेखों की प्राप्ति ने भेड सं० पर कुछ प्रकाश डाला है। वहां से भेडसंहिता के, नवम शती ईसा के समीप के, कागज पर लिखे हस्तलेख का कुछ भाग प्राप्त हुआ है। उससे प्रतीत होता है कि मुद्रित ग्रन्थ का पाठ कुछ भिन्न है। निदानस्थान-गत रक्तपित्त का अध्याय मुद्रित पाठ में कास का अध्याय हो गया है।

मुद्रित ग्रन्थ—श्री० आशुतोष मुकर्जी ने तञ्जोर की प्रति से भेडसंहिता का अलभ्य ग्रन्थ कलकत्ता यूनिवर्सिटी की ओर से छपवाकर वैद्य-संसार की अनन्य सेवा की। यह संस्करण सन् १९२१ में मुद्रित हुआ।

इस मुद्रित पाठ में वेदान्तविशारद अनन्तकृष्ण शास्त्री जी के अनेक प्रस्तावित संशोधन कोष्ठों में प्रदर्शित हैं। ग्रन्थ के मुद्रित होने के कुछ काल पश्चात् पं० भगवद्दत्तजी ने श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय जी को लिखा था कि निम्नलिखित नौ ग्रन्थों की सहायता से भेलसंहिता के अनेक मुद्रित-पाठ शुद्ध तथा अनेक त्रुटित-पाठ पूर्ण किए जा सकते हैं—

१. कर्नल बावर का हस्तलेख (नावनीतक आदि) भाग १, २, ३।

२. गदनिग्रह भाग प्रथम, द्वितीय।

३. निबन्धसग्रह डल्हणकृत सुश्रुत टीका।

४. माधवनिदान पर मधुकोश व्याख्या।

५. योगरत्नाकर।

६. वंगसेन।

७. योगरत्नसमुच्चय।

८. वृन्दमाधव व्याख्या-कुसुमावलियुक्त।

९. रसरत्नाकर।

श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय का उत्तर आने पर पं० जी ने भेलसंहिता के ऐसे संशोधनों का प्रथम संग्रह मुखोपाध्यायजी को भेज दिया था। दैव-वशात् मुखोपाध्याय जी का निधन हो गया। वह काम वहीं स्थगित हुआ।

इसके पश्चात् आयुर्वेद के अन्य अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यथा—

१०. चरकसंहिता पर जेज्जट टीका का एक अंश।

११. चिकित्सा कलिका सटीक।

१२. अष्टाङ्गहृदय पर हेमाद्रि टीका।

इन ग्रन्थों में भी भेलसंहिता के अनेक वचन उद्धृत हैं।

इनके अतिरिक्त मद्रास में दो और ग्रन्थ छपे हैं, जो इस समय हमारे पास नहीं है। उनमें भी भेलसंहिता के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।

इस ग्रन्थ के भावी सम्पादक को इस सारी सामग्री की सहायता लेनी चाहिए।

३५. पराशर ॥३॥

वंश—पराशर का वंश प्रसिद्ध है। पूर्व पृ० १५३ पर पराशर का वंश-वृक्ष लिख चुके हैं। ब्रह्मा का मानसपुत्र वसिष्ठ था। वही वसिष्ठ अपरजन्म में मैत्रावरुणी हुआ। इस वसिष्ठ का पुत्र शक्ति था। शक्ति के पुत्र-पौत्र अनेक थे। शक्ति के भाई भी होंगे। परन्तु उनका विशेष वृत्त अभी हमें नहीं मिला। इस विषय में ताण्डच ब्राह्मण ४।७।३ तथा ८।२।४ द्रष्टव्य हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १।१५० का निम्नलिखित वचन भी देखना चाहिए—

वसिष्ठो वै जितो हतपुत्रोऽकामयत बहुप्रजया पशुभिः प्रजायेयेति।

अर्थात्—हतपुत्र तथा [विश्वामित्र] से विजित वसिष्ठ ने कामना की कि मैं बहु-प्रजा तथा पशु वाला हो जाऊं।

शक्ति का पुत्र पराशर था। पुराण पाठानुसार पराशर की माता का नाम अदृश्यन्ती था। पराशर के अतिरिक्त शक्ति के दो अन्य पुत्रों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में है—

स एतद् अन्धीगुश् शाक्त्यस् सामापश्यत्। जै० ब्रा० १।१६५॥

अर्थात्—शक्तिपुत्र अन्धीगुः ने अमुक साम देखा।

स्पष्ट है कि शक्ति के एक पुत्र का नाम अन्धीगुः था। एक अन्य पुत्र का नाम गौरीविति था। यथा—

गौरिवितिर्वा एतच् छाक्त्यः। जै० ब्रा० १।२०४॥ ताण्ड्य ब्रा० ११।५।१४॥

इस प्रकार निम्नलिखित वंशवृक्ष बनता है—
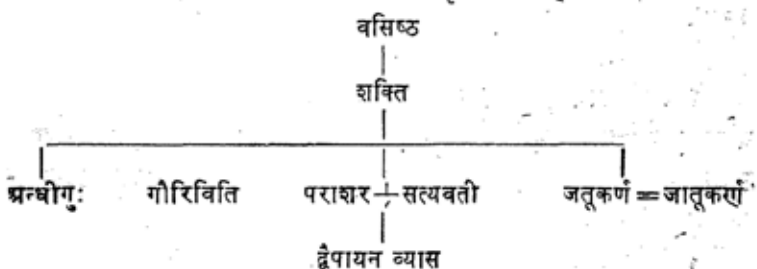
आत्रेय वंशियों के समान पराशर वंशियों के भी श्वेतादि भेद हुए। यथा—

गौर पराशर, नील पराशर, कृष्ण पराशर, श्वेत पराशर, श्याम पराशर, धूम्र पराशर,[१] अरुण पराशर[२]।

गिरिन्द्रनाथ स्वीकृत दो पराशर—हि० इ० मे०, भाग तृतीय पृ० ५६६ तथा ५६८ पर गिरिन्द्रनाथ जी कृष्ण द्वैपायन के पिता को वृद्ध पराशर अथवा पराशर प्रथम, तथा पुनर्वसु-शिष्य को पराशर द्वितीय मानते हैं।

उनका लेख हमारी समझ में नहीं आया। भारतीय इतिहास में शाक्त्य-पराशर ही पुनर्वसु का शिष्य तथा कृष्ण द्वैपायन का पिता था। आर्य वाङ्मय में दो पराशर नहीं हैं। नाथ जी की भूल का खण्डन आगे ग्रन्थ शीर्षक के नीचे है।

काल—अग्निवेश, भेल तथा पराशर समकालिक थे। पूर्व पृ० १६७ पर लिख चुके हैं कि चौबीसवें परिवर्त का व्यास ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि था। उसके साथी शालिहोत्र तथा अग्निवेश्य आदि थे। अतः अग्निवेश का सहपाठी पराशर चौबीसवें परिवर्त में जीवित था। पालकाप्य मुनि के हस्तिशास्त्र के आरम्भ में लिखा है कि पराशर ऋषि अग्निवेश के साथ दशरथ-सखा महाराज रोमपाद की सभा में उपस्थित था। इसके पश्चात् दीर्घ तपस्या तथा विस्तृत अध्ययन से छब्बीसवें परिवर्त का व्यास पराशर बना।[३] बृहद्रथ ने पराशर से वास्तु-शास्त्र सीखा, तथा पराशर इस विद्या में गर्ग का शिष्य था।[४] पराशर का पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास था। अतः भारतयुद्ध से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व तक पराशर जीवित था। पाणिनि मुनि (विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व) कृत अष्टा-ध्यायी ४।१।१०५ के गण में पराशर का उल्लेख है।

पराशर ने परीक्षित के काल में विष्णु पुराण रचा। अतः वह परीक्षित-काल तक भी जीवित था।

पराशर के काल में ऋतुक्रम—अद्भुतसागर के कर्ता बल्लालसेन (शके १०८९) ने लिखा है[५]—

तथा च स्वकालिकम् ऋतुक्रममाह पराशरः—

तस्य च श्रविष्ठाद्यात् पौष्णान्तं चरतः शिशिरः। वसन्तः पौष्णा-र्धाद्यात् रोहिण्यन्तम्। सौम्यात् सार्पार्धं ग्रीष्मः। प्रावट् सार्पाद्याद् हस्तान्तम्। चित्राद्याद् इन्द्रार्धं शरत्। हेमन्तो ज्येष्ठार्धाद् वैष्णवा-न्तमम्। इति।

---

१. देखो मत्स्य पु० २०१।३३-३८॥

३. वायु २३।२१३॥ ४. विश्वकर्म प्रकाश १६।११०॥

५. देखो, पृ० १४।

इससे आगे वह वराहमिहिरकृत पञ्चसिद्धान्तिका से वराह-काल का ऋतु-क्रम लिखता है। दोनों की तुलना से पता लगता है कि पराशर-कालिक ऋतु-क्रम वराह-कालिक-क्रम से सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था।

यदि कोई कहे कि किसी ने पराशर के नाम पर ग्रन्थ प्रसिद्ध कर दिया, तो क्या उसने सब गणनाएं करके पुराने ऋतु-क्रम भी अनुमानित किए। यह है महती क्लिष्ट कल्पना तथा महदज्ञान की पराकाष्ठा।

गुरु

१. **पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय**—पराशर का आयुर्वेद का आचार्य पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय था।

२. **गर्ग**—विश्वकर्म प्रकाश, १६।११० के अनुसार ऋषि गर्ग से पराशर ने वास्तुशास्त्र सीखा।

शिष्य

१. **बृहद्रथ**—बृहद्रथ ने आचार्य पराशर से वास्तुशास्त्र सीखा। पराशर ने गोलक्षण का उपदेश भी बृहद्रथ के लिए किया।

२. **मैत्रेय**—ऋषि पराशर ने अपने शिष्य मैत्रेय को ज्योतिःशास्त्र सिखाया। गणक तरङ्गिणी के आरम्भ में उद्धृत पराशर के वचन से यह स्पष्ट हो जाता है—

तथा चाह पराशरः—

मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यच्चातिदुर्लभम्॥

३. **कौशिक**—पराशर का एक शिष्य कौशिक था। ज्योतिष-शास्त्र में उसी के प्रश्न हैं।[1]

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेदीय पराशरतन्त्र**—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्रवचनानुसार पराशर सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। चरकसंहिता सूत्रस्थान १।३१ के अनुसार अग्निवेश, भेल तथा पराशर ने अपनी २ तन्त्ररचना समकाल में की। पराशरतन्त्र कायचिकित्सा-प्रधान था। वाग्भट ने पराशर-तन्त्र देखा था। पूर्व पृ० १६८ पर पराशर-ज्योतिःशास्त्र से उद्धृत एक वचन हम लिख चुके हैं। उस वचन से स्पष्ट है कि पराशर की

---

१. अद्भुतसागर पृ० ५६१।

रचना-शैली अग्निवेश-तन्त्र की समता में है। पराशर का आयुर्वेदी यतन्त्र इस समय उपलब्ध नहीं।

गिरिन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय ने सम्भवत: तञ्जोर पुस्तकालय के काश्यप-संहिता के हस्तलेख के आधार पर कुछ अत्यावश्यक श्लोक उद्धृत किए हैं[1]—

ऋग्वेदेनोपवेदाङ्गं कश्यपेन कृतं पुरा।
लक्षग्रन्थसमोपेतं ममेयं समदीप्यताम्॥
आननं दर्पणसाम्यं कररेखासमं दशेत्।
जीवनं वैद्यतत्त्वं च मूलग्रन्थं च चाष्टमम्॥
काश्यपं कौशिकं व्यासं वासिष्ठं कृतसम्भवम्।
पाराशरं भरद्वाजं मार्कण्डेयं महामुनिम्॥

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि पराशर ऋषि का आयुर्वेदतन्त्र प्रसिद्ध था।

गिरिन्द्रनाथ की भूल का कारण—नाथ जी ने पराशर और वृद्ध पराशर दो आचार्य माने हैं। पूर्व पृ० २०८ पर इसका उल्लेख हो चुका है। यद्यपि आयुर्वेदीय संग्रह अथवा टीका ग्रन्थों मे वृद्ध पराशर के नाम से उद्धृत वचन हमें नहीं मिले, तथापि वृद्ध काश्यप, वृद्ध भोज, वृद्ध सुश्रुत तथा वृद्ध वाग्भट के नाम से उद्धृत वचन यत्र-तत्र मिलते हैं। प्रफुल्लचन्द्र रे[2], हर्नलि[3] तथा गिरिन्द्रनाथ[4] आदि अनेक लेखकों को इससे सन्देह हुआ है कि सुश्रुत तथा वृद्ध-सुश्रुत, वाग्भट तथा वृद्ध वाग्भट अथवा पराशर तथा वृद्ध पराशर दो-दो व्यक्ति थे। आर्य वाङ्मय को न जानने से यह भ्रान्ति हुई है। पालकाप्य के निम्न-लिखित अध्याय-समाप्ति-वचन हमारे अभिप्राय को स्पष्ट करेंगे—

इति श्रीपालकाप्ये हस्त्यायुर्वेद-महाप्रवचने……। पृ० ४५।
,, ,, गजायुर्वेदे वृद्धपाठे……। पृ० १६०।
,, ,, हस्त्यायुर्वेद-महाप्रवचने महापाठे पृ० २२३।
,, ,, ,, ,, ,, पृ० २८६।
,, ,, हस्त्यायुर्वेदे ,, ,, पृ० ४७१।
,, ,, ,, ,, वृद्धोपदेशे पृ० ७१७।

---

१. हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग तृतीय, पृ० ५६६।
२. हि० हि० कै०, भाग १, कलकत्ता, सन् १६०४, भूमिका पृ० २६।
३. S. M. A. I. भाग १, अस्थिविद्या, आक्सफोर्ड, सन् १६०७, पृ० १०—१४।
४. हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६६ – ५६८।

यह पालकाप्य ग्रन्थ द्वादश साहस्री पाठ का है। इसी का एक लघुरूप था। माधवनिदान अन्तर्गत ज्वरनिदान श्लोक १ की विजयरक्षितकृत टीका में—**उक्तं च पालाकाप्ये** लिखकर कुछ श्लोक उद्धृत हैं। उन पर लाहौर-संस्करण के सम्पादक पं० दीनानाथ शर्मा का टिप्पण है—

पालकाप्यविरचिते हस्त्यायुर्वेदे महारोगस्थाने नवमाध्यामे विषयोऽयं गद्य-रूपेणास्ति।

पूर्व पृ० १६० पर आत्रेय की पांच संहिताओं का उल्लेख हो चुका है। भरत नाट्य-शास्त्र की भी दो संहिताएं थीं। इसी प्रकार एक-एक ग्रन्थकार ने ही दो-दो अथवा तीन-तीन संहिताएं लिखी थीं। इस तथ्य को न जानकर गिरिन्द्रनाथ आदि ने भूल की है।

पराशर मतानुयायी—टीकाकार जेज्जट चरक, सि० ३।१३-१६ की व्याख्या करते हुए पराशर के अनुयायियों का वचन उद्धृत करने से पूर्व लिखता है—पाराशर्यास्त्वाहुः। पृ० १६४३।

जर्मन भाषा-मत पर अशनि प्रहार—जर्मन भाषा मतानुयायियों का यह कथन कि लोकभाषा में होने से आयुर्वेदादि ग्रन्थों की रचना, ब्राह्मण ग्रन्थों की वैदिक भाषामयी रचना के पश्चात् हुई, नितान्त भ्रान्तिजनक है। पूर्व पृ० १३८ पर लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ आदि का प्रवचन करने वाले ऋषि व्यास कहाते थे। उन्हीं ऋषियों ने आयुर्वेदादि अन्य शास्त्रों की रचना की। ऋषि पराशर, जिसने चौबीसवें परिवर्त में अपने आयुर्वेदीय तन्त्र की रचना की, छब्बीसवें परिवर्त में ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रवक्ता होने से व्यास बना।[1] उसके साथी शालिहोत्र तथा अग्निवेश्य आदि थे। अतः जर्मन लेखकों का भाषा-मत सर्वथा हेय है।

पराशर-तन्त्र में आर्या छन्द—पराशर के आयुर्वेदीय तन्त्र में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। उसी काल में वाल्मीकि की प्रसिद्ध रचना भी विभिन्न छन्दों में हुई। अतः पाश्चात्यों का यह लिखना कि आर्या आदि छन्दों की रचना विक्रम से तीन अथवा चार सौ वर्ष पूर्व आरम्भ हुई, आर्य जाति के अति पुरातन इतिहास को पैरों तले रौंदना है। वस्तुतः पराशर के काल में आर्या छन्द पर्याप्त प्रचलित था। अष्टाङ्गसंग्रह, सूत्रस्थान, अध्याय १७, पृ० १२७ पर वाग्भट, पराशर के आयुर्वेदीय तन्त्र के आर्या छन्दोबद्ध दो श्लोक उद्धृत करता है—

---

१. षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः। वायु २३।२१२॥

पराशरस्तु पठति—

पाकास्त्रयो रसानामम्लोऽम्लं पच्यते कटुः कटुकम् ।
चत्वारोऽन्ये मधुरं सङ्कीर्ण-रसात्तु सङ्कीर्णम् ॥
कटुतिक्तकषायाणां कटुको येषां विपाक इति पक्षः ।
तेषां पित्तविघाते तिक्तकषायौ कथं भवतः ॥

इन दोनों श्लोकों की व्याख्या करते हुए इन्दु अपनी टीका में लिखता है—

पाकास्त्रयो रसानामित्यार्याद्वयं पराशरपठितम्·········।

अर्थात्—रसों के तीन विपाक हैं इत्यादि दो आर्याछन्द पराशर ने पढ़े हैं। निश्चय है कि चौबीसवें परिवर्त में ऋषि पराशर ने लोकभाषा में अपना आयुर्वेद-तन्त्र रचा। उस तन्त्र में उसने आर्याछन्द का प्रयोग किया। यह काल उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों के काल से बहुत पूर्व का था। अतः राथ, वैबर, मैक्स-मूलर, ह्विटने, रैंपसन और कीथ आदि के एतद्विषयक लेख सर्वथा भ्रम-मूलक हैं।

पराशर के वचन

इस समय पराशर-कृत आयुर्वेदीय तन्त्र के वचनमात्र यत्र तत्र उद्धृत मिलते हैं। यथा—

१. तथा च पराशरः······तथा च तद्ग्रन्थः—

आहारोऽद्यतनो यश्च श्वो रसत्वं स गच्छति ।
शोणितत्वं तृतीयेऽह्नि चतुर्थे मांसतामपि ॥
मेदस्त्वं पञ्चमे, षष्ठे अस्थित्वं, सप्तमे व्रजेत् ।
मज्जतां, शुक्रतामेति दिवसे त्वष्टमे नृणाम् ।
तस्माद्धि पथ्यापथ्याभ्यामाहाराभ्यां नृणां ध्रुवम् ।
सप्तरात्रेण शुष्यन्ति प्रदुष्यन्ति च धातवः ॥ अ० हृ० शा० ३।६५, स० सु० ।

इनमें से पूर्व के दो श्लोक आयुर्वेदीपिका[1] में किञ्चित् शब्द-भेद से उद्धृत हैं। गिरिन्द्रनाथ द्वारा उद्धृत यह पाठ अति भ्रष्ट है।[2]

२. पराशरेऽप्युक्तम्—

रक्तो महांश्छकुनाहृतः षाष्टिककलमप्रमोदपतङ्गाः शीतगौरदीर्घशूक-सुगन्धिक पाण्डुतपनीयाः शालय एवंभूताः। मधुरबहुलाः स्थिराः स्निग्धाः

---

1 देखो चरक चि० १५।२०—३५ निर्णयसागर सं० तथा लाहौर सं० पृ० ११६१।

२. हिस्ट्री आफ इण्डियन मैडिसिन, भाग ३, पृ० ६६६।

पित्तानिलप्रशमनाः लघवः संग्राहिकाः शीताः इति । अ० हृ० सू० ६।७, सर्वांग सु० ।

३. ऊचे पराशरोऽप्यर्थममुमेव प्रमाणयन् ।
यथोपन्यासतः प्राप्तमादौ दोषभिषग्जितम् ॥
नेतृभङ्गे न दृष्टो हि समं सैन्यपराजयः ।
स्थानतः केचिदिच्छन्ति प्राक् तावच्छ्लेष्मणो वधम् ॥ इत्यादि
अ० सं० सू० पृ० १५८–५९ तथा अ० हृ० सू० १३।१५ ॥

४. पूर्व पृ० २१२ के आरम्भ पर उद्धृत वचन अ० हृ० सू० ६।२१ की हेमाद्रि टीका में भी उद्धृत है ।

गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६८–६९ पर पराशर के छः अन्य वचन उद्धृत किये हैं । इन वचनों में आयुर्वेद-दीपिका से उद्धृत संख्या २ का वचन चरक सं० लाहौर सं० सि० १।२९–३१ की आ० दी० में किञ्चित् शब्दभेद से उद्धृत है ।

२. हस्ति आयुर्वेद—पराशर के हस्तिविद्या-परक अनेक वचन हेमाद्रि-कृत लक्षणप्रकाशादि ग्रन्थों में उद्धृत हैं । पराशर का यह ग्रन्थ स्वतन्त्र था, अथवा उसकी ज्योतिष-संहिता के अन्तर्गत, यह ज्ञात नहीं हो सका ।

३. गोलक्षण—वराहमिहिर की बृहत्संहिता अध्याय ६१ में पराशरकृत इस ग्रन्थ का उल्लेख है । इसका उपदेश भी बृहद्रथ के लिए हुआ था ।

४. वृक्षायुर्वेद—पराशर कृत इस ग्रन्थ के अनेक वचन अभी-अभी एक लेख में छपे हैं ।[1]

५. कृषि शास्त्र—अर्थशास्त्र की गणपति शास्त्रीकृत टीका, प्रथम भाग, पृ० ३२ और २८३ पर पराशर तथा वृद्धपराशर-प्रोक्त कृषिशास्त्र का उल्लेख है ।

गणपति जी ने पुरानी टीकाओं के आधार पर यह टीका रची है । पुरानी टीकाओं में वृद्ध पराशर प्रयोग देखकर उन्होंने ये शब्द लिखे हैं । वस्तुतः पराशर तन्त्र के बृहत्पाठ को वृद्ध-पराशर कहते हैं ।

इसी प्रकार वृद्ध-अमरकोश भी था । देखो अमर पर टीकासर्वस्व १।१।२७॥

---

१. जर्नल एशि० सो० बंगाल, लैटर्स, भाग १६, संख्या १, सन् १९५०, नित्येन्द्रनाथ सरकार का लेख ।

६. ज्योतिष—पराशर का ज्योतिष शास्त्र सुप्रसिद्ध है। पूर्व पृ० २०६ पर लिख चुके हैं कि पराशर ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकों में है।

पराशर की ज्योतिष-संहिता ऋषिपुत्र द्वारा स्मृत है। ऋषिपुत्र को वराहमिहिर बृ० सं० ४५।८२ में उद्धृत करता है। अतः ऋषिपुत्र वराहमिहिर (विक्रम प्रथम शती) का पूर्ववर्ती है। बृहत्संहिता ८।१ की विवृति में भट्ट उत्पल द्वारा उद्धृत ऋषिपुत्र का एक श्लोकार्ध निम्नलिखित है—

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रि-पराशराः।

अतः पराशर की ज्योतिष-सं० ऋषिपुत्र के ग्रन्थ से पुरानी है।

७. वास्तुशास्त्र—पूर्व लिख चुके हैं कि विश्वकर्मप्रकाश १६।११० के अनुसार पराशर वास्तुशास्त्र रचयिता था।

८. राजशास्त्र—कौटल्य अपने अर्थशास्त्र में पराशर का मत बहुधा उद्धृत करता है।

६. पराशर स्मृति—पराशर स्मृति आज कल उपलब्ध है। उसके मूल-स्वरूप में कुछ भेद होगया है। महाभारत शान्तिपर्व अ० २६६ में जनक तथा पराशर-संवाद उल्लिखित है। अनुशासनपर्व १४६।३ से भीष्म जी वृद्धावस्था को प्राप्त पराशर के धर्म-कथन का वर्णन करते हैं। प्रतीत होता है, स्मृति पराशर की अन्तिम रचनाओं में है।

१०. पुराण—विष्णुपुराण का प्रवक्ता पराशर था। उसने अभिमन्यु-पुत्र कौरव परीक्षित् के काल में यह प्रवचन किया। यदि यह बात सत्य मानी जाए, तो परीक्षित् के काल तक पराशर जीवित था।

११. पाञ्चरात्र—पांचरात्र की दो पराशर संहिताएं उपलब्ध हैं।

१२. पाराशर्यकल्प—विमान-विद्या का यह हस्तलेख तञ्जोर पुस्तकालय की सं० ५५४२४—२७ के अन्तर्गत है। यह ग्रन्थ पराशर अथवा उसके वंशज व्यास आदि का हो सकता है।

१३. ऋग्वेद-संहिता—ऋग्वेद का अध्येता पैल था। उसका शिष्य बाष्कल हुआ। बाष्कल के चार शिष्यों में एक पराशर था। उसने पराश-संहिता का प्रवचन किया। उसका प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प भी हो सकता है। वह एक व्यास था।

३६. जतूकर्ण ॥४॥

वंश—जतूकर्ण का वंशपरिचय अभी संदिग्ध है। वायुपुराण १।१० के अनुसार जातूकर्ण वसिष्ठ का नप्ता था।

ऋषीणां च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥६॥
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णाय[1] चर्षये ।

इससे इतना स्पष्ट है कि जातूकर्ण वसिष्ठ तथा उसके वंशजों का सम्बन्धी था । परन्तु यहां नप्ता शब्द विचारणीय है ।

नप्ता=पौत्र, दौहित्र अथवा प्रपौत्र—संस्कृत वाङ्मय में नप्ता शब्द का प्रयोग उपर्युक्त तीनों अर्थों में हुआ है । जैन आचार्य हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि ३।२०८ में लिखता है—**नप्ता पौत्रः पुत्रपुत्रः** । अर्थात्-नप्ता पोता होता है । इस वचन की स्वोपज्ञ टीका में उद्धृत शेष-कोश के अनुसार—**नप्ता तु दुहितुः पुत्रे** । अर्थात् नप्ता-शब्द पुत्री के पुत्र के लिए प्रयुक्त होता है । अमरकोश २६।२९ में नप्त्री का अर्थ पौत्री है । वेद के **क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः**—मन्त्र में नप्ता का अर्थ पौत्र प्रतीत होता है । मानवश्रौतसूत्र में लिखा है—**अमुष्य पौत्रेति पितामहस्य । अमुष्य नप्त्रेति प्रपितामहस्य**[2]—कि अमुक पितामह का पोता तथा अमुक प्रपितामह का नप्ता । श्री० रामचन्द्रजी दीक्षित अपने पुराण इण्डैक्स भाग प्रथम पृ० ४४६ पर वायु पुराण के पूर्वोक्त प्रकरण के अर्थ में लिखते हैं—

Jatukarna—III, the grandson's son of वसिष्ठ ।

अर्थात् जातूकर्ण वसिष्ठ का प्रपौत्र था ।

परन्तु यह विचारणीय है कि कि पुराण के पूर्वोद्धृत स्थल में कौन-सा अर्थ यथार्थ बैठेगा ।

नाम—१. चरकसंहिता सू० १ । ३१ में आत्रेय-शिष्य का नाम जतूकर्ण है—**अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्णः पराशरः** । परन्तु चरकसं०चि० ३। ७१, ७२ की व्याख्या में जेज्जट पूर्वलिखित आत्रेय-शिष्यों के नाम उद्धृत करते हुए जतूकर्ण के स्थान पर जातूकर्ण नाम लिखता है ।

२. सुश्रुतसंहिता उ० १।४-७ की व्याख्या में डल्हणाचार्य आत्रेय-शिष्य जतूकर्ण को जातूकर्ण नाम से स्मरण करता है ।

३. चरकसंहिता सू० १।४४ की चक्रपाणि कृत टीका, चि० ३।६३-६७ की जेज्जट-टीका; अष्टा० हृ० सू० १।३ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या तथा अ०सं०उ० पृ० २७० पर जतूकर्ण संहिता का नाम जातूकर्ण सं० लिखा है । व्याख्या कुसुमावलि में जतूकर्ण संहिता के प्रमाण जातूकर्ण नाम से दिए गए हैं ।

---

१. इसका पाठान्तर जातूकर्ण्याय है । वायु १ । १० ।

२. मैक्समूलरकृत H. A. S. L. लण्डन सं०, पृ० ३८० पर उद्धृत ।

इसके विपरीत चरकसंहिता के अन्य अनेक प्रकरणों की चक्रपाणिदत्त की व्याख्या में—जतूकर्णेऽप्युक्तम्—इत्यादि कहा है।

अतः जतूकर्ण तथा जातूकर्ण का भेद विचारणीय है।

जातूकर्ण तथा जातूकर्ण्य—पाणिनि मुनि अपनी अष्टाध्यायी ४।१।१०४ के गर्गादि गण में जतूकर्ण नाम पढ़ता है। इस गण में अग्निवेश, अगस्ति, पुलस्ति, अश्मरथ तथा मण्डू आदि शब्द भी पढ़े गए हैं। तदनुसार जातूकर्ण्य शब्द गोत्रापत्य प्रत्ययान्त है। परन्तु अनेक पाठों में जतूकर्ण के स्थान में ही जातूकर्ण्य पाठ मिलता है—

१. विष्णुपुराण ३।३।१६ में सत्ताइसवें द्वापर का व्यास जातूकर्ण लिखा है। वायुपुराण २३।२१४ में सत्ताइसवें परिवर्त का व्यास जातूकर्ण नहीं अपितु जातूकर्ण्य है।

२. वायुपुराण १०३।६६ में पराशर से पुराण-परम्परा सीखने वाला शिष्य जातूकर्ण लिखा है, परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण ४४।६६ के अनुसार जातूकर्ण्य ने पराशर से पुराण-परम्परा सीखी।

३. बौधायन श्रौत प्रवर ४५ में वसिष्ठ एकार्षेय-प्रवर की व्याख्या में लिखा है—वसिष्ठानेकार्षेयान्व्याख्यास्यामः.........जातूकर्ण इत्यादि।

इस प्रकरण में बौधायन मुनि जातूकर्ण नाम पढ़ता है, परन्तु यहाँ जातूकर्ण का पाठान्तर जातूकर्ण्य भी है। मत्स्य २००।१६ के अनुसार वसिष्ठ गोत्र में जातूकर्ण्य नाम पढ़ा गया है।

४. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम, अ० ७, पृ० ९२, ९३ पर ऋग्वेदीय बाष्कल ऋषि के चार शिष्यों का वर्णन करते हुए पं० भगवद्दत्त जी ने पुराणों के भिन्न भिन्न पाठ उद्धृत किए हैं। इन पाठों में एक स्थान पर जातूकर्ण नाम भी उल्लिखित है—

बौद्धाग्निमाठरौ तद्वज्जातूकर्णपराशरौ।[1]

इसके आगे पं० जी लिखते हैं—जातूकर्ण्य पाठ इसलिए ठीक है कि श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्द के वेद-शाखा प्रकरण में जातूकर्ण्य को ही ऋग्वेदीय आचार्य लिखा है।

अतः जतूकर्ण, जतुकर्ण, जातूकर्ण तथा जातूकर्ण्य नामों के यथार्थ पाठों का अन्वेषण आवश्यक है।

---

१. यह पाठ विष्णु पुराण के दयानन्द कालिज के हस्तलेख संख्या ५२५७ का है।

अष्टाङ्ग संग्रह उ० पृ० ३१३ पर वाग्भट के सप्तवेगान् विषस्याहु... इत्यादि वचन की व्याख्या करते हुए इन्दु जातूकर्ण का उल्लेख करता है— एवं जातूकर्णकश्यपादीनां........।

ऐतरेय आरण्यक ५।३ में जातूकर्ण्य का मत उद्धृत है। शांखायन श्रौतसूत्र १।२।१७,३।१६।१४, ३।२०।१९ तथा १६।२९।६ में जातूकर्ण्य का नाम मिलता है। अन्तिम स्थान में उसे जल—जड़ जातूकर्ण्य कहा है। शांखायन गृह्य ४।१०।३ में भी जातूकर्ण्य को स्मरण किया है। कौषीतकि गृह्य २।५।४ मे जातूकर्ण्य का उल्लेख है। जातूकर्ण्य, जातूकर्ण या जातूकर्णि धर्मसूत्र के प्रमाण बालक्रीड़ा, प्रथम भाग, पृ० ७ तथा स्मृतिचन्द्रिका आह्निक प्रकाश पृ० ३०२ आदि पर मिलते हैं। वस्तुतः ये सब स्थल द्रष्टव्य हैं।

काल—जतूकर्ण, अग्निवेश, भेल तथा शालिहोत्र आदि समकालिक थे। पराशर तथा जतूकर्ण प्रायः साथ स्मरण किए गए हैं। अतः जतूकर्ण का काल द्वापर का आरम्भ है।

काणे जी का मत—धर्मशास्त्र के इतिहास पृ० १२० पर श्री वामन पाण्डुरङ्ग काणे लिखते हैं—

"Apararka quotes a verse of जातूकर्ण्य which refers to the zodiacal sign virgo. This would place the verse जातूकर्ण्य not very much earlier than the 3rd or 4th century A. D."

अर्थात्—अपरार्ककृत टीका में जातूकर्ण्य का एक श्लोक (पृ० ४२३) पर उद्धृत है। उसमें कन्या राशि का उल्लेख है। अतः श्लोकात्मिका स्मृति ईसा की तीसरी अथवा चौथी शती से अधिक पूर्व की नहीं हो सकती।

आलोचना—संभव है यह श्लोक जातूकर्ण्य के धर्मसूत्र में हो। हारीत तथा देवल के धर्मसूत्रों में भी श्लोक विद्यमान हैं। जातूकर्ण्य धर्मसूत्र भारत-युद्धकाल से पूर्व का ग्रन्थ है। राशियों का ज्ञान आर्यों को अति पूर्वकाल में नहीं था, यह कोरी गप्प है। जातूकर्ण्य रचित ग्रन्थ बहुत प्राचीन काल के हैं।

गुरु

१. पुनर्वसु आत्रेय—जतूकर्ण का आयुर्वेदोपदेष्टा गुरु पुनर्वसु आत्रेय था।

२. पराशर—जातुकर्ण ने ऋषि पराशर से पुराण-परम्परा सीखी।

३. बाष्कल—जातूकर्ण्य ने आचार्य बाष्कल से ऋग्वेद की एक संहिता पढ़ी।

सत्ताइसवें द्वापर का व्यास—पूर्व पृ० १३८ पर उद्धृत पुराणों के प्रमाणानुसार

जातूकर्ण्य सत्ताइसवें द्वापर का व्यास था।

आयुर्वेद-कर्ता—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार जतुकर्ण सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। -

ग्रन्थ

१. जतूकर्ण-संहिता—जतूकर्ण की आयुर्वेदीय संहिता कायचिकित्सा-परक थी। यह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं। इस संहिता के अनेक वचन इतस्ततः उद्धृत हैं। चक्रपाणिदत्त ने जतूकर्णसंहिता को स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है। गिरिन्द्रनाथजी ने व्याख्याकुसुमावलि, निबन्धसंग्रह, तत्त्वचन्द्रिका तथा व्याख्या मधुकोश से इस संहिता के २४ वचन उद्धृत किए हैं। इस विषय में उन्होंने आयुर्वेददीपिका का प्रयोग नहीं किया। वस्तुतः आयुर्वेददीपिका में इस संहिता से उद्धृत वचनों का पर्याप्त भाग सुरक्षित है। स्थानाभाव से हम इस संहिता के केवल कतिपय वचन उद्धृत करते हैं—

क—नानाश्रुतपरिपूर्णकण्ठः शिष्यो जतूकर्णः प्राञ्जलिरधिगम्योवाच।[१]

यह वचन जतूकर्ण-संहिता के आरम्भ के प्रकरण का प्रतीत होता है।

ख—तथा च जातुकर्णवचः—सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ। ज्वराः पञ्च। रसनाडिस्थितो दोषो सन्ततो निष्प्रतिद्वन्द्वः सप्तदशद्वादशभिर्दिनैः हन्ति विमुञ्चति वा। नक्तं दिने द्विः सन्ततकोऽसृङ्मांसदूष्याद्भवति। सकृदन्येद्युर्मेदस्थः प्रतिद्वन्द्वि। अस्थनि तृतीयकः स्यात्। चतुर्थको मज्जनीति।[२]

ग—तथा जातूकर्णेऽप्युक्तं—

समानैः सर्वभावानां वृद्धिर्हानिर्विपर्ययात्।[३]

घ—यदुक्तं शारीरे जतूकर्णे—ध्रुवाद्यैर्वाप्यतीसारे—इति।[४]

ङ—जतूकर्णेनापि स्रावणरसाञ्जनं निशायामेव विहितं। यदुक्तं—

सप्ताहाद्रसाञ्जनं नक्तमिति।[५]

च—यदाह जतूकर्णः—

पक्त्वाथाम्बुशतप्रस्थे दशभागस्थितेन तु।
तैलप्रस्थं पचेत्तेन छागीक्षीरेण संयुतम्॥इति।[६]

शेष वचनों के लिए चरकसंहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जटकी

---

१. चर० सू० १।२॥ २. चर० चि० ३।६३-६७ जेज्जट टीका। ३. चर० सू० १।४४ आ० दी०। ४. चर० स० २।१८-२० आ० दी०। ५. चर० स० १६-१८ आ० दी०। ६. चर० स० ५।६३-७० आ० दी०।

टीकाएं देखिए। स०पु० तथा हेमाद्रि टीकायुत अष्टाङ्ग हृदय निर्णय सागर प्रेस, सन् १९३९ के संस्करण के पृ० ६३, पर जतूकर्ण का एक श्लोक उद्धृत है।

जतूकर्ण संहिता के तीन कोश—चक्रपाणिदत्त द्वारा उद्धृत जतूकर्ण संहिता के वचनों से स्पष्ट है कि उसके पास जतूकर्ण-संहिता विद्यमान थी। अन्य टीकाकारों के पास भी यह संहिता थी। चक्रदत्त के टीकाकार निश्चलकर के पास इस संहिता के तीन हस्तलेख विद्यमान थे।

श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य अपने लेख[1] में निश्चलकर की रत्नप्रभा के हस्त-लेख से एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। इस लेख में जतूकर्ण संहिता के पूर्व-लिखित तीन हस्तलेखों का वर्णन है—

अत्रार्थे तन्त्रान्तरम्—अग्निक्षारपलाभ्यां द्विमूत्रं चतुर्जलं च घृत-प्रस्थमिति चक्रः। पुराणपुस्तकत्रयेऽपि जतूकर्णे मया नेदं दृष्टं, दृष्टं चाग्निपलाभ्यां द्विमूत्रं चतुर्जलं घृतादिति।

इस लेख में निश्चलकर कहता है कि जतूकर्ण संहिता की तीन पुरानी पुस्तकों में [वह पाठ नहीं मिला]। जो ग्रन्थ अभी लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व इतना प्रसिद्ध था, आज उसकी एक भी प्रति हमें सुलभ नहीं हो सकी।

२. पुराण-प्रवक्ता—वायुपुराण १०३।६६ के अनुसार जातुकर्ण ने पुराण-प्रवचन किया।

३. धर्मसूत्र—जातूकर्ण्य धर्मसूत्र के अनेक प्रमाण पुरातन टीका-ग्रन्थों में उद्धृत हैं। जातूकर्ण्य गृह्य आदि के वचन भी मिलते हैं।

संभवतः उसका पूर्ण कल्पसूत्र था।

योग—गदनिग्रह भाग प्रथम, पृ० १७ पर जतूकर्ण-संहिता से उद्धृत महा-तिक्त घृत का उल्लेख है।

३७. हारीत ॥५॥

वंश—पं० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास पृ० ७५ पर चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता का वंशवृक्ष लिखा है। उसके अनुसार हारीत ऋषि मान्धाता से चौथी पीढ़ी में हुआ—

---

१. New Light on Vaidyaka Literature. इण्डियन हिस्टोरि-कल क्वार्टरली, भाग २३, पृ० १२३—जून १९४७।

मान्धाता
|
अम्बरीष
|
हारित=हरित
|
हारीत ऋषि (अङ्गिरस गोत्र)
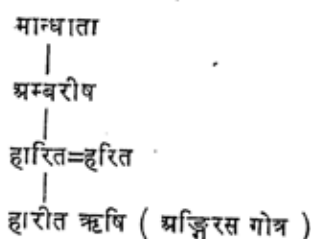
मान्धाता के ये वंशज क्षत्रोपेत द्विजाति कहाए। इस प्रसंग में हरित, हारित तथा हारीत पाठ विचारणीय हैं।

काल—आत्रेय-शिष्य हारीत भी अग्निवेशादि का सहपाठी होने से द्वितीय द्वापर के आरम्भ में विद्यमान था। सांख्यकारिका की अतिप्राचीन माठरवृत्ति के अनुसार भार्गव-उलूक-वाल्मीकि-हारीत तथा देवल ने भिक्षु पञ्चशिख से सांख्यज्ञान प्राप्त किया। हारीत के आयुर्वेद सहाध्यायी पराशर तथा जतुकर्ण भी थे। पराशर छब्बीसवें परिवर्त का व्यास था, तथा जातूकर्ण सत्ताइसवें परिवर्त का। हारीत का सांख्य सहाध्यायी उलूक भी पराशर तथा जातूकर्ण्य का साथी था। अतः हारीत बहुत पुराना आचार्य है। वह भारत युद्धसे कुछ पूर्व तक विद्यमान था।

गुरु

१. **आत्रेय पुनर्वसु**—हारीत ने प्रसिद्ध आचार्य पुनर्वसु आत्रेय से आयुर्वेद सीखा।

२. **भिक्षु पञ्चशिख**—माठरवृत्ति के अन्त के लेखानुसार हारीत ने भिक्षु पञ्चशिख से सांख्य-ज्ञान प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. **हारीत-संहिता**—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार हारीत सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। हारीत की आयुर्वेदीय संहिता कायचिकित्सा-परक थी। इस संहिता के वचन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में प्रायः उपलब्ध होते हैं। गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मे, भाग तीन, पृ० ५५१-५५५ पर हारीत के ३४ वचन संकलित किए हैं। इन वचनों में आयुर्वेद दीपिका से केवल तीन वचन उद्धृत हैं, परन्तु चक्रपाणिदत्त ने आ० दी० में हारीत के अनेक अन्य वचन भी उद्धृत किए हैं। स्थानाभाव से हम उन्हें यहाँ नहीं लिखते। हारीत के अधिक वचनों के संग्रह के लिए चरकसंहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की टीकाएं द्रष्टव्य हैं।

मुद्रित हारीत संहिता—एक हारीत संहिता कलकत्ता से मुद्रित हो चुकी

है। इसके विषय में गिरिन्द्रनाथ जी लिखते हैं—

"पुरातन ऋषि हारीत चरक तथा वाग्भट का पूर्ववर्ती है, परन्तु मुद्रित हारीत संहिता में पृ० ३४६ पर चरक तथा वाग्भट उद्धृत हैं।"

अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उद्धृत हारीतके कुछ वचन मुद्रित हारीत-संहिता में उपलब्ध नहीं होते।

फलतः विद्वानों के मतानुसार मुद्रित हारीत संहिता आत्रेय-शिष्य हारीत ऋषि की रचना नहीं। अपेक्षित सामग्री के अभाव से हम इस विषय पर पूर्ण विचार नहीं कर सके। संभवतः हारीत-संहिता के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति ने यह संकलन किया हो। वह व्यक्ति वाग्भट आदि का उत्तरवर्ती प्रतीत होता है। अथवा यह ग्रन्थ हारीत का लघुपाठ हो और इसमें चरक तथा वाग्भट के वचन प्रक्षिप्त हों। इस विषय पर विशेष विचार की आवश्यकता है।

गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० में, भाग ३ पृ० ८२० पर हारीत अथवा आत्रेय संहिता के पांच हस्तलेखों का उल्लेख किया है—इण्डिया आफिस २६४८। A. M. पृ० १५६। L. १७७०। बीकानेर हस्तलेख १३६८। C.S.C. १०४।

२. **चिकित्साशास्त्र संग्रह**—यह ग्रन्थ भण्डारकर पुस्तक भण्डार के सन् १६३६ के सूचिपत्र, पृ० १०० पर संख्या ८३ के अन्तर्गत सन्निविष्ट है। हस्तलेख अतिजीर्ण तथा ५६ पत्रात्मक है। इसके अध्यायों के अन्त में लिखा है—

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यकगुणदोषशास्त्रपठनविधिः नाम प्रथमोऽध्यायः।

इस ग्रन्थ के आरम्भ के श्लोकों का कुछ भाग द्रष्टव्य है। यथा—

आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसा व्रतम्।
पप्रच्छ शिष्यो हारीत सर्वज्ञानमिदं महत्॥ इत्यादि।

इस हस्तलेख से मिलता-जुलता एक अन्य हस्तलेख बीकानेर के हस्तलेखों में संख्या १३६८ के अन्तर्गत है।

३. **याजुष हारीत संहिता**—हारीत शाखाकार था। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य २।१।१८ में आचार्य हारीत की शाखा में प्रयुक्त होने वाले एक नियम का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

ऊष्माऽघोषो हारीतस्य।

यह नियम हारीतप्रोक्त याजुष शाखा-विषयक है।

४. **कल्पसूत्र**—हारीत का कल्पसूत्र पूर्ण था। हारीत श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्र

के वचन अनेक ग्रन्थों में उद्धृत हैं।

हारीत धर्मसूत्र के वचन—बौधायन, आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रों आदि में हारीत का मत तथा वचन बहुधा उद्धृत हैं। यथा—

(क)—महाभारत शान्तिपर्व अ० २६४ में भीष्मजी हारीत वचन को उद्धृत करते हैं—न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतिश्चरेत्।

यह पाठ यद्यपि महाभारत के सब पुरातन कोशों में नहीं है, तथापि कुछ कोशों में अवश्य मिलता है। हारीत का यह वचन उसके धर्मसूत्र में था। देवल और हारीत के धर्मसूत्रों में सांख्य और योग का विषद वर्णन है।

(ख)—हारीत के धर्मसूत्र का निम्नलिखित वचन कृत्यकल्पतरु, मोक्षकाण्ड, पृ० ५३ पर उद्धृत है—

पुनर्हारीतः—अहिंसा नाम सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः।

इस वचन से मिलता-जुलता अहिंसा का लक्षण पातञ्जल योगसूत्र २।३० के व्यासभाष्य में मिलता है। यथा—

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

इन दोनों वचनों का सादृश्य ध्यान रखने योग्य है। हारीत निस्सन्देह बड़ा पुराना ऋषि था।

(ग) कृत्यकल्पतरु, गार्हस्थ्यकाण्ड पृ० ३८३ पर उद्धृत हारीत के धर्मसूत्र का निम्नलिखित वचन द्रष्टव्य है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः, इत्याचार्याः।

लगभग यही वचन छान्दोग्य उपनिषद् ७।२६ में भगवान् सनत्कुमार के उपदेश में मिलता है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि.........।

छान्दोग्य के पाठ से ज्ञात होता है कि यह वचन नारद-सनत्कुमार-संवाद के अन्त में है। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रवचन-कर्ता ने यह सारा संवाद पुरातन आचार्यों से लिया है। उन्हीं आचार्यों के ग्रन्थों से हारीत ने यह वचन अपने धर्मसूत्र में उद्धृत किया। परन्तु विदेशी लेखक ऐसे वचनों को floating matter कह कर सम्पूर्ण आर्य इतिहास की परम्परा का मूलोच्छेद कर देते हैं।

Floating tradition—भारतीय इतिहास की सम्बद्ध परम्परा को नष्ट करने वाले पाश्चात्य लेखकों को उनकी मिथ्या कल्पनाओं के कुपथ्य से एक भयानक ज्वर हो गया है। उस ज्वर की सन्निपातावस्था के प्रलाप में वे अनेक वचन बोलते चले आ रहे हैं। उनमें से एक वचन है—floating

tradition अर्थात् किंवदन्ती का वचन।

पाश्चात्य लेखकों की परिभाषा में इसका अर्थ है कि प्राचीन ग्रन्थों में अति पुरातन आचार्यों के नाम से जो मत अथवा वचन लिखे आ रहे हैं, उत्तरवर्ती लेखकों ने वे वचन किन्हीं ग्रन्थों से नहीं लिए, प्रत्युत किंवदन्तियों से लिए हैं।

आलोचना—शिष्ट-सम्प्रदाय में विदेशी लेखकों की इस कल्पना का कोई प्रमाण नहीं। उत्तरवर्ती लेखक, पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों से वचन उद्धृत करते समय उनके अन्त में "इति" शब्द का प्रयोग प्रायः करते हैं। इति शब्द का प्रयोग केवल यह दर्शाने के लिए किया जाता है कि उद्धृत-वचन किसी सुनिश्चित ग्रन्थ से लिया गया है। इसी प्रकार संख्या (ग) के अन्तर्गत आचार्य हारीत ने भी—आहारशुद्धौ इत्यादि सुप्रसिद्ध वचन पुराने आचार्यों के ग्रन्थ से उद्धृत किया है।

इस मत का प्रबल खण्डन जर्मन लेखक जोहेन्स मेयर ने भी किया हैं। वामन पाण्डुरंग काणे जी ने इस खण्डन को पढ़ कर यह स्वीकार किया है कि 'फ्लोटिंग ट्रैडिशन' का मत असत्य है। देखो, काणे-कृत, धर्मशास्त्र का इतिहास, भूमिका।

हारीत धर्मसूत्र के दो हस्तलेख

(क) पराशर स्मृति के सम्पादक पं० वामनशास्त्री इस्लाम्पुरकर ने हारीत धर्मसूत्र का एक हस्तलेख नासिक से प्राप्त किया था। जर्मन अध्यापक जूलिअस जालि ने अपने ग्रन्थ "रैखट उण्ट सिट्टे" के पृ० ८-९ पर इसका विवरण दिया है।

(ख) इस धर्मसूत्र का दूसरा हस्तलेख त्रिवन्द्रम पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह हस्तलेख पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थों के सुप्रसिद्ध संग्रहकर्ता (दो वर्ष पूर्व परलोकगत) श्री राम अनन्तकृष्ण शास्त्री ने खोजा था।

योग—हारीत के १२ योग गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मै, भाग तीन, पृ० ५५६ पर उद्धृत किए हैं।

३८. क्षारपाणि ॥९॥

आत्रेय पुनर्वसु का छटा शिष्य क्षारपाणि था। आत्रेय से आयुर्वेद सीख कर इसने क्षारपाणितन्त्र की रचना की। यह तन्त्र भी कायचिकित्सापरक था। अनेक टीकाकार इस ग्रन्थ के वचन उद्धृत करते हैं। पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार क्षारपाणि सर्वलोकचिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था।

काल—चरक-संहिता, अष्टाँगसंग्रह तथा अष्टाङ्गहृदय आदि के पूर्वलिखित

प्रमाणों से निश्चय है कि क्षारपाणि ने भी अग्निवेश आदि पांच सहाध्यायियों के साथ ही तन्त्ररचना की। अतः अग्निवेश आदि का काल ही क्षारपाणि का काल है।

ग्रन्थ

क्षारपाणि-तन्त्र—इस समय क्षारपाणि तन्त्र उपलब्ध नहीं। इस तन्त्र के ११ वचन अनेक टीकाग्रन्थों से संगृहीत करके गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६१—६४ पर लिखे हैं। इन वचनों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य ५ वचन हमें उपलब्ध हुए हैं—

१. उक्तं च क्षारपाणौ—त्रिमासस्य रोमनखान् संहारयेत् इति।[1]

२. क्षारपाणिना सर्वातिसाराणामेव समता पृथगुक्ता, वचनं हि—वातातिसारः सामश्च सशूलः फेनिलस्तनुः।
श्यावः सशब्दो दुर्गन्धो विबद्धोऽल्पाल्प एव च॥
एवं पित्तकफे साममतीसारं विनिर्दिशेत्।[2]

३. अपरं च क्षारपाणीयं वचः—
अस्थीनि संश्रित्य तृतीयकस्तु मेदश्च संश्रित्य च केचिदन्ये।
मज्जानमाश्रित्य चतुर्थकस्तु प्रवर्तते तेन स दुश्चिकित्स्यः॥[3]

४. क्षारपाणिनाप्युक्तम्—
पाचनं पाचयेद्दोषान् सामान् शमनमेव तु।
दीपनं ह्यग्निकृत्वामं कदाचित्पाचयेन्न वा॥[4] इति

यह वचन सर्वाङ्गसुन्दरा के तीन हस्तलिखित ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं।

५. तथा च क्षारपाणिः—
अंगुलान्यथ चत्वारि पञ्च षट् सप्त वा तथा।
सप्तांगुलं परं नेत्रं प्रणिधेयं भिषग्विदा।
हिंस्याद्बस्तिं नरं चेह प्रमाणादधिकं ततः॥ इति।[5]

योग—गिरिन्द्रनाथजी ने क्षारपाणि के दो योग उद्धृत किये हैं।

३८. खरनाद॥५॥

वंश—बौधायन श्रौ० प्रवर १७ के अनुसार खारणादि भरद्वाज गोत्रा-

---

१. चर० सू० ८। ९८ की चक्रपाणिदत्त व्याख्या।
२. चर० चि० १९।११ की चक्रपाणिदत्त व्याख्या।
३. चर० चि० ३। ६३-६७ की जेज्जट व्याख्या।
४. अ० हृ० सू० १४। ६ की सर्वांग सु० व्याख्या।
५. सुश्रुतसंहिता चि० ३७। १००, १०१ की डल्हण व्याख्या।

न्तर्गत है ।

दो व्याकरणों में खरनादशब्द—आत्रेय-शिष्य छः आचार्यों का वर्णन हो चुका । अब एक अन्य आचार्य खरनाद का वर्णन किया जाता है । पाणिनीय गणपाठ ४ । १ । ९६ में खरनादिन् शब्द पढ़ा गया है । पाणिनि के उत्तर-कालीन चान्द्रव्याकरण २।४।२० में भी इस शब्द का उल्लेख है । निश्चय है कि आचार्य खरनाद पर्याप्त प्राचीन था । खरनाद की संहिता के पर्याप्त वचन टीकाग्रन्थों में उद्धृत हैं ।

खरनाद-संहिता का रचना काल—यह संहिता चरक टीका-कार भट्टार हरिश्चन्द्र से पूर्व रची गई थी ।

भट्टार हरिश्चन्द्रकृता अथवा प्रतिसंस्कृता—अष्टांगसंग्रह क०, अ०, ३८, पृ० ३६८ पर इन्दुव्याख्या में लिखा है—

या च खरणादसंहिता भट्टारहरिश्चन्द्रकृता श्रूयते सा च चरक-प्रतिबिम्बरूपैव लक्ष्यते ।

अर्थात्—जो खरणादसंहिता भट्टारहरिश्चन्द्रकृता सुनी जाती है, वह चरक का प्रतिबिम्बरूप दिखाई देती है ।

वैद्यमण्डल के प्रमुख स्तम्भ आचार्य श्री यादवजी यहां भट्टारहरिश्चन्द्र-कृता नहीं अपितु भट्टारहरिश्चन्द्रप्रतिसंस्कृता पाठ उपयुक्त मानते हैं ।

पुरातन व्याकरणों में पठित खरनादिन् शब्द व्यक्ति-विशेष का नाम प्रतीत होता है । अतः इस संहिता का नाम इसके रचयिता खरनाद के नामानुसार रखा गया । यदि संग्रह के पूर्वलिखित वचन में आचार्य यादवजी का पाठ रखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि चरकसंहिता के व्याख्याकार भट्टार हरिश्चन्द्र ने आचार्य खरनाद की संहिता का प्रतिसंस्कारमात्र किया । अतः इस प्रतिसंस्कृत संहिता में चरकसंहिता का प्रतिबिम्ब है । अष्टाङ्गहृदय सू० ३ । १२ की हेमाद्रि व्याख्या में भी चरक तथा खारणादि की एकमति प्रदर्शित की है ।

चरक-खारणादि-प्रभृतिभिः शिशिरषट्कमेवाधिकृत्य चयादी-नामुक्तत्वात् ।

अष्टाङ्गहृदय सू० ५।६, ७ की हेमाद्रि व्याख्या में खारणादि का एक वचन उद्धृत है—कालमानं तूक्तं खारणादिना—

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूयिष्ठमाहितं जलम् ।
व्युष्टं द्विरात्रं तच्चैव प्रसन्नममृतोपमम् ॥

श्रीदास पण्डित अ०हृ० टीका पृ० १५०, १५१ पर इस वचन को हरिश्चन्द्र

का कहता है। स्पष्ट है कि हरिश्चन्द्र ने खारणाद संहिता का प्रतिसंस्कार किया। अतः हेमाद्रि ने जो वचन खारणादि के नाम से उद्धृत किया, उसे श्रीदास पण्डित ने हरिश्चन्द्र का लिखा।

कायचिकित्सापरक संहिता—पूर्व लिख चुके हैं कि यह संहिता चरक-प्रतिबिम्बरूपिणी है, अतः इस संहिता में कायचिकित्सा की प्रमुखता स्वतः सिद्ध है।

खरनाद अथवा खारणादि—टीका ग्रन्थों में खरनाद तथा खारणादि के वचन मिलते हैं। यथा—

१. खरनादेनोक्तम्— स्याग्निर्जलं श्रृतं.......।[1]
२. खारणादिः— कषायमधुरो ग्राही........।[2]
३. खारणादिस्त्वाह— स्वाद्वम्लपाकम्..........।[3]
४ खरनादे तूक्तम्— दध्यादीनां तु.........।[4]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि खरनाद तथा खारणादि शब्द व्यक्तिवाचक हैं, परन्तु संख्या ४ के वचन में खरनाद शब्द खरनाद संहिता के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये सब पाठ चिन्त्य हैं।

खरनादसंहिता का पुनरुद्धार—खरनाद अथवा खारणादि के अनेक वचन भिन्न-भिन्न टीकाग्रन्थों में सुरक्षित हैं। इसका सबसे अधिक भाग हेमाद्रि तथा अरुणदत्त ने सुरक्षित किया है। चरकसंहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की टीकाओं में भी खरनाद अथवा खारनादि के वचन उद्धृत हैं। गिरिन्द्रनाथ जी ने ऐसे ३४ वचन व्याख्या कुसुमावलि, व्याख्या मधुकोश, तत्त्वचन्द्रिका, सर्वाङ्ग-सुन्दरा तथा भावप्रकाश से संगृहीत किए हैं। यदि सब वचनों को शास्त्र क्रमानुसार तत् तत्प्रसङ्गान्तर्गत एकत्रित किया जाए तो इस संहिता का पर्याप्त अंश सुरक्षित हो सकता है।

योग—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ७६८ पर खरनाद के तीन योग उद्धृत किए हैं।

४०. चक्षुष्येण ॥८॥

चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण—टीकाग्रन्थों में चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण के वचन उद्धृत हैं—

---

१. अ० हृ० सू० ५।७ की सर्वांगसु० व्याख्या।
२. अ० हृ० सू० ६।७ की सर्वांगसु० व्याख्या।
३. अ० हृ० सू० ५।२६ हेमाद्रि व्याख्या।
४. अ० हृ० सू० ५।४१ की सर्वांगसु० व्याख्या।

१. यदाह चक्षुष्यः—

क्वाथपाने नव प्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता।
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी॥ इति।[१]

२. तथा च चक्षुष्येणः—

निर्वमेत्तु मुखेनैव नासया न कथञ्चन।
विलोमतो गतो धूमः कुर्याद्दर्शनविभ्रमम्॥इति।[२]

३. चक्षुष्येणोऽप्याह—

पटोलमूलं त्रिफला विशाला च पलांशिका।
कटुका त्रायमाणा च पलार्धा पादनागरा॥
तस्मात् षड्भागमुत्क्वाथ्य जले दोषहरं पिबेत्॥इति।[३]

४. उभयमार्गपानहेतुश्चक्षुष्येण दर्शितो यथा—

उरःकण्ठादिरोगेषु मुखेनैव पिबेन्नरः।
शिरः कर्णाक्षिनासास्थे नासातो धूममाचरेत्॥इति।[४]

इन वचनों में चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण पाठ विचारणीय हैं।

चक्षुष्येण अथवा चाक्षुषेण संहिता—चिकित्साकलिका विवृति पृ० ७४ पर चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण की संहिता का नाम भी चक्षुष्येण है—इति चक्षुष्येणात्।

अष्टाङ्ग संग्रह क०, अ० ८ पृ० ३६६ पर इस संहिता का नाम चाक्षुषेण लिखा है—

चाक्षुषेण संहितायां—पादावशेषं क्वथितं च विद्यादिति।

पूर्व लिखित दोनों उद्धरणों में एक ही संहिता के लिए दो भिन्न नामों का प्रयोग हुआ है, अतः दोनों पाठों का मूल कारण विचारणीय है।

गिरिन्द्रनाथ जी ने व्याख्यामधुकोश तथा चिकित्सा-कलिका विवृत्ति से पूर्वोद्धृत वचनों के अतिरिक्त चक्षुष्येण के १३ वचन उद्धृत किए हैं।

अन्य ग्रन्थ

अर्थशास्त्र ?—रघुवंश ५।५० की मल्लिनाथ कृत टीका में निम्नलिखित वचन उद्धृत है—

---

१. सुश्रुतसंहिता चि० ३३।७ की डल्हण व्याख्या।
२. सु० सं० चि० ४०।६–९ की डल्हण टीका।
३. चर० चि० ७।६४ की चक्रपाणि व्याख्या।
४. सु० सं० चि० ४०।६–९ की डल्हण टीका।

अत्र चाक्षुषः—

लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यात्। इयं हि श्रीर्ये करिण इति।

यह अर्थशास्त्र अथवा हस्तिशास्त्र का वचन प्रतीत होता है।

४१. मार्कण्डेय

दीर्घजीवितम मार्कण्डेय ऋषि सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था।[1] पूर्व पृ० २१० पर उद्धृत काश्यप संहिता के वचनानुसार महर्षि मार्कण्डेय की आयुर्वेदीय संहिता पर्याप्त विशाल थी।

काल—पूर्व पृ० १३४ पर वर्णित हिमवत्पार्श्व पर एकत्रित होने वाले ऋषियों में मार्कण्डेय भी उपस्थित था। फलतः द्वितीय द्वापर में मार्कण्डेय जीवित था। वाल्मीकीय रामायण दाक्षिणात्य पाठ ७१।४ में लिखा है—**मार्कण्डेयः सुदीर्घायुः**। अर्थात् मार्कण्डेय ऋषि न केवल दीर्घायु प्रत्युत अति दीर्घायु थे। वही मार्कण्डेय वनवास के दिनों में युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से मिले।

आयु—अनेक दीर्घजीवी आयुर्वेदाचार्यों का वर्णन कर चुके, परन्तु मार्कण्डेय की आयु दीर्घतम थी। महाभारत आरण्यक पर्व १८०।५,३९,४० के अनुसार मार्कण्डेय बहुवत्सरजीवी था। यथा—**बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः**। अर्थात् महातपस्वी मार्कण्डेय अनेक वर्ष जीने वाला है। आरण्यक पर्व १८७।५१ में पुनः लिखा है—**दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा**। अर्थात् हे कौन्तेय, मार्कण्डेय दीर्घायु और स्वच्छन्द-मरण वर वाले हैं। मार्कण्डेय ने दीर्घायु प्राप्त करने के लिए उग्र तपस्या की, तथा रसायन सेवन किया। बावर हस्तलेख १५, भाग २, पत्रा १०, अपर भाग के अनुसार अश्वि-निर्दिष्ट अमृत तैल के सेवन से आयुष्काम भगवान् मार्कण्डेय दीर्घायु हुए—

आयुष्कामश्च भगवान् मार्कण्डेयो महानृषिः।
तैलमेतत्प्रयुञ्जानो दीर्घ्यमायुरवाप्तवानिति। ३,४

गुरु

भरद्वाज—चरक संहिता सू० १।२७ के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि नें भी भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. मार्कण्डेय संहिता—पूर्व पृ० १०४ पर लिखे शालिहोत्र के वचनानुसार मार्कण्डेय सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। यह संहिता सम्प्रति

---

१. देखो पूर्व पृ० १०४ पर शालिहोत्र-वचन

उपलब्ध नहीं, न इसका कोई वचन अथवा योग ।

२. नाड़ी परीक्षा—मद्रास पुस्तकभण्डार में नाड़ीशास्त्र-संग्रह नामक ग्रंथ का एक बृहद् हस्तलेख है। उसके अंतिम श्लोक में लिखा है—काश्यप, कौशिक, व्यास, वसिष्ठ, कुम्भसम्भव=अगस्त्य, पराशर, भरद्वाज तथा मार्कण्डेय के ग्रन्थों के आधार पर उस ग्रन्थ की रचना हुई है। इस वचन से निश्चय होता है कि मार्कण्डेय का नाड़ि-शास्त्र विषयक ग्रन्थ अवश्य था। गिरिन्द्रनाथ जी हि० इ० मे० भाग २, पृ० ५०० पर घोष के प्रमाण से लिखते हैं—अहमदाबाद तथा बम्बई के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में मार्कण्डेय की नाड़ी परीक्षा रखी हुई है। इति

३. चित्रसूत्र—विष्णु धर्मोत्तर खण्ड ३ के अनुसार मार्कण्डेय ने महाराज वज्र को चित्रसूत्र का उपदेश किया।

४. वास्तु शास्त्र—विश्व भारती पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचि में संख्या १०८६ के अन्तर्गत मार्कण्डेय का वास्तु शास्त्र विषयक हस्तलेख सन्निविष्ट है। यथा—मार्कण्डेयमतवास्तुशास्त्रं प्रतिमालक्षणम्।

५. पुराण—मार्कण्डेय पुराण प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का मार्कण्डेय से कितना सम्बन्ध है, यह विचारणीय है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे दशमोऽध्यायः।

एकादश अध्याय

शालाक्य-तन्त्र

४२. निमि ॥१॥

चरकसंहिता सू० ३०।२८ में आयुर्वेद के अङ्गों का जिस क्रम से वर्णन है, तदनुसार आयुर्वेद का दूसरा अङ्ग शालाक्य है। ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों की चिकित्सा में शलाका=सलाई का प्रयोग होने से इस तन्त्र का नाम शालाक्य है। इस अध्याय में इस तन्त्र के आचार्यों का वर्णन किया जाता है।

शालाक्य-चिकित्सा-विस्तारक निमि

भरद्वाज तथा पुनर्वसु आदि आचार्यों ने इन्द्र से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया। अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० २ पर इसका विशद वर्णन है। संग्रह के अनुसार निमि ने भी पुनर्वसु आदि ऋषियों के साथ इन्द्र से आयुर्वेद सीखा। इन्द्र-शिष्य इन आचार्यों ने आयुर्वेद के पृथक्-पृथक् अंगों पर अपने तन्त्र रचे। इनमें से निमि ने शालाक्य-तन्त्र का विस्तृत ज्ञान दिया।

आद्य भिषक्—मर्त्यलोक में शालाक्य का क्रमबद्धज्ञान सर्वप्रथम निमि ने दिया, अतः उसे आद्य-भिषक् कहा गया है। यथा—

भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ।[1]

डल्हण इसकी व्याख्या में लिखता है—**आद्यैः भिषग्भिः विदेहादिभिः।** अर्थात् विदेह आदि आद्य भिषगों ने।

वंश—रामायण[2] तथा पुराणों[3] की वंशावलियों के अनुसार महाराज निमि विदेह-राज्य का प्रथम संस्थापक था। निमि का पुत्र मिथि तथा मिथि का जनक था। तत्पश्चात् इस वंश में जनक उपाधि धारण करने वाले अनेक राजा हुए।[4]

---

१. सुश्रुतसंहिता उ० २०।१३॥ २. रामायण पश्चिमोत्तर शाखा बालकाण्ड ६७।३॥ ३. वायु ८९।३॥ ब्रह्माण्ड ३।६४॥ ४. देखो भा० व० इ०, द्वि० सं०, पृ० १९०।

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय में मखादेव सुत्तन्त ८३ के अनुसार मखादेव के वंश में निमि अन्तिम धार्मिक राजा था। निमि का पुत्र कराल-जनक था। कराल इस वंश का अन्तिम पुरुष हुआ।

कठिनाई—पुराण वंशावलि तथा मज्झिम-निकाय के वृत्तान्त में पर्याप्त भेद है। आर्य-परम्परा में निमि वंशकर्ता है, परन्तु बौद्ध लेख के अनुसार वह इस वंश के लगभग अन्त में हुआ।

यह बात हमारी समझ में नहीं आती। यदि दो निमि माने जाएं तो बौद्ध-परम्परा में उनके नामों का पार्थक्य-दर्शक कोई विशेषण मिलना चाहिए, परन्तु ऐसा विशेषण हमें दिखाई नहीं पड़ा।

निमि, विदेह तथा जनक

आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनेक पाठों के सन्तोलन से ज्ञात होता है कि कहीं-कहीं निमि, विदेह तथा जनक, ये तीनों शब्द एक व्यक्ति का बोध कराते हैं और कहीं-कहीं दो भिन्न व्यक्तियों का। नीचे हम ऐसे स्थलों का दिग्दर्शन कराते हैं।

गिरिन्द्रनाथ के अनुसार निमि, वैदेह, विदेह तथा महाविदेह भिन्न व्यक्ति

गिरिन्द्रनाथजी हि० इ० मे० भाग २, पृ० ३३७ पर लिखते हैं—

It is highly probable that there were different persons निमि, वैदेह, विदेह and महाविदेह।

आलोचना—नाथजी के अनुसार ये चार व्यक्ति हुए। वस्तुतः निमि और विदेह की एकता तथा पार्थक्य विचारणीय है। वैदेह शब्द तद्धितान्त है। यह शब्द सामान्यरूपेण अनेक विदेह राजाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। काश्यप-संहिता तथा चरकसंहिता में निमि के लिए भी वैदेह शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द विशेषणरूप में प्रयुक्त हो सकता है, व्यक्ति-विशेष के नाम के रूप में नहीं। यद्यपि उत्तरकाल में विदेह तथा जनक शब्द भी विशेषण बन गए, तथापि इस स्थल पर ये शब्द विचारणीय हैं। महाविदेह किसी व्यक्ति का नाम नहीं, अपितु यह प्रयोग विदेह के ग्रन्थ के महापाठ के लिए हुआ है।

निमि तथा विदेह के ऐक्य-प्रदर्शक स्थल

यहां हम ऐसे स्थलों का संग्रह उपस्थित करते हैं जहां निमि तथा विदेह शब्दों का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए हुआ है—

१. भावप्रकाश मध्यखण्ड, नेत्ररोगाधिकार, श्लोक १४ में भावामिश्र विदेह का एक श्लोकार्ध लिखता है—

एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम्। इति विदेहवचनात्।

अष्टाङ्ग संग्रह उ०, पृ० १०९ पर सम्पादक रुद्रपारशव द्वारा उद्धृत किसी अज्ञातनामा व्याख्या में यह वचन निमि के नाम से उल्लिखित है। संग्रह की टीका में इस श्लोकार्ध के पूर्ववर्त्ती तथा उत्तरवर्ती श्लोक भी उद्धृत हैं। यथा—निमिनाप्युक्तम्—

यदा दोषाः प्रकुपिताः प्राप्य रूपवहे सिरे।
दृष्टेरभ्यन्तरात् यत्तु पटलं समभिद्रुताः॥
अभिधानाद्विवृद्धाश्च नीरुजत्वादुपेक्षिताः।
दृशोः पटलमाश्रित्य नेत्रमध्यानुसारिणः॥
एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात् पटलान्तरम्।
शनैरनुसृताश्चैव पुष्यन्ति स्थिरतां गताः॥
ओषधीरसवीर्याणां मार्गमावृत्य नेत्रयोरिति।

स्पष्ट है कि भावमिश्र जिसे विदेह-वचन कहता है, अष्टाङ्गसंग्रह में उद्धृत टीका में उसे निमि का श्लोक कहा है। अतः निमि तथा विदेह एक हैं।

२. गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग २, पृ० ३५१ पर गदनिग्रह भाग २, पृ० ४५६ के आधार से चूर्णाञ्जन योग का कर्ता निमि को लिखा है। इससे आगे पृ० ३५४,५५ पर गिरिन्द्रनाथ जी ने यह सारा योग उद्धृत किया है। इसका अन्तिम वचन द्रष्टव्य है—

शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहपतिनिर्मितम्।

इस वचन में चूर्णाञ्जन का कर्ता विदेहपति लिखा है। अतः स्पष्ट है कि यहां निमि को विदेहपति कहा है।

३. सुश्रुतसंहिता उ० १।५ में लिखा है—

शालाक्यतन्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः॥

इसकी व्याख्या में डल्हण लिखता है—

विदेहाधिपकीर्तिता इति निमिप्रणीताः षट्सप्ततिः नेत्ररोगाः।

यहां डल्हण विदेहाधिप को निमि कहता है।

चक्रपाणिदत्त का पाठ—चरकसंहिता चि० २६।१२९-३१ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—नेत्ररोगाणां षटसप्ततिः प्राह विदेहः।

अर्थात्—नेत्ररोग ७६ हैं यह विदेह ने कहा है।

डल्हण के अनुसार जो निमि का मत है, चक्रपाणि उसे विदेह-मत लिखता है।

इन सब पाठों में निमि तथा विदेह को एक माना है, तथा निमि के लिए विदेहाधिपति शब्द प्रयुक्त हुआ है।

निमि वैदेह है

१. चरक संहिता सू० २६।५ में निमि को वैदेह कहा है—निमिश्च राजा वैदेहः ·······।

२. काश्यप संहिता सि० पृ० ११६ पर लिखा है—वैदेहो निमिः।

इन दोनों स्थलों में निमि को वैदेह कहा है।

जनक भी विदेहाधिपति तथा वैदेह कहाता था।

१. अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० १२६ पर इन्दु अपनी व्याख्या में लिखता है—विदेहाधिपतिः जनकः। पृ० ३१४ पर वह पुनः लिखता है—विदेहपतिना जनकेन।

२. पूर्व पृ० २३२ पर उद्धृत डल्हण के टीकांश के आगे लिखा है—अस्याग्रे केचित्—

विदेहाधिपतिः श्रीमान् जनको नाम विश्रुतः।
आलम्भयज्ञप्रवणः सोऽयजत् ब्राह्मणैर्वृतः॥
तस्य यागप्रवृत्तस्य कुपितो भगवान् रविः।
दृष्टिं प्रणाशयामास सोऽनुतेपे महत्तपः।
दीप्तांशुः तपसा तेन तोषितः प्रददौ पुनः।
चक्षुर्वेदं प्रसन्नात्मा सर्वभूतानुकम्पया॥

इति पाठं पठन्ति व्याख्यानयन्ति च। तं च बृहत्पञ्जिकाकारो न पठति, तस्मान्मयापि न पठतो न व्याख्यातश्च। सुश्रु० उ० १।४–७ की व्याख्या।

अर्थात्—कुछ लोग [पूर्व पृ० २३२ पर उद्धृत सुश्रुतसंहिता के विदेहाधिपकीर्तिताः आदि] पाठ के आगे [निम्नलिखित] श्लोक पढ़ते हैं, तथा इसकी व्याख्या करते हैं। बृहत्पञ्जिकाकार न यह पाठ लिखता है, न इसकी व्याख्या करता है। अतः मैंने [डल्हण ने] भी न यह पाठ पढ़ा है और न इसकी व्याख्या की है।

सुश्रुतसंहिता के इस पाठ में लिखा है—विदेहाधिपतिः श्रीमान्, विश्रुत जनक नाम वाला [राजा है]। उसने रवि=भास्कर से चक्षुर्वेद प्राप्त किया।

पूर्व पृ० ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त के वचनानुसार जनक भास्कर का शिष्य था। अतः सुश्रुतसंहिता का उपरिलिखित पाठ विचारणीय है। इसके

अनुसार विदेहाधिपति जनक था, परन्तु डल्हण के अनुसार विदेहाधिपति निमि था। क्या जनक तथा निमि एक थे ?

३. चरकसंहिता शा० ६।२१ में अनेक सूत्रकार ऋषियों के मत-प्रदर्शन करते हुए लिखा है—इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः । यहां जनक को वैदेह कहा है।

४. काश्यपसंहिता सि०, पृ० ११६ पर लिखा है······वैदेहो जनकः ।

पूर्व उद्धृत चारों स्थलों में जनक को क्रमशः विदेहपति, विदेहाधिप तथा वैदेह कहा है।

निमि तथा जनक दो व्यक्ति हैं

पूर्व पृ. १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचन में जनक तथा निमि दो पृथक पृथक् व्यक्तियों को आयुर्वेद कर्ता कहा है। यथा—

हारीतः क्षारपाणिश्च निमिश्च वदतां वरः ।
जनकश्चैव राजर्षिः तथैव हि वि नग्नजित् ।

इस पाठ में निमि तथा जनक को स्पष्टतया पृथक् माना है। पूर्व लिखित सारे पाठों से स्पष्ट है कि विदेह तथा वैदेह शब्द निमि और जनक के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। विदेह अथवा वैदेह कोई व्यक्ति विशेष नहीं। अतः विचारणीय पक्ष यह है कि क्या निमि तथा जनक पृथक् थे, अथवा जनक शब्द भी निमि का विशेषण है।

क्या आयुर्वेदीय ग्रन्थों का जनक, कराल था

महाभारत शान्तिपर्व ३०२।७,१० में कराल-जनक प्रयोग पाया जाता है। विचारणीय है कि क्या आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी जनक शब्द का प्रयोग कराल के लिए हुआ है। अस्तु इतना निश्चित है कि निमि का शिष्य कराल था।

काल—निमि, आत्रेय पुनर्वसु, धन्वन्तरि, भरद्वाज, काश्यप, कश्यप तथा आलम्बायन आदि समकालिक थे। इन सब ऋषियों ने एक साथ इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण किया।[1] काश्यपसंहिता सू०,पृ० २७ पर वर्णित वादसभा में वार्योविद, काङ्कायन, दारुवाह तथा हिरण्याक्ष के साथ निमि भी उपस्थित था। चरकसंहिता २६।३–७ में वर्णित चैत्ररथ वन में होने वाली वाद-सभा में पुनर्वसु आत्रेय, भद्रकाप्य, शाकुन्तेय, हिरण्याक्ष, वार्योविद तथा काङ्कायन आदि के साथ राजा वैदेह निमि भी उपस्थित था। इस प्रसङ्ग में इन सबको श्रुतवयोवृद्धाः महर्षयः कहा है। स्पष्ट है कि इस समय निमि राज्य त्याग

---

१. अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० २।

चुका था, तथा वह वयोवृद्ध अर्थात् बड़ी आयु वाला था। बौद्ध जातकग्रन्थ के अनुसार कलिङ्गराज करण्डु, गांधार नग्नजित् (भारत युद्ध से २०० वर्ष पूर्व) तथा निमि वैदेह समकालिक थे। रामायण उत्तरका० सर्ग ५५ में वसिष्ठ-शाप से निमि के देह त्यागने का वर्णन है।

स्थान—निमि ने वैजयन्त नामक नगर की स्थापना की। यह नगर हिमवत्पार्श्व के निकट था।[1]

गुरु

१. **इन्द्र**—पूर्व पृ० २३० पर लिख चुके हैं कि निमि ने इन्द्र से आयुर्वेद सीखा।

२. **धन्वन्तरि द्वितीय**—सुश्रुतसंहिता सू. १।३ की निबन्धसंग्रह व्याख्या के अनुसार निमि का गुरु सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि था।

३. **भास्कर**—पूर्व पृ. ९२ पर लिख चुके हैं कि जनक का गुरु भास्कर था।

शिष्य

कराल—अष्टाङ्गसंग्रह वर्णित आयुर्वेदोपदेश-परम्परा के अनुसार निमि तथा पुनर्वसु आदि महर्षियों ने अपने शिष्यों को आयुर्वेद सिखाया। उस प्रकरण से ज्ञात होता है कि निमि का शिष्य कराल था।

ग्रन्थ

१. **निमि अथवा विदेह तन्त्र**—मर्त्यलोक में शालाक्य के विस्तार का श्रेय निमि को है। वाग्भट अपने संग्रह में लिखता है कि निमि ने अपना तन्त्र रचा। इसमें ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों की चिकित्सा का विशद वर्णन था। अष्टांग-हृदय सू० १।४ की व्याख्या में अरुणदत्त लिखता है—

ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा च जनकप्रणीतात् तन्त्रात् यथा अवगम्यते न तथा सुश्रुतप्रणीतात्।

अर्थात्—जनक रचित [शालाक्य] तन्त्र से ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा का जैसा ज्ञान होता है वैसा सुश्रुत रचित [शल्यतन्त्र] से नहीं।

आयुर्वेदीय तन्त्रों, संग्रह ग्रन्थों तथा टीकाओं में निमि वा जनक के शालाक्यतन्त्र को प्रमाण माना है। यह तन्त्र इस समय उपलब्ध नहीं, परन्तु इसके वचन, योग तथा मत स्थान-स्थान पर उद्धृत हैं। पूर्व लिख चुके हैं कि निमि ने राज्य-त्याग के उपरान्त तन्त्र रचना की। अनेक स्थानों में उसे भगवान्

---

१. रामायण उत्तर ५५।६, १२॥

तथा मुनि कहा है। चरक-संहिता शा० ६।२१ में जनक वैदेह को सूत्रकार ऋषि कहा है।

चरक तथा सुश्रुत के शालाक्य-प्रकरण का आधार

सुश्रुत संहिता में शालाक्य-प्रकरण का वर्णन करने के लिए विदेहाधिप के तन्त्र का प्रामाण्य माना है। चरक संहिता चि० २६।१३० में कराल के अनुसार नेत्ररोगसंख्या ६६ कही है। अष्टाङ्गहृदय की रचना यद्यपि भिन्न-भिन्न तन्त्रों के आधार पर हुई है, परन्तु शालाक्य-वर्णन में वहां भी जनक-तन्त्र प्रमाणभूत है।

२. **महाविदेह**—विदेहतन्त्र के अतिरिक्त व्याख्या कुसुमावलि पृ० ५८८ पर दो श्लोक तथा पृ० ५६० पर आठ श्लोक महाविदेह से उद्धृत हैं।

३. **वैद्य-सन्देह-भञ्जन**—पूर्व पृ० ६२ पर लिखे ब्रह्मवैवर्त के वचनानुसार जनक ने भास्कर की संहिता पढ़ कर वैद्यसन्देह-भञ्जन नामक ग्रन्थ रचा।

वचन तथा योग—व्याख्या कुसुमावलि, निबन्ध संग्रह, व्याख्या मधुकोश, तत्त्व चन्द्रिका, भावप्रकाश, नावनीतक तथा गदनिग्रह में उद्धृत विदेह, महाविदेह निमि तथा जनक के ११६ वचन तथा ७ योग गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग २ में लिखे हैं। इनके अतिरिक्त १२ अन्य वचन तथा योग हमने ढूंढे हैं। स्थानाभाव से केवल उनके उपलब्धि-स्थान लिखते हैं—

१. चरक० शा० ६।२१॥ २. चरक० चि० २६।११६-१२३ की च० पा० व्या०। ३. चरक० चि० २६।१२६-३१ की चक्रपा० व्या०। ४. चरक० चि० २६।१३४-४३ च० पा० व्या०। ५. अ० सं० उ०, पृ० १०६। ६. अ० सं० उ०, पृ १२३। ७. अ० सं० सू०, पृ० ७१। ८. अ० हृ० उ० ११।२७॥ ६. अ० हृ० उ०, २२।८१-८३॥ १०. अ० हृ० उ० ३०।३१॥ ११. सुश्रु० उ० १८।१२ नि० सं० व्या०। १२. सुश्रु० उ० २०।१४ नि० सं० व्या०।

४३. कृष्णात्रेय ॥२॥

शालाक्य-तन्त्र-कर्ता—भिषगाचार्य कृष्ण=पुनर्वसु आत्रेय का विस्तृत-वृत्त पूर्व पृ० १७१-१६१ तक कर चुके हैं। व्याख्या-कुसुमावालि पृ० ६०० के एक वचन से स्पष्ट है कि कृष्ण आत्रेय की शालाक्य-तन्त्र पर एक स्वतन्त्र रचना उपलब्ध थी। यथा—**शालाकिभिस्तु प्रतिदोषं पठितानि द्रव्याणि। तथा च कृष्णात्रेयः—अथ द्रव्यप्रविभाग एव वातघ्नैर्भेषजैः सिद्ध······इति।**

कृष्ण=पुनर्वसु आत्रेय कायचिकित्सा का आचार्य था, परन्तु उसकी शालाक्य-तन्त्रीय रचना कृष्णात्रेय नाम से प्रसिद्ध थी।

चान्द्रभागी—पूर्व पृ० १७२ पर पुनर्वसु के चान्द्रभागी नाम की कुछ

बिवेचना की गई है। इस विषय पर अमर-कोष के टीकासर्वस्व १।१०।३४ में सर्वानन्द का लेख द्रष्टव्य है—

चान्द्रभागाया अपत्यं चान्द्रभागेय इति। चान्द्रभागी नद्याम्।

यहां टीकासर्वस्व में शब्दार्णव कोश का पाठ उद्धृत है। तदनुसार चन्द्रभागा नदी को चान्द्रभागा भी कहते हैं। उस नदी के तट का वासी चान्द्रभागी था। अष्टाध्यायी ४।१।११३ पर काशिका वृत्ति का इस विषय का पाठ त्रुटित है।

४४. कराल ॥३॥

वंश—कराल विदेहों का वंशज था।

नाम—महाभारत शान्तिपर्व में कराल को विदेहों की सामान्य उपाधि जनक से स्मरण किया है। पूर्व पृ० १०४, १०५ पर उद्धृत शालिहोत्र वचन में भी कराल के लिए जनक शब्द का प्रयोग हुआ प्रतीत होता है।

गिरिन्द्रनाथ की भूल—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७१ पर कराल भट्ट का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कराल भट्ट नाम कहीं नहीं पाया जाता। गिरिन्द्रनाथ जी निबन्धसंग्रह उ० १।४-७ से निम्नलिखित भ्रष्ट पाठ उद्धृत करते हैं—

निमिप्रणीताः षट्सप्ततिर्नेत्ररोगाः। करालभट्ट-शौनकादिप्रणीताः।

गिरिन्द्रनाथ जी ने इस भ्रष्ट पाठ के आधार पर कराल का नाम कराल भट्ट स्वीकार किया है। वस्तुतः भट्ट शब्द भद्र शब्द का अशुद्ध पाठ है। आचार्य भद्रशौनक भी शालाक्य तन्त्रकार था, अतः कराल से अगला नाम भद्रशौनक है। इस विषय में सुश्रुतसंहिता निर्णयसागर संस्करण, तृतीयावृत्तिः (पृ० ५९५) का निम्नलिखित पाठ द्रष्टव्य है—

निमिप्रणीताः षट्सप्ततिर्नेत्ररोगाः न कराल-भद्रशौनकादिप्रणीताः।

इस पाठ में स्पष्टतया कराल तथा भद्रशौनक नाम वाले दो आचार्यों को स्मरण किया है। अतः शुद्ध नाम कराल है।

गुरु

निमि—अष्टाङ्गसंग्रह सू०, पृ० २ के वचन से निमि कराल का गुरु प्रतीत होता है।

शालाक्य तन्त्रकार—सुश्रुतसंहिता उ० १।४–७ की व्याख्या में कराल को शालाक्य तन्त्रकार कहा गया है।

चरकसंहिता के अक्षिरोग-प्रकरण का आधार कराल-तन्त्र

चरकसंहिता कायचिकित्सा-परक तन्त्र है। उसमें ऊर्ध्वजत्रु रोगों का थोड़ा

सा वर्णन मिलता है। इनका सविस्तर वर्णन शालाक्य तन्त्रान्तर्गत है। कायचिकित्सा अथवा शल्यचिकित्सा वाले आचार्यों ने इस विषय को परतन्त्र विषय कहकर अपने ग्रन्थों में सम्मिलित किया है। चरक ने अक्षिरोगों के विषय में कराल के षण्णवति नेत्ररोग सिद्धान्त का आश्रय लिया है। यथा[1]—

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातान्नेत्रामयाः षण्णवतिस्तु भेदात् ॥१३०॥
पराधिकारे तु न विस्तरोक्तिः शस्तेति तेनात्र न नः प्रयासः ॥१३१॥

अर्थात्—नेत्ररोगों के ९६ भेद हैं। परन्तु दूसरे तन्त्र के विषय में विस्तृत कथन उचित नहीं, अतः इस विषय में हमारा अधिक यत्न नहीं।

उपरि लिखित वचन की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

नेत्राणां षट्सप्ततिः विदेह प्राह। करालस्तु षण्णवतिम्। अशीति सात्यकिः प्राह। तेषु करालमतेनैवैतदभिधानम्।

अर्थात्—विदेह ने ७६ नेत्ररोग कहे हैं, कराल ने ९६, सात्यकि ने ८०। यहाँ [चरकसंहिता में] कराल के मत से यह कहा है [कि नेत्ररोग ९६ हैं]।

ग्रन्थ

कराल का शास्त्र—यह निश्चित है कि कराल का आयुर्वेदीय तन्त्र था। अनेक संहिताकार तथा टीकाकार कराल के इस तन्त्र से परिचित थे।

वचन—चरकसंहिता चि० २६।१२९-३१ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—उक्तं च तत्र—

विंशतिः सप्त वर्त्मस्था नव संधौ प्रकीर्तिताः।
त्रयोदश तु शुक्लस्थाः षड्रोगाः कृष्णभागजाः।
विंशतिः पञ्च दृष्टिस्थाः षोडशैव च सर्वगाः॥ इति॥

प्रतीत होता है चक्रपाणिदत्त के पास कराल-तन्त्र विद्यमान था। यह वचन कराल के तन्त्र से उद्धृत है। इसके अतिरिक्त कराल के तीन अन्य वचन गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मे० भाग तीन, पृ० ७७१ पर उद्धृत किए हैं।

४४. भद्रशौनक ॥४॥

वंश—शौनक शब्द तद्धितान्त है। अतः इस वंश के मूल पुरुष का नाम शुनक था। शौनक अनेक हुए हैं। यथा—अतिधन्वा शौनक[2], कापेय शौनक[3] इसी प्रकार शालाक्य तन्त्रकार शौनक का नाम भद्र है।

---

१. चरकसंहिता चि० अ० २६।

२. छान्दोग्य उपनिषद् १।९।३॥ ३. छान्दोग्य उपनिषद् ४।३।५॥

भद्रशौनक तथा शौनक—आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनसे भद्रशौनक तथा शौनक दो व्यक्ति प्रतीत होते हैं। कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिन से ज्ञात होता है कि शौनक तथा भद्रशौनक एक ही व्यक्ति के नाम हैं। हम दोनों प्रकार के स्थलों का निदर्शन करते हैं। अन्तिम निर्णय के लिए अनेक स्थलों के शुद्ध पाठों की आवश्यकता है। यद्यपि योग्य सम्पादकों ने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का यत्नपूर्वक सम्पादन किया है, तथापि अनेक पाठों का पूर्ण शुद्ध रूप निश्चित न हो सकने से ऐतहासिक क्रम विच्छिन्न हो जाता है।

शौनक तथा भद्रशौनक के ऐक्य-प्रदर्शक स्थल

१. अग्निवेश तथा भेल एक गुरु के शिष्य थे। उन दोनों के तन्त्रों में बहुधा समानभाव प्रतिबिम्बत हैं। ऐसे एक स्थल की तुलना से ज्ञात होता है कि शौनक तथा भद्रशौनक एक ही व्यक्ति का नाम था।

चरकसंहिता शा० ६।२१ में अनेक सूत्रकार ऋषियों के विप्रतिवादों के वर्णन में भद्रशौनक का निम्नलिखित मत उद्धृत है—

(क) पक्वाशयगुदमिति भद्रशौनको मारुताधिष्ठानत्वात्।

भेलसंहिता पृ० ८१ पर यही मत शौनक का कहा है। यथा—

(ख) पश्वा (क्व) दुगु (गु) द इति शौनकः, तदाश्रितत्वाद्वायोः।

भेलसंहिता के इस पाठ में कोष्ठान्तर्गत शोधन अनन्तकृष्ण शास्त्री द्वारा प्रस्तावित है। चरकसंहिता के उपरिलिखित पाठ से तुलना करने पर भेलसंहिता का यह त्रुटित पाठ अधिक शुद्ध हो सकता है। अग्निवेश तथा भेल दोनों सहाध्यायियों ने एक ही भाव लगभग समान शब्दों में प्रकट किया है। यथा—पक्वाशयगुद इति ·····। इन दोनों ग्रन्थों के पाठों से निश्चय है कि अग्निवेश तथा भेल इस स्थल में शौनक तथा भद्रशौनक को अभिन्न मानते हैं।

२. भेलसंहिता पृ० १५ के निम्नलिखित दो पाठों में शौनक तथा भद्रशौनक नामों का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए हुआ है—

(क) सिध्यति प्रतिकुर्वाण (इत्याख्यद्भ) द्रशौनकः।

(ख) न त्वेतां बुद्धिमात्रेयः शौनकस्यानुमन्यते।

ये दोनों वाक्य एक ही प्रकरण में स्वल्प अन्तर पर लिखे गए हैं। संख्या (क) के वचन में (इत्याख्यद्भ) द्रशौनकः पाठ शोधनीय है, परन्तु शौनक शब्द के साथ द्र शब्द के उल्लेख से निश्चय होता है कि मूलपाठ भद्रशौनक ही है। इस पाठ में जिसे भद्रशौनक कहा है कुछ पंक्तियों के पश्चात् उसी को शौनक कहा है। अधिक से अधिक यह सम्भावना हो सकती है कि (क) भाग

में जिसे भद्रशौनक कहा है, (ख) भाग में उसी के आधे नाम शौनक का प्रयोग हुआ।

३. पूर्व पृष्ठ १३५ पर चरक-संहिता-वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन में उपस्थित कुछ ऋषियों की सूचि लिख चुके हैं। उस सूचि में केवल शौनक नाम है, भद्रशौनक नहीं। प्रकरणान्त के आदि शब्द से यदि भद्रशौनक का ग्रहण माना जाए तो दो व्यक्ति बन सकेंगे अन्यथा एक।

शौनक तथा भद्रशौनक का पार्थक्य-प्रदर्शक स्थल

चरकसंहिता सि० ११। ५ तथा ६ के एक ही प्रकरण में शौनक और भद्रशौनक नामक दो व्यक्तियों के मत पृथक्-पृथक् दर्शाए हैं—

(क) कफपित्तहरं बरं फलेष्वथ जीमूतकमाह शौनकः।

(ख) तदसाध्विति भद्रशौनकः कटुकं चातिबलघ्नमित्यपि।

(क) भाग में शौनक जीमूतक फल को श्रेष्ठ बताता है, परन्तु (ख) भाग में भद्रशौनक कटुक फल को श्रेष्ठ समझता है।

इन दोनों प्रकार के स्थलों को ध्यान में रखकर अन्वेषण करना चाहिए कि शौनक तथा भद्र शौनक एक व्यक्ति है अथवा भिन्न-भिन्न।

काल—पूर्व पृ० १३५ पर संख्या ४७ अन्तर्गत लिख चुके हैं कि चरक-संहिता वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन में शौनक उपस्थित था। पूर्व पृ० १८८ पर वर्णित तृतीय-सभा में भृगु, कौशिक, काप्य, पुलस्त्य आदि के साथ शौनक भी उपस्थित था। फलतः शौनक इन ऋषियों का समकालिक था।

चरक संहिता का शौनक विषयक पाठ हिरण्याक्ष कुशिक नहीं हो सकता ? चरकसंहिता सू० अ० २५ में आत्रेय पुनर्वसु अन्य महर्षियों के साथ "यज्जः-पुरुषीय" विषय पर विचार-विनिमय करते हैं। इस स्थल पर अन्य सब ऋषि क्रमशः अपने मत बताते हैं। श्लोक १४,१५ में हिरण्याक्ष अपना मत कहता है। श्लोक १६ में अन्य ऋषि का मत दर्शाया है। इस श्लोक में हिरण्याक्ष को कुशिक लिखा है—तदुक्तवन्तं कुशिकं आह तन्नेति कौशिकः। यह पाठ ठीक नहीं। हिरण्याक्ष कौशिक था—

१. चरकसंहिता सूत्रस्थान २६।३ तथा ८ में हिरण्याक्ष को कौशिक लिखा है—हिरण्याक्षश्च कौशिकः। हिरण्याक्षः कौशिकः।

२. आर्य इतिहास में यह सर्वमान्य है कि गाधि का पिता कुशिक था। उसके वंशज कौशिक कहाए। अतः हिरण्याक्ष को कौशिक कहा जा सकता है। हिरण्याक्ष का अन्य नाम कुशिक था इसके लिए प्रमाण चाहिए।

३. चरकसंहिता[1] सू० २५।१६ में कौशिक शब्द का पाठान्तर शौनकः उपलब्ध होता है। इस पाठान्तर से ज्ञात होता है कि श्लोक १६ की पूर्वोद्धृत पंक्ति का पाठ विचारणीय हो गया है।

शौनक पाठ उपयुक्त है—फलतः मूलपाठ ऐसा चाहिए—

तदुक्तवन्तं कौशिकं आह तन्नेति शौनकः।

शौनक सूत्रकार—चरकसंहिता शारीर स्थान ६।२१ में शौनक को सूत्रकार कहा है।

शौनक तन्त्रकार—अष्टाङ्गहृदय कल्पस्थान ६।१५ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या में लिखा है—शौनकाख्यस्तु तन्त्रकृदधीते—एवं पठति। इस वचन में शौनक को तन्त्रकार कहा है।

भद्रशौनक शालाक्य तन्त्रकार—निबन्धसंग्रह उ० १।४-७ में भद्रशौनक को शालाक्य-तन्त्रकार कहा है। देखो पूर्व पृ० २३७।

शौनक तथा भद्रशौनक के वचन

हि० इ० मे० भाग २, पृ० ४७४ ४७५ पर गिरिन्द्रनाथजी ने भद्रशौनक के चार तथा शौनक का एक वचन उद्धृत किया है। नाथजी ने शौनक का वचन वृन्दमाधव पृ० ६६४ से उद्धृत किया है। अष्टाङ्गहृदय कल्पसिद्धिस्थान ६।१५-२१ में भी यही उद्धृत है। अष्टाङ्गसंग्रह कल्प पृ०३७० पर इस वचन का कुछ भाग उद्धृत करते हुए वाग्भट लिखता है—अन्ये पुनः पठन्ति। स्पष्ट है कि संग्रहकार ने किसी पूर्ववर्ती तन्त्र से शौनक का यह वचन लिया है। इन पांच वचनों के अतिरिक्त चरकसंहिता सू० ४।८ की चक्रपाणि व्याख्या में शौनक का एक अन्य वचन है—

अत्र शौनकवचनं तु—

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात्।
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः॥ इति।

इसके अतिरिक्त अष्टाङ्गहृदय नि० १।२३ की हेमाद्रि व्याख्या में एक अन्य वचन शौनक के नाम से उद्धृत है, परन्तु इस वचन की टिप्पणी में "शौनक" का पाठान्तर "गौतम" है। पूर्व पृ० ८१ पर हम अष्टाङ्गसंग्रह नि० पृ० १० के प्रमाण से यह वचन गौतम के नाम से लिख चुके हैं।

सुश्रुतसंहिता शा० ३।३२ में लिखा है—गर्भस्य खलु सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः। शिरोमूलत्वात् प्रधानेन्द्रियाणाम्।

---

१. देखो लाहौर संस्करण।

सुश्रुतसंहिता के इस पाठ में यह मत शौनक का कहा है परन्तु चरकसंहिता शा० ६।२१ के अनुसार यह मत कुमारशिरा भरद्वाज का है। इस प्रकार के स्थल विचारणीय हैं।

ग्रन्थ

१. **भद्रशौनक-तन्त्र**—अष्टाङ्गहृदय सि० १।२०,२१ की चक्रपाणि व्याख्या में उद्धृत निम्नलिखित वचन से स्पष्ट है कि भद्रशौनक का आयुर्वेदीय ग्रन्थ था—**यत्तु भद्रशौनके संसृष्टभक्तः** ·····।

२. **शौनक-तन्त्र**—पूर्व पृ० २४१ पर सर्वाङ्गसुन्दरा के प्रमाण से लिख चुके हैं कि शौनक तन्त्रकार था, अतः शौनक-तन्त्र उस समय उपलब्ध था।

३. **यमलजननशान्ति**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या १४४४० के अन्तर्गत शौनक का यह ग्रन्थ उल्लिखित है।

४. **कृष्णचतुर्दशीजननशान्ति**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या १४४४२ में शौनक का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

५. **ग्रहजननशान्ति**—पूर्वोक्त पुस्तक भण्डार की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या १४४७१ तथा ३२६७ के अन्तर्गत शौनक के इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

६. **बृहद्देवता**—शौनककृत बृहद्देवता सम्प्रति उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की १० अनुक्रमणियों का कर्ता भी शौनक था।

७. **कल्पसूत्र**—शौनक का कल्पसूत्र भी था।

पूर्व लिख चुके हैं कि शौनक अनेक थे। अतः यह विचारणीय है कि ये सब ग्रन्थ किस-किस शौनक के हैं।

४६. काङ्कायन ॥५॥

अष्टाङ्गहृदय के सम्पादक श्री हरिशास्त्री वाग्भटविमर्श शीर्षक भूमिकात्मक लेख के पृ० १७ पर काङ्कायन की गणना शालाक्य तन्त्रकारों में करते हैं।

सुश्रुतसंहिता १।३ में धन्वन्तरि से शल्य विद्या सीखने वाले आठ शिष्यों के नामों के पश्चात् प्रभृति शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या करते हुए डल्हण अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों का मत उद्धृत करते हुए लिखता है—**प्रभृति शब्देन भोजादयः। अन्ये तु··· ··प्रभृतिग्रहणान्निमि-काङ्कायन गार्ग्य-गालवाः······।** स्पष्ट है कि डल्हण, प्रभृति शब्द से भोज आदि को धन्वन्तरि शिष्य समझता है परन्तु अन्य आचार्य निमि, काङ्कायन-गार्ग्य तथा गालव को धन्वन्तरि से शल्य सीखने वाले समझते हैं। निमि आदि के शल्याचार्य होने का कोई अन्य प्रमाण अभी नहीं मिला। अपितु निमि का शालाक्याचार्य होना पूर्ण प्रमाणित है। निमि के साथी काङ्कायन आदि भी शालाक्य

तन्त्रकार प्रतीत होते हैं। सम्भवतः डल्हण भी उन्हें शल्य-तन्त्र सीखने वाले नहीं समझता। अतः उसने भोज के साथ उनका नाम ग्रहण नहीं किया।

काङ्कायन के उपलब्ध-वचनों तथा योगों में से कोई एक भी ऊर्ध्वजत्रु रोग विषयक नहीं। अतः डल्हण द्वारा उद्धृत अन्य आचार्यों का मत चिंत्य है।

काल—चरक वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि-सम्मेलन में काङ्कायन उपस्थित था। अतः काङ्कायन उस सम्मेलन में उपस्थित भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों का समकालिक था। पालकाप्य हस्ति-शास्त्र १।१ के अनुसार काङ्कायन दशरथ-सखा रोमपाद की सभा में उपस्थित था।

स्थान

बाह्लिक देश—काङ्कायन बाह्लीकदेशीय था। चरकसंहिता सूत्र २६।५ में लिखा है—**काङ्कायनश्च बाह्लीकः।**

बाह्लीक भिषग्वर—बाह्लीक देश के भिषजों में काङ्कायन श्रेष्ठ था। यथा—**बाह्लीकभिषजां वरः।**[1]

शिष्य—गदनिग्रह भाग १, पृ० १०३ के निम्नलिखित वचन से ज्ञात होता है कि काङ्कायन के अनेक शिष्य थे—

काङ्कायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना।

वचन—काङ्कायन के तीन वचन गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग २, पृ० ४३३ पर उद्धृत किए हैं। इनके अतिरिक्त काश्यपसंहिता पृष्ठ २६ पर एक अन्य वचन उल्लिखित है—

त्रयो रोगाः साध्ययाप्यासाध्या इति काङ्कायनः।

सूत्रकार—चरकसंहिता शा० ६।२१ में काङ्कायन को सूत्रकार कहा है।

मन्त्रद्रष्टा—अथर्ववेद काण्ड ६ की अनुक्रमणी के अनुसार काङ्कायन भिषक् आथर्वण मन्त्रों का द्रष्टा था।

योग—काङ्कायन के चार योग हि. इ. मे. भाग २, पृ. ४६५, ६६ पर उद्धृत हैं।

४७. गार्ग्य ॥६॥

वंश—गार्ग्य पद गोत्र प्रत्ययान्त है। तदनुसार इसके मूल पुरुष का नाम गर्ग था।

नाम—गार्ग्य नाम के गोत्र प्रत्ययान्त होने से आयुर्वेदाचार्य गार्ग्य का वास्तविक नाम ज्ञातव्य है। शतपथ १४।१।१ में दृप्तबालाकि गार्ग्य, हरिवंश

---

१. चरकसंहिता सू० २६।५॥

पृ० ५७ पर शैशिरायण गार्ग्य, प्रश्नोपनिषद् ४।१ में सौर्यायणि गार्ग्य, तथा वायुपुराण ३४।६३ में ऊर्ध्ववेणीकृत गार्ग्य का उल्लेख है। गार्ग्य पद के साथ प्रयुक्त इन विभिन्न विशेषणों से स्पष्ट है कि वे विभिन्न व्यक्ति थे।

काल—हिमवत्पार्श्व के ऋषि सम्मेलन में भृगु आदि ऋषियों के साथ एक गार्ग्य भी उपस्थित था। पालकाप्य ऋषि के हस्त्यायुर्वेद १।१ के अनुसार गार्ग्य ऋषि दशरथ-सखा रोमपाद की सभा में उपस्थित था। अतः गार्ग्य महर्षि भृगु, अंगिरा तथा काङ्कायन आदि ऋषियों का समकालिक था। डल्हण द्वारा उद्धृत पुरातन आचार्यों के मतानुसार निमि, काङ्कायन तथा गालव ऋषि गार्ग्य के समकालिक थे। पाणिनीय व्याकरण में दो स्थानों पर गार्ग्य तथा गालव का साथ-साथ निर्देश मिलता है। यदि वैयाकरण गार्ग्य तथा आयुर्वेदाचार्य गार्ग्य एक सिद्ध हो जाएं तो गार्ग्य तथा गालव पाणिनि के पूर्ववर्ती थे।

गुरु

धन्वन्तरि — सुश्रुतसंहिता सू० १।१ की व्याख्या में डल्हण द्वारा उद्धृत पुरातन आचार्यों के मतानुसार गार्ग्य ने धन्वन्तरि से शल्य शास्त्र सीखा।

वचन

१. काश्यपसंहिता पृ० १०९ पर गार्ग्य का एक वचन उद्धृत है—

(जन्मप्रभृति बालानां) बस्तिकर्मोपकल्पयेत् ॥११॥
इत्याह गार्ग्यः............... ....।

२. पालकाप्य के हस्त्यायुर्वेद पृ० ५८१ पर गार्ग्य का एक अन्य वचन उद्धृत है—

तत्र शुक्रमस्तिष्कव्यपेता गार्ग्यः प्रोवाच।

ग्रन्थ

१. **शालाक्य-तन्त्र**—अष्टाङ्गहृदय के सम्पादक श्री हरिशास्त्री पराडकर के मत में गार्ग्य का एक शालाक्यतन्त्र था।

२. **व्याकरण**—अष्टाध्यायी तथा प्रातिशाख्य में उद्धृत गार्ग्य के मत से ज्ञात होता है कि गार्ग्य का व्याकरण सर्वांगपूर्ण था।[1]

३. **निरुक्त**—यास्क अपने निरुक्त में तीन स्थानों पर गार्ग्य का मत उद्धृत करता है।[2]

---

१. व्या० शा० इ०, पृ० १०६।

२. १।१२॥ १।३॥ १२।३१॥

४. सामवेद का पदपाठ—सामवेद का पदपाठ गार्ग्यकृत माना जाता है। निरुक्त के टीकाकार दुर्ग तथा स्कन्द का भी यह मत है। व्याकरण के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने अपने इतिहास के पृ० १०७ पर यह मत पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है।

५. तक्ष शास्त्र—पूर्व पृ० ७६ पर करविन्द स्वामी का एक वचन लिख चुके हैं। उसके अनुसार गार्ग्य तक्ष शास्त्र रचयिता था।

६. वास्तु शास्त्र—मद्रास पुस्तक भण्डार की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या १३०६१–६८ के अन्तर्गत सनत्कुमार के वास्तु शास्त्र का उल्लेख है। उसमें उद्धृत निम्नलिखित वचन से ज्ञात होता है कि गार्ग्य का वास्तुशास्त्र भी था। यथा—

गौतमश्चैव गार्ग्यश्च भार्गवाङ्गिरसावुभौ।

४८. गालव ॥७॥

शालाक्याचार्य—हरिशास्त्री जी पराडकर ने अष्टाङ्गहृदय की भूमिका पृ० १७ पर गालव के शालाक्य-तन्त्र का उल्लेख किया है, परन्तु डल्हण द्वारा उद्धृत अन्य आचार्यों के मतानुसार गालव भी शल्य तन्त्र में धन्वन्तरि का शिष्य था। फलतः यह विचारणीय है कि निमि के साथी गालव का शालाक्य-तन्त्र था अथवा शल्य तन्त्र, अथवा दोनों तन्त्र।

काल—चरक वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन में गालव उपस्थित था, अतः पूर्व पृ० १३५ पर वर्णित ५१ ऋषियों का समकालिक वह अवश्य था।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ० १०४ पर उल्लिखित शालिहोत्र वचनानुसार गालव सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद–कर्ता था।

२. संहिता—शैशिरि–शिक्षा के प्रारम्भ में गालव को शौनक का शिष्य तथा शाखा–प्रवर्तक कहा है।

३. ब्राह्मण—गालव–प्रोक्त कोई ब्राह्मण ग्रन्थ भी था।

४. क्रमपाठ—महाभारत शान्तिपर्व ३४२।१०३ के अनुसार पाञ्चाल बाभ्रव्य गालव ऋग्वेद के क्रमपाठ का प्रवक्ता था। ऋक्प्रातिशाख्य ११।६५ में इसे प्रथम क्रमप्रवक्ता लिखा है।

५. शिक्षा—महाभारत शान्तिपर्व ३४२।१०४ के अनुसार गालव ने शिक्षा का प्रणयन किया था।

६. निरुक्त—यास्क ने निरुक्त ४।३ में गालव का निर्वचन-विषयक

एक पाठ उद्धृत किया है। उससे ज्ञात होता है कि गालव ने कोई निरुक्त रचा था।

७. दैवत ग्रन्थ—बृहद्देवता १।२४ में गालव को पुराण-कवि कहा है। इससे आगे ५।३६।।, ६।४३ तथा ७।३८ में ऋचाओं के देवता-विषयक गालव के मतों का उल्लेख है।

८. कामसूत्र—वात्स्यायन कामसूत्र १।१।१० में लिखा है कि पाञ्चाल बाभ्रव्य ने सात अधिकरणों में काम शास्त्र का संक्षेप किया।

९. व्याकरण—गालव-रचित व्याकरण भी था। इसके विस्तृत वृत्त के लिए देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत व्या० शा० इ० पृ० १०९।

४९. सात्यकि ।।८।।

वंश—सात्यकि शब्द तद्धितान्त है। सत्यक का पुत्र होने से वह सात्यकि कहाया। इसका वंश वृष्णि था।

सात्यकि सम्बन्ध में श्रीकृष्ण का भाई था। वह सफल सेनापति, कवि तथा इङ्गितज्ञ था। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उद्धृत उसके कुछ वचनों से ज्ञात होता है कि वह शालाक्याचार्य था।

नाम—सात्यकि का मूल नाम युयुधान था, परन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थों तथा महाभारत के अनेक स्थलों में उसके लिए सात्यकि नाम प्रयुक्त हुआ है।

गुरु

अर्जुन—सात्यकि ने पाण्डव अर्जुन से धनुर्विद्या का विशेष अभ्यास किया था। अर्जुन सात्यकि को अपना सखा तथा प्रिय शिष्य कहता था।

वचन

गिरिन्द्रनाथ जी ने सात्यकि के वंशादि के विषय में कुछ नहीं लिखा, परन्तु हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७६, ७७ पर सात्यकि के ११ वचन उद्धृत किए हैं। इनके अतिरिक्त चरकसंहिता चि० २६।१२९-३१ की चक्रपाणि व्याख्या में सात्यकि का मत उद्धृत है। यथा—

अशीतिं सात्यकिः प्राह।

ग्रन्थ

१. शालाक्य-तन्त्र—चक्रपाणिदत्त ने चरकसंहिता चि० २६।१२९-३१ की व्याख्या में विदेह तथा कराल के अक्षि-रोग-परक मत के साथ सात्यकि का मत भी उद्धृत किया है। इससे निश्चय है कि सात्यकि ने शालाक्य-तन्त्र रचा। सुश्रुतसंहिता उ० ७।२५ की व्याख्या करते हुए दृष्टि-विज्ञानीय अध्याय में निबन्धसंग्रहकार लिखता है—सात्यकि प्रभृतीनाम। इससे स्पष्ट है

कि उस समय शालाक्य–तन्त्रकारों में सात्यकि का भी प्रमुख स्थान था।

गिरिन्द्रनाथ जी द्वारा उद्धृत भ्रष्ट पाठ से उत्पन्न भूल

हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ७७६ पर निबन्धसंग्रह से उद्धृत संख्या २ के सात्यकि के वचन में नाथ जी ने डल्हण की टीका का कुछ अंश भी सात्यकि का वचन समझ लिया है। नाथ जी उद्धृत करते हैं—

तथा'च रागकथनप्रस्तावे सात्यकिः—

पित्तरक्ताहिता पीताः चित्रिताः सन्निपातजाः। एक एव असौ परिम्लायी रोगोऽराग प्राप्तः सन् तिमिराख्यः।......भवन्ति तदा याप्यानि।

परन्तु सुश्रुतसंहिता निर्णयसागर संस्करण, तृतीयावृत्ति, पृ० ६०७ पर निम्नलिखित पाठ है—

तथा च रागकथनप्रस्तावे सात्यकि :—

पित्तरक्तोत्थिता पीताश्चित्रिताः सन्निपातजाः इति। एक एवासौ परिम्लायी...........।

इस पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि सात्यकि का वचन इति पर्यन्त है। उससे आगे का पाठ निबंधसंग्रह टीका का है।

यह अध्याय इस संक्षिप्त वर्णन के साथ यहीं समाप्त होता है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे एकादशोऽध्यायः।

द्वादश अध्याय

मर्त्यलोक में शल्यचिकित्सा का प्रसार

धन्वन्तरि के सात प्रमुख शिष्य

५०. सुश्रुत ॥१॥

गत दो अध्यायों में मर्त्यलोक में काय-चिकित्सा तथा शालाक्य-तन्त्र की परम्परा का उल्लेख कर चुके। इस अध्याय में शल्य-चिकित्सा के मर्त्यलोक में प्रसार का इतिवृत्त लिखते हैं। मर्त्यलोक के सर्वप्रथम शल्योपदेष्टा दिवोदास धन्वन्तरि का वर्णन पूर्व पृ० १६०-१७० तक हो चुका। अब उसके सात प्रधान शिष्यों का वर्णन करेंगे। वर्तमान काल में धन्वन्तरि के सातों शिष्यों में से केवल सुश्रुत का तन्त्र उपलब्ध है। अन्य सहाध्यायियों ने सुश्रुत को अपना प्रतिनिधि बनाया था, अतः सर्वप्रथम सुश्रुत का वर्णन किया जाता है।

वंश—पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके हैं कि सुश्रुत महर्षि-विश्वामित्र का पुत्र था।

१. सुश्रुतसंहिता के अनुसार सुश्रुत का पिता विश्वामित्र था। यथा—

(क) विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात्। चि० २।३॥

(ख) विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति। उ० ६६।४॥

२. महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ४ में विश्वामित्र के पुत्रों में सुश्रुत का नाम है—

(ग) श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा।
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः॥

इनमें से कई पुत्र दत्तक प्रतीत होते हैं।

३. सुश्रुतसंहिता के टीकाकार चक्रदत्त ने भी अपनी भानुमति टीका में सुश्रुत को विश्वामित्र-पुत्र कहा है।

सुश्रुत ऋषि था

पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके हैं कि विश्वामित्र के मधुच्छन्दा आदि पुत्र ऋषि थे। उपरिलिखित (क) भाग के वाक्य में सुश्रुत को ऋषि कहा है।

(ख) भाग के वाक्य में श्रीमान् शब्द की टीका करता हुआ डल्हण लिखता है—

श्रीमानिति राजश्रिया ब्राह्मचा वा अलंकृतः । ननु विश्वामित्रो गाधि-राजः तत्सुतत्वेन राजश्रिया योगो युक्तः, कथं ब्राह्मचा श्रियेति ? सत्यं विश्वामित्रस्य ब्राह्मण्यं तपसा...।

टीकाकार के इस वचन से दो परिणाम निकलते हैं । यथा—

१. सुश्रुत ऋषि था । २. वह गाधिराज विश्वामित्र का पुत्र था ।

रे महोदय का भ्रम—श्री प्रफुल्लचन्द्र जी रे ने हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री भाग १, भूमिका पृ० २६ पर लिखा है—

It is not however easy to establish any connection between these names (Vishvamitra, Katyayana) and our present author (Sushruta)

अर्थात्—[विश्वामित्र तथा कात्यायन] के नामों के साथ वर्तमान लेखक [सुश्रुत] का कोई सम्बन्ध स्थापित करना सरल नहीं ।

फलतः रे महोदय सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र नहीं मानते ।

राजगुरु हेमराज जी का सन्देह—श्री राजगुरु जी भी काश्यपसंहिता उपोद्घात् पृ० ६३ पर लिखते हैं—

रामाय धनुर्विद्योपदेष्टा विश्वामित्रो महर्षिरन्य एव प्राचीनतरः स्यात् ......कोऽयं विश्वामित्र इति सम्यक् न परिचीयते ।

अर्थात्—राम को धनुर्विद्या सिखाने वाला महर्षि विश्वामित्र कोई अन्य ही प्राचीनतर है । सुश्रुत-पिता विश्वामित्र कौन है । यह ठीक ज्ञात नहीं होता ।

आलोचना—प्रफुल्लचन्द्र जी को सुश्रुत के विश्वामित्र-पुत्र होने में ही सन्देह है, तथा राजगुरु जी को राम के समकालिक गाधिराज विश्वामित्र को सुश्रुत का पिता मानने में अड़चन है ।

वस्तुतः पाश्चात्यों के एतद्विषयक भ्रान्त मतों के प्रचार से ये सन्देह उत्पन्न हुए हैं । विश्वामित्र दीर्घायु था । डल्हण के पूर्वलिखित वचन में सुश्रुत के पिता विश्वामित्र को गाधिराज कहा है, अतः निश्चित ही राम को धनुर्विद्योपदेष्टा विश्वामित्र सुश्रुत का पिता था । गाधिराज-विश्वामित्र का पुत्र होने से ही सुश्रुत को ऋषि कहा है ।

शालिहोत्र और सुश्रुत—काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ६६ पर राजगुरु हेमराज जी अपने पुस्तक संग्रह के हेमाद्रिकृत लक्षण-प्रकाश के अश्वप्रकरण में उद्धृत शालिहोत्र के वचनों के आधार पर लिखते हैं कि सुश्रुत, ऋषि शालिहोत्र का पुत्र था । यथा—

(क) शालिहोत्रं ऋषिश्रेष्ठं सुश्रुतः परिपृच्छति ।
एवं पृष्ठस्तु पुत्रेण शालिहोत्रो ऽभ्यभाषत ।
(ख) शालिहोत्रमपृच्छन्त पुत्राः सुश्रुतसङ्गताः ।
व्याख्यातं शालिहोत्रेण पुत्राय परिपृच्छते ।

शालिहोत्र संहिता के आरम्भ में लिखा है—

कृताग्निहोत्रमासीनं शालिहोत्रं महामुनिम् ।
सुश्रुतः श्रुतसम्पन्नः पप्रच्छ पितरं स्तुतम् ।।२।।

इस वचन में भी सुश्रुत को शालिहोत्र का पुत्र कहा है ।

एतद्विषयक सम्भावनाएं—

१. कदाचित् दो सुश्रुत थे, तथा संहिताकार सुश्रुत के लिए वैश्वामित्रि विशेषण प्रयुक्त हुआ है ।

२. सम्भवतः संहिताकार वैश्वामित्रि सुश्रुत को शालिहोत्र ने अपना लिया हो, जैसे शुनःशेप को विश्वामित्र ने अपनाया था ।

३. भेलसंहिता पृ० ३९ का निम्नलिखित पाठ विचारणीय है—

सुश्रोता नाम मेधावी चान्द्रभागमुवाच ह ।

अर्थात्—सुश्रोता नाम वाला बुद्धिमान्, चान्द्रभाग को बोला । सम्भवतः एक ही काल में सुश्रोता तथा सुश्रुत दो व्यक्ति थे, अथवा कहीं-कहीं सुश्रोता शब्द का भ्रष्ट पाठ सुश्रुत हो गया हो ।

काल—अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० २ पर वाग्भट लिखता है कि धन्वन्तरि तथा आत्रेय आदि ने एक-साथ इन्द्र से आयुर्वेद सीखा । तदनु अग्निवेश, सुश्रुत आदि ने गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करके अपनी तन्त्र रचना की । संहिताकार सुश्रुत का काल-निर्णय करने के लिए हम कुछ युक्तियों का क्रमशः उल्लेख करते हैं । यथा—

१. वाग्भट—अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० १५२ पर सुश्रुत का एक वचन है, अतः निश्चय ही सुश्रुत ऋषि, वाग्भट का पूर्ववर्ती था, तथा अग्निवेश आदि का समकालिक था ।

२. नागार्जुन—सुश्रुत का काल-निर्णय करने के समय पाश्चात्यों की निराधार कल्पनाओं का खण्डन करने के लिए सुश्रुतसंहिता के प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन का काल जानना आवश्यक है ।

बौद्धपरम्परा के अनुसार तुरुष्क-राज कनिष्क, भदन्त अश्वघोष तथा नागार्जुन समकालिक थे । वे प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु से कई सौ वर्ष पहले थे । भारतीय इतिहासानुसार आचार्य वसुबन्धु विक्रम की लगभग प्रथम शती

में था। पाश्चात्य लेखकों और उनके अनुयायियों ने इस सत्य कालगणना में बड़ी गड़बड़ उत्पन्न की है। यह निश्चित है कि नागार्जुन शक-प्रवर्तक विक्रम से कई सौ वर्ष पहले हो चुका था। तिब्बती आचार्य लामा तारानाथ के अनुसार नागार्जुन की आयु ५२९ अथवा ५७१ वर्ष की हुई।[1] वह २०० वर्ष मध्यदेश में, २०० वर्ष दक्षिण में तथा १२९ वर्ष श्रीपर्वत पर रहा। रसायनज्ञ नागार्जुन की इतनी आयु होना साधारण बात है। इतने लम्बे काल में उसने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार कब किया, यह अभी अज्ञात है।

३. मुनि कात्यायन (२८०० विक्रम पूर्व) अष्टाध्यायी पर वार्तिक २।१। १७० में लिखता है—**कुतपवासाः सौश्रुताः कुतपसौश्रुताः।**

निश्चय है कि ऋषि सुश्रुत वार्तिककार कात्यायन से पूर्व हो चुका था।

४. पाणिनि मुनि (२८०० वि० पूर्व) अष्टाध्यायी ६।२।३६ के गण में **सौश्रुतपार्थिवाः** पाठ पढ़ता है। स्पष्ट है कि पाणिनि के काल में सुश्रुत की सन्तति अथवा उसके शिष्य विद्यमान थे। फलतः सुश्रुत अवश्य ही पाणिनि का पूर्ववर्ती था।

५. सुश्रुतसंहिता के टीकाकार डल्हण ने इस संहिता के आर्ष तथा अनार्ष पाठों का विचार किया है। यथा—

कार्तिककुण्डस्तु अमुं योगमन्यथा पठति व्याख्यानयति च। स च ग्रन्थगौरवभयान्न लिखितः। केचिदेनमनार्षं वदन्ति, तन्न सुकीर-सुधीर आदिभिष्टीकाकृद्भिरार्षत्वेन वर्णितत्वात्। उ० ५८।५८-६४॥

स्पष्ट है कि सुश्रुतकार ऋषि था। महाभारत के ३०० वर्ष उत्तर तक ऋषिकाल रहा। अतः ऋषि सुश्रुत उस काल के पश्चात् नहीं हो सकता।

हर्नलि-मत खण्डन

रुडल्फ हर्नलि ने अपनी आस्टिओलोजि (अस्थिशास्त्र), भाग १, पृ० ७-८ पर लिखा है—

In the latter university (Takshashila), in the time of Buddha or shortly before it, the leading Professor of Medicine was Atreya. He, accordingly, should have flourished at some time in the sixth century B. C....... The probability, therefore, appears to be that Sushruta was a rather younger contemporary of Atreya, or, let us say, a contemporary of Atreya's pupil Agnivesha.

---

१. I. H. Q. भाग २८, संख्या १, मार्च १९५२, पृ० ४४।

अर्थात्—बुद्ध के समय में अथवा उससे कुछ ही पूर्व तक्षशिला के विश्व-विद्यालय में प्रसिद्ध वैद्य आत्रेय था। वह छटी शती ईसा-पूर्व हुआ। अतः सुश्रुत उसका कनिष्ठ-समकालिक अथवा आत्रेय-शिष्य अग्निवेश का सम-कालिक था।

आलोचना—पूर्व पृ० १८१-१८२ पर लिख चुके हैं कि अग्निवेश का गुरु आत्रेय पुनर्वसु, तक्षशिला का वैद्याचार्य आत्रेय नहीं था। अतः सुश्रुत तथा आत्रेय को छटी शती ईसा-पूर्व रखना भारी भूल है। हर्नलि जी को न अग्नि-वेश का काल ज्ञात था, न आत्रेय का, पुनः सुश्रुत का काल वे कैसे जानते। इतिहास न जानने के कारण उन्होंने सुश्रुत के पिता ऋषि विश्वामित्र के विषय में एक शब्द भी नहीं लिखा।

जोसेफ नीधम का लेख—देहली में ५-७ नवम्बर सन् १९५० को एक सभा जुटी। उसमें भारत के वैज्ञानिक ग्रन्थों के तिथि-क्रम पर कुछ विचार प्रकट किए गए। इन विचारों के प्रकट करने वाले वक्ताओं मे से अधिकांश वक्ता भारतीय तिथि-क्रम से अपरिचित थे। उनमें से कई एक ने पाश्चात्य-लेखकों के मनमाने तिथि-क्रम को ठीक मान लिया हुआ था। उस सभा में अनेक वक्ताओं ने वर्तमान सुश्रुत-पाठ को ईसा की छटी तथा सातवीं शताब्दी का बताया। डाक्टर जोसेफ नीधम को यह भी चुभा। उन्होंने इङ्गलैंड के नेचर (Nature) पत्र, भाग १६८ जुलाई १४, सन् १९५१ पृ० ६४ पर एक लेख लिखा। उसमें उन्होंने वर्तमान सुश्रुत-संहिता का काल ईसा की ग्यारहवीं शती माना है।

आलोचना—गप्प की कोई सीमा होती है। सुश्रुत-संहिता के वर्तमान पाठ पर गयदास और जेज्जट आदि की टीकाएं थीं। जेज्जट विक्रम की चतुर्थ शती में था। उसकी स्वीकृत सुश्रुत-संहिता को ११वीं शती ईसा में रखना महा पक्षपात और पराकाष्ठा का अज्ञान है। इस विषय का विशद वर्णन आगे काल शीर्षक के अन्तर्गत है।

गुरु

१. धन्वन्तरि—पूर्व पृ० १६६ पर लिख चुके हैं कि काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि ने सुश्रुत को आयुर्वेदोपदेश दिया।

शिष्य—काशिका ६।२।३७ में लिखा है—**सौश्रुतपार्थवाः सुश्रुतस्य पृथोश्च छात्राः**। स्पष्ट है कि सुश्रुत ने जिन शिष्यों को पढ़ाया वे सौश्रुत कहाए।

ग्रन्थ

१. सुश्रुतसंहिता—धन्वन्तरि से प्राप्त शल्यमूलक आयुर्वेद ज्ञान सुश्रुत ने

तन्त्र-रूप में उपनिबद्ध किया। वह तन्त्र सुश्रुतसंहिता के नाम से सम्प्रति उपलब्ध है।

क्या सुश्रुतसंहिता के उत्तर तन्त्र का रचयिता कोई अन्य व्यक्ति था ?

अनेक लेखकों का मत है कि सुश्रुतसंहिता का उत्तर तन्त्र किसी अन्य लेखक द्वारा लिखा गया। इस विषय की अनेक युक्तियों को न लिख केवल कुछ मतों का दिग्दर्शन कराके उनकी आलोचना करेंगे।

१. हर्नलि—विदेशी विद्वान् रुडल्फ हर्नलि ने अपनी आस्टिओलोजि की भूमिका पृ० ५ पर लिखा है—

Hence after some time an anonymous writer composed a Supplement (Uttara tantra) which treated of all the subjects unnoticed by Sushruta.

अर्थात्—कुछ समय पश्चात् एक अज्ञात लेखक ने उत्तरतन्त्र रचा। उसमें सुश्रुत द्वारा अनुल्लिखित सब विषयों का वर्णन है।

२. राजगुरु जी—राजगुरु श्री हेमराज जी काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ११२ पर लिखते हैं—

तेन सुश्रुतस्य वंश्येन साम्प्रदायिकेन वा सौश्रुताचार्येण सुश्रुतस्य पूर्वतन्त्रं संस्कृतमुत्तरतन्त्रं निघण्टुभागश्च योजिते, इत्यनुमीयते।

अर्थात्—अतः [पूर्व पृष्ठ पर लिखे सुश्रुतसंहिता के हस्तलेख मे] किसी सुश्रुत के वंशज अथवा सुश्रुत मतानुयायी सौश्रुताचार्य ने सुश्रुत के पूर्वतन्त्र का संस्कार किया तथा उत्तरतन्त्र और निघण्टु भाग युक्त किए, यह अनुमान किया जाता है।

आलोचना—वस्तुतः ऋषि सुश्रुत ने ही उत्तरतन्त्र की रचना की। आचार्यवर श्री यादव जी ने सुश्रुतसंहिता निर्णयसागर-संस्करण, तृतीयावृत्ति भूमिका पृ० २० पर अनेक सबल युक्तियों से इस मत को उपपादित किया है। एतद्विषयक एक युक्ति का उल्लेख हम नीचे करते हैं—

पूर्वपक्षी कहते हैं कि सुश्रुतसंहिता के उत्तरतन्त्र के आरम्भ में ऊर्ध्वजत्रु रोगों के प्रकरण में विदेहादि का प्रामाण्य माना है, तथा कुमारतन्त्र में पार्वतक, जीवक आदि का। अतः यह तन्त्र सुश्रुतरचित नहीं।

उत्तरपक्ष—प्राचीन परम्परा के अनुसार शालाक्य तथा कौमारभृत्य को परतन्त्र विषय समझ ऐसा उल्लेख किया है। पूर्व पृ० २३८ पर चरकसंहिता में उल्लिखित एक ऐसे प्रकरण का वर्णन कर चुके हैं।

स्मरण रहे उत्तरतन्त्र को भी अनेक आचार्य अपनी-अपनी मूल-संहिताओं में स्वयं लिखते थे। यथा—

(क) अष्टाङ्ग हृदय में।

(ख) अष्टाङ्गसंग्रह में।

(ग) वृद्ध जीवकीय-तन्त्र में खिलस्थान के रूप में।

सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार—उपलब्ध सुश्रुतसंहिता के प्रारम्भ में निबन्धकार डल्हण लिखता है—प्रतिसंस्कर्ताऽपि नागार्जुन एव।

अर्थात्—नागार्जुन ने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार किया।

राजगुरुजी का मत—पण्डितवर श्री हेमराज जी काश्यपसंहिता उपो० पृ० १११ पर नागार्जुन द्वारा सुश्रुतसंहिता के प्रतिसंस्कार करने पर संदेह प्रकट करते हैं।

आलोचना—डल्हण के लेख के अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता नि० ३।१३ का पाठ इस मत को अधिक पुष्ट करता है कि नागार्जुन ने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार किया। यथा—

सुश्रुतसंहिता नि० ३।१२ की गयदास-विरचित न्यायचन्द्रिका व्याख्या में लिखा है—

नागार्जुनस्तु पठति—"शर्करा सिकता मेहो भस्माख्योऽश्मरिवैकृतम।" इति।

यह पाठ मूल सुश्रुतसंहिता श्लोक संख्या १३ का पूर्व-भाग है। यथा—

भवन्ति चात्र—

शर्करा सिकता मेहो भस्माख्योऽश्मरिवैकृतम्॥

फलतः यह निश्चय है कि वर्तमान सुश्रुतसंहिता में प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन के वचन भी यत्र तत्र हैं।

सुश्रुतसंहिता का महापाठ

२. **वृद्धसुश्रुत**—आचार्य सुश्रुत के तन्त्र का वृद्ध-पाठ वृद्धसुश्रुत[1] कहाया। पूर्व पृ० २१० पर पालकाप्यकृत हस्तिशास्त्र के उद्धरणों से यह विषय पर्याप्त स्पष्ट कर चुके हैं। राजगुरु श्री हेमराज जी ने काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ११२ पर अपने पुस्तकालय के सुश्रुतसंहिता के एक हस्तलेख का कुछ पाठ उद्धृत किया है। यथा—

---

१. देखो सुश्रुतसं० की नि० सं० व्या०, चि० ३१।८॥ चि० ३७।२३-२६॥ उ० २४।१६, १७॥

१. सुश्रुते शल्यतन्त्रे इति।

२. इति सौश्रुते महोत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः।

३. सौश्रुत्यां संहितायां महोत्तरायां निघण्टुः समाप्तः इति।

इस पाठ से प्रतीत होता है कि उत्तरतन्त्र के वृद्ध-पाठ को महोत्तरतन्त्र कहा है, तथा सुश्रुत की वृद्धपाठ वाली संहिता को महोत्तरा। इस हस्तलेख का पूर्ण अन्वेषण अभीष्ट है।

क्या सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत दो आचार्य थे ?

हूर्नेलि[1] तथा गिरिन्द्रनाथ जी[2] ने लिखा है कि सुश्रुतसंहिता के पंच स्थानों के रचयिता की उत्तरतन्त्र के रचयिता से पृथक्ता स्पष्ट करने के लिए सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत नाम प्रयुक्त हुए हैं।

आलोचना—दोनों विद्वानों की यह युक्ति पंगु है। हम स्पष्ट कर चुके हैं कि वृद्धसुश्रुत किसी आचार्य का नाम नहीं अपितु संहिता का नाम है।

३. लघुसुश्रुत—हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०१ पर गिरिन्द्रनाथ जी ने लघुसुश्रुत के एक हस्तलेख का उल्लेख किया है।[3]

सम्भवतः सुश्रुतसंहिता के तीन पाठ थे। सुश्रुत, वृद्धसुश्रुत तथा लघुसुश्रुत। वृद्धसुश्रुत का पाठ अधिक था, सुश्रुत का संक्षिप्त। लघु-सुश्रुत का पाठ कदाचित् अत्यधिक संक्षिप्त हो। अतः टीकाकारों द्वारा उद्धृत वृद्धसुश्रुत के अनेक पाठ वर्तमान सुश्रुतसंहिता में नहीं मिलते। तथा भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न पाठों को अपनाया अथवा अनेक पाठों का सम्मिश्रण कर दिया। इसकी पुष्टी अधोलिखित पंक्तियों में होगी।

सुश्रुतसंहिता के जेज्जटमतानुसारी पाठ का हस्तलेख

श्री पं० भगवद्दत्त जी ने बताया है कि उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी लाहौर को सुश्रुतसंहिता का एक ऐसा हस्तलेख दिलाया था, जिसके अन्त में लिखा था—इति जेज्जटमतानुसारी सुश्रुतसंहिता पाठः।

इसी प्रकार डल्हण अपनी टीका में अनेक स्थानों पर लिखता है—अमुक टीकाकार ने अमुक पाठ स्वीकार किया है, अमुक ने नहीं। एसा ही एक पाठ पूर्व पृ० २३३ पर उद्धृत कर चुके हैं, उसे बृहत्पञ्जिकाकार ने नहीं पढ़ा, अतः डल्हण ने भी नहीं पढ़ा। यह पाठभेद सुश्रुत की भिन्न-भिन्न संहिताओं तथा

---

१. आस्टिओलोजि, भूमिका पृ० ५।

२. हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ५७२

३. Pheh २।

किञ्चित् लेखक-प्रमाद के कारण है।

५१. औपधेनव ॥२॥

नाम—औपधेनव शब्द तद्धितान्त है। तदनुसार उपधेनु का पुत्र औपधेनव है, यथा उपमन्यु का पुत्र औपमन्यव था।

काल—सुश्रुत का काल ही औपधेनव का काल था।

गुरु

धन्वन्तरि—सुश्रुतसंहिता सू० १।२ के अनुसार धन्वन्तरि का एक शिष्य औपधेनव था। वह सुश्रुत का सहाध्यायी था। उसने धन्वन्तरि से शल्यमूलक अष्टाङ्ग आयुर्वेद सीखा।

ग्रन्थ

औपधेनव तन्त्र—सुश्रुतसंहिता सू० ४।९ में औपधेनव शल्यतन्त्र का उल्लेख है—

औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥९॥

इस वचन की टीका में डल्हणाचार्य लिखता है—

शेषाणां करवीर्य-गोपुररक्षित-प्रभृतिप्रणीतशल्यतन्त्राणां; प्रत्यये तु प्रत्ययो न भवति, कस्मात्? तेषां तन्त्राणां एतन्मूलत्वात्। अन्ये तु शेषाणां करवीर्यादिप्रणीतानां शल्यतन्त्राणां मध्ये औपधेनवादि तन्त्राणि सुव्याख्यातत्वेन मूलानि प्रधानानीति व्याख्यानयन्ति।

अर्थात्—धन्वन्तरि के सब शिष्यों में सुश्रुत, औपधेनव, औरभ्र तथा पौष्कलावत के शल्यतन्त्र प्रधान थे। सम्प्रति औपधेनव तन्त्र उपलब्ध नहीं। इस तन्त्र के वचन तथा योग भी हमारी दृष्टि में नहीं आए।

५२. औरभ्र ॥३॥

नाम—औरभ्र का नाम धन्वन्तरि के शिष्यों में है। यह शब्द तद्धितान्त है। इसका मूल शब्द उरभ्र है। सुश्रुतसंहिता के पूर्व उद्धृत वचन में औरभ्र शब्द तन्त्रवाचक है, परन्तु सुश्रुतसंहिता १।२ में औरभ्र शब्द व्यक्तिवाचक है। अष्टाङ्गसंग्रह उत्तरस्थान, पृ० २६९ पर इन्दुटीका में उद्धृत एक पुरातन टीका में से आचार्य उरभ्र के नाम से १० श्लोक उद्धृत हैं। उरभ्र के तन्त्र को भी औरभ्र कह सकते हैं। विचारणीय है कि शल्यतन्त्रकार औरभ्र तथा उरभ्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है।

काल—सुश्रुत आदि का सतीर्थ्य होने से औरभ्र भी उनका समकालिक था।

ग्रन्थ

औरभ्र तन्त्र—सुश्रुत संहिता ४।६ के पूर्वलिखित वचनानुसार औरभ्र का शल्यतन्त्र प्रमुख माना जाता था।

वचन—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, सन् १६२६, में औरभ्र का कोई वचन उद्धृत नहीं किया। अष्टाङ्गसंग्रह सन् १६२४ में छप चुका था। हम पूर्व लिख चुके हैं कि इन्दु टीका में उद्धृत किसी अन्य टीका में से उरभ्र के १० वचन उद्धृत हैं, परन्तु गिरिन्द्रनाथ जी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

५३. पौष्कलावत ॥४॥

नाम—पौष्कलावत शब्द तद्धितान्त है, तदनुसार मूल-पुरुष का नाम पुष्कलावत था। सुश्रुतसंहिता तृतीयावृत्ति, निर्णयसागर संस्करण सू० १।३ में पौष्कलावत को धन्वन्तरि-शिष्य कहा है। चिकित्साकलिका विवृति पृ० ११७ के एक वचन में पौष्कलावत को नहीं अपितु पुष्कलावत को शल्यतन्त्रकार कहा है। यथा—

सुश्रुताद्याः सुश्रुत आदौ येषां औपधेनव-औरभ्र-पुष्कलावतादीनां शल्यतन्त्रविदां ते तथा। आगमैककृतिनः आगमे वैद्यकशास्त्रे त एव एककृतिनः पण्डिता इति।

तत्त्वचन्द्रिका, आयुर्वेददीपिका तथा अष्टाङ्गसंग्रह में भी पुष्कलावत के नाम से कुछ वचन उद्धृत हैं। अतः यह विचारणीय है कि प्रसिद्ध धन्वन्तरि-शिष्य तथा शल्यतन्त्रकार का नाम पौष्कलावत था अथवा पुष्कलावत।

काल—सुश्रुत आदि पुष्कलावत के सतीर्थ्य थे, अतः वे सब समकालिक थे।

गुरु

धन्वन्तरि—पुष्कलावत भी धन्वन्तरि का अन्यतम शिष्य था।

ग्रन्थ

शल्यतन्त्र—पूर्व पृ० २५६ पर उद्धृत सुश्रुतसंहिता के वचन से स्पष्ट है कि पुष्कलावत का शल्यतन्त्र अतिप्रसिद्ध था, तथा धन्वन्तरि के करवीर्यादि तीन अन्य शिष्यों ने सुश्रुत तथा पुष्कलावत आदि के तन्त्रों के आधार पर अपने तन्त्र रचे।

वचन—पुष्कलावत का एक वचन अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० २१८ पर उद्धृत है—

पुष्कलावतस्तु पठति।

इसकी टीका में इन्दु लिखता है—

पुष्कलावतनामा ऋषिस्तु पठति—

तमसापि हितो ह्यष्मा रोमकूपैरनावृतैः ।
लेपाद्भिनैव निर्याति रात्रौ नालेपयेदतः ।।

इस वचन के अतिरिक्त हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०४ पर पुष्कलावत के पांच वचन उद्धृत हैं।

५४. करवीर्य ।।५।।

काल—करवीर्य भी सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—करवीर्य ने शल्यशास्त्र का ज्ञान आचार्य दिवोदास धन्वन्तरि से प्राप्त किया।

ग्रन्थ

करवीर्य तन्त्र—करवीर्य शल्यतन्त्रकार था। सुश्रुतसंहिता सू० ४।६ की टीका में डल्हण लिखता है—

शेषाणां करवीर्य-गोपुररक्षितप्रभृतिप्रणीतशल्यतन्त्राणाम् ।

अर्थात्—[सुश्रुत आदि के तन्त्रों के अतिरिक्त] शेष करवीर्य, गोपुर-रक्षित आदि द्वारा बनाए हुये शल्यतन्त्रों का [मूल आधार सुश्रुत आदि के शल्यतन्त्र थे।]

करवीर्य का शल्यतन्त्र सुश्रुत आदि के शल्यतन्त्र के समान अति प्रसिद्ध नहीं था।

वचन—व्याख्या मधुकोश में से करवीर्य का एक वचन गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०६ पर लिखा है।

५५. गोपुररक्षित ।।६।।

नाम—सुश्रुतसंहिता सू० १।३ की व्याख्या में डल्हण लिखता है—

अन्ये तु गोपुररक्षितौ इति नामद्वयं मन्यन्ते ।

अर्थात्—अन्य पुरातन आचार्य दो नाम मानते हैं, गोपुर तथा रक्षित।

तत्त्वचन्द्रिका पृ० ३० पर लिखा है—

यदाह गोपुररक्षितः ।

यहां गोपुररक्षित शब्द एक वचन में प्रयुक्त हुआ है। यदि ये दो नाम होते तो यहाँ द्विवचन का प्रयोग होता, अतः निश्चय ही यह एक व्यक्ति का नाम है।

काल—गोपुररक्षित भी सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—गोपुररक्षित दिवोदास धन्वन्तरि का शिष्य था।

ग्रन्थ

गोपुररक्षित-तन्त्र—गोपुररक्षित ने शल्यतन्त्र की रचना की। डल्हण के पूर्वलिखित वचन से स्पष्ट है कि गोपुररक्षित का शल्यतन्त्र सुश्रुत के शल्य-तन्त्र के समान विख्यात नहीं था।

वचन—गोपुररक्षित का एक वचन हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०७ पर गिरिन्द्रनाथ ने उद्धृत किया है।

५६. वैतरण ॥७॥

काल—वैतरण सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—वैतरण को शल्य-शास्त्र का उपदेश काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि ने दिया। काश्यपसंहिता के उपोद्घात पृ० ६१ पर श्रीराजगुरु जी ने अपने संग्रह के ताडपत्र के सुश्रुत ग्रन्थ का एक पाठ लिखा है—

औपधेनव-वैतरण-औरभ्र।

ग्रन्थ

वैतरण-तन्त्र—वैतरण का शल्यतन्त्र सुव्याख्यात न होने के कारण अति प्रसिद्ध न हो सका।

वचन—१-३. निबन्ध-संग्रह, तत्त्वचन्द्रिक, तथा चक्रदत्त से वैतरण के तीन वचन हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०७ पर उद्धृत हुए हैं।

४. व्याख्या-कुसुमावलि पृ० ४२६ पर (वैकारण) तन्त्र का एक वचन उद्धृत है। यथा —

वैकारणेऽप्युक्तम्—

शुष्कमूलकुलत्थादियूषाः क्षारोत्तरा हिताः।
कुल्कं निम्बपत्रं च वार्ताकं चाशने हितम्॥ इति।

सम्भवतः मुद्रित वैकारण शब्द वैतरण का भ्रष्ट पाठ है।

५. अष्टाङ्गहृदय बस्तिकल्प, अ० ४।७३ की हेमाद्रि टीका में तन्त्रान्त-रोक्त कुछ बस्तियां लिखी हैं। उनमें से एक के अन्त में लिखा है—

बस्तिर्वैतरणोक्तो गुणगणयुक्तः सुविख्यातः।

६. भण्डारकर अनुसन्धान संस्था, पूना की वैद्यक हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में संख्या २६३ के अन्तर्गत व्याख्याकुसुमावली का एक हस्तलेख पृ० ३६९,७० पर सन्निविष्ट है। वहां पृ० ३७० पर उसके हस्तलेख का जो पाठ उद्धृत है, उसमें लिखा है—

एवं वैतरणोऽपि ।......................। वैतरणे अम्ली......।

व्याख्याकुसुमावली का यह हस्तलेख अत्युपयोगी है।

५७. भोज ॥८॥

वंश—यादवों की एक उपजाति भोज है। इसका राज्य भारत के अनेक भागों में था। कुन्ति देश में भी भोज राज्य करते थे, अतः उस देश का नाम कुन्तिभोज हुआ। पाण्डव-माता कुन्ति इसी प्रदेश की थी, अतः उसका नाम कुन्ति हुआ। आयुर्वेदाचार्य भी अपनी उपजाति के कारण भोज कहाता था। हि० इ० मेडिसिन के तीनों भागों में आचार्य भोज का वर्णन नहीं। सम्भवतः गिरिन्द्रनाथ जी अगले अप्रकाशित भागों में भोज को रखना चाहते हों, परन्तु नियमानुसार भोज का स्थान शल्यतन्त्रकारों में होना चाहिए।

नाम—शल्यतन्त्राचार्य भोज का वास्तविक नाम अन्वेषणीय है।

काल—भोज भी भारतयुद्ध से प्राचीन आचार्य है। अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० २७० पर इन्दु द्वारा उद्धृत एक पुरातन टीका में भोज का मत उद्धृत है। सुश्रुत-संहिता के टीकाकार डल्हण तथा गयदास ने स्थान-स्थान पर भोज को उद्धृत किया है, अतः उनके काल में भोज का शल्यतन्त्र उपलब्ध था।

ग्रन्थ

भोजतन्त्र—भोज का शल्यतन्त्र पर्याप्त प्रसिद्ध था। सुश्रुत-संहिता उ० ३९।६६ की व्याख्या में डल्हण लिखता है—इदानीं भोज-भालुकि....।

अर्थात्—अब भोज, भालुकि तथा पुष्कलावत आदि शल्यतन्त्रज्ञों की सम्मत्यनुसार।

इस वचन में भोज को शल्यतन्त्र-ज्ञाता कहा है।

सुश्रुत-संहिता सू० ८।३ की निबन्ध-संग्रह व्याख्या में भोज-प्रोक्त अनेक शल्य-यन्त्रों का वर्णन है।

स्पष्ट है कि भोज का शल्यतन्त्र डल्हण आदि टीकाकारों को उपलब्ध था।

वचन—सुश्रुत-संहिता टीका, चरक-संहिता टीका, अष्टाङ्गसंग्रह तथा मधुकोश व्याख्या में भोज के अनेक वचन मिलते हैं।

५८. भालुकि ॥९॥

काल—भालुकि का काल भोज तथा पुष्कलावत का काल है। सुश्रुत-संहिता उ० ३९।६६ में आचार्य डल्हण भोज तथा पुष्कलावत का स्मरण करता है।

ग्रन्थ

शल्यतन्त्र—सुश्रुत-संहिता के उपरिलिखित वचन में भालुकि को शल्य-तन्त्रज्ञ कहा है। हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ५२६ के गिरिन्द्रनाथ के लेख का अनुवाद यहाँ देते हैं, "भालुकि के शल्यतन्त्रकार होने की सम्भावना है क्योंकि उसके शल्यतन्त्रपरक वचन उपलब्ध होते हैं। यथा—

इदानीं भोज-भालुकि-पुष्कलवाणादीनां शल्यतन्त्रविदां मतेन।

यहाँ पुष्कलवाण शब्द पुष्कलावत शब्द का भ्रष्ट पाठ है। स्पष्ट ही भोज-भालुकि तथा पुष्कलावत को शल्यतन्त्रज्ञ कहा है।

वचन—चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की चरक-संहिता की टीकाओं में भालुकि के दो-दो वचन उद्धृत हैं। इनके अतिरिक्त हि० इ० म०, भाग ३, पृ० ५२६-३३ तक भालुकि के ११ वचन उद्धृत हैं।

५६. दारुक

वंश—आयुर्वेदीय प्रकरणों में उद्धृत दारुक श्रीकृष्ण का प्रिय मित्र तथा सिद्धहस्त रथवान् प्रतीत होता है। अभी तक कोई अन्य दारुक दिखाई नहीं पड़ा। दारुक तथा सात्यकि आदि साथी थे, अतः यह दारुक महाभारत का दारुक प्रतीत होता है।

राजगुरुजी का सन्देह—काश्यप-संहिता पृ० ६६ पर राजगुरु जी लिखते हैं। क्या यह दारुक भी नामसाम्य से दारुवाह है? वस्तुतः दारुक तथा दारुवाह भिन्न व्यक्ति हैं। इनमें से दारुवाह का वर्णन आगे करेंगे।

ग्रन्थ

आयुर्वेदावतार—अष्टाङ्गहृदय.सू० ५।५५-५६ की सर्वाङ्ग-सुन्दरा व्याख्या में इसका उल्लेख है। यथा—**पानकस्तु आयुर्वेदावतारेऽधिजगे।** यहाँ पानक का पाठान्तर दारक लिखा है। परन्तु इसका शुद्ध पाठ दारुक है। इस शुद्ध पाठानुसार दारुक ने आयुर्वेदावतार लिखा।

वचन—दारुक के तीन वचन उपलब्ध होते हैं। यथा—अष्टाङ्गहृदय सू० ५।५५-५६, शा० ३।८१ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या तथा चरक-संहिता चि० ३।१९७-९९ की चक्रपाणि व्याख्या।

सर्वाङ्गसुन्दरा शा० ३।८१ में उद्धृत वचन का प्रारम्भ निम्नलिखित है—**तथा च चरकः।** यहाँ चरक पद के दो पाठान्तर हैं। दारुक तथा दारक। वस्तुतः शुद्ध पाठ दारुक है।

६०. कपिलबल ॥१०॥

वंश—चरक-संहिता के अन्तिम स्थानों का संस्कर्ता दृढ़बल था। दृढ़बल

का पिता कपिलबल था। चरक-संहिता चि० ३०।२९० में दृढ़बल को कापिल-बल कहा है।

स्थान—चरक-संहिता सि० १२।६६ में लिखा है कि दृढ़बल का जन्म पञ्चनद में हुआ। इससे निश्चय है कि कपिलबल पञ्चनद में रहता था।

आचार्य—वाग्भट अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० १५२ पर कपिलबल का मत उद्धृत करता है। इस वचन की व्याख्या शशिलेखा में कपिलबल को आचार्य कहा है। अष्टाङ्ग-हृदय की भूमिका पृ० १६ पर कपिलबल को शल्यतन्त्रकर्त्ता कहा है। इसके लिए सुदृढ़ प्रमाण की आवश्यकता है।

काल—आचार्य कपिलबल का समय निश्चित करने से पूर्व दृढ़बल के समय पर विचार करना आवश्यक है।

हर्नलि की मिथ्या कल्पना—अपनी आस्टिओलोजि की भूमिका पृ० १६ पर हर्नलि ने लिखा है—

Accordingly it is probable that all these three [Madhava, Dridhabala and Vagbhata II] medical writers come in the period from the seventh to the ninth century.

अर्थात्—माधव, दृढ़बल तथा द्वितीय वाग्भट सातवीं से नवम शताब्दी में हुए हैं।

भारतीय ऐतिहासिक तिथि-क्रम को ठीक करने वाले पं० भगवद्दत्त जी "भारतवर्ष का इतिहास" पृ० १५७ पर हर्नलि के इस कल्पित तिथि-क्रम को काटने के लिए निम्नलिखित अकाट्य तर्क उपस्थित करते हैं—

आयुर्वेदीय चरक-संहिता का प्रसिद्ध टीकाकार भट्टार हरिश्चन्द्र महाराज साहसांक, गुप्त चन्द्रगुप्त (प्रथम शती विक्रम) का समकालीन था। माधवनिदान मधुकोश व्याख्या १८।६ के अनुसार हरिश्चन्द्र ने चिकित्सा-स्थान के चौबीसवें अध्याय पर अपनी व्याख्या लिखी। चरक-संहिता के चिकित्सा-स्थान के ये अन्तिम अध्याय दृढ़बल के पूरित किए हुए हैं। माधव-निदानके इस प्रमाण से ज्ञात होता है कि दृढ़बल चरक-संहिता के इन भागोंका पुनरुद्धार भट्टार हरिश्चन्द्र से पूर्व कर चुका था। अतः दृढ़बल हरिश्चन्द्र का पूर्ववर्ती था, अतः हर्नलि की कल्पना निराधार है।

ग्रन्थ

कपिलबल तन्त्र—आयुर्वेददीपिका सू० ७।४६-५० की व्याख्या में उद्धृत वचन से ज्ञात होता है कि कपिलबल का आयुर्वेदीयतन्त्र था। यथा—कपिलबलेऽपि

पठ्यते ।

वचन—हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७८६,८७ पर कपिलबल के पांच वचन उद्धृत हैं।

अन्ततः यह सुनिश्चित है कि दृढ़बल का पिता कपिलबल भी भट्टार हरिश्चन्द्र का पूर्ववर्ती हुआ। अष्टाङ्गसंग्रह सूत्रस्थान पृ० १५२ पर वाग्भट, आचार्य कपिलबल का मत उद्धृत करता है—**कपिलबलस्त्वेषां स्वलक्षणानि रसतो निर्दिदेश।**

स्पष्ट है कि कपिलबल वाग्भट का पूर्ववर्ती था। परिणामतः ये पिता-पुत्र गुप्तकाल से पूर्वकाल के वैद्य थे।

इससे आगे वाग्भट सुश्रुत का पाठ पढ़ता है। इस सुश्रुत-पाठ के विषय में इन्दु लिखता है—

यथा सुश्रुतः कपिलबलमतमेव विशेषयति।

अर्थात्—सुश्रुत कपिलबल के मत को ही विशेष मानता है। यदि यह संकेत ठीक है, तो निश्चय ही कपिलबल सुश्रुत-प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन का पूर्ववर्ती था। लगभग यही बात अन्य प्रमाणों से पहले सिद्ध कर चुके हैं।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे द्वादशोऽध्यायः।

त्रयोदश अध्याय

मर्त्यलोक में कौमारभृत्य चिकित्सा का विस्तार
प्रजापति कश्यप का सुविख्यात शिष्य

६१. भार्गव जीवक=वृद्ध जीवक ॥१॥

अष्टांग आयुर्वेद के प्रथम तीन अंगों के आचार्यों का वर्णन हो चुका। अब "कौमारभृत्य" की आचार्य-परम्परा का उल्लेख किया जाता है। इस तन्त्र के अधिक आचार्यों का इतिवृत्त नहीं मिल सका। अतः उपलब्ध आचार्यों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं। कौमारभृत्य के सुप्रसिद्ध आचार्य जीवक ने इस तन्त्र का विशिष्ट ज्ञान प्रजापति कश्यप से उपलब्ध किया। अतः सर्वप्रथम जीवक का वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

वंश—पूर्व पृ० १२८ पर वल्मीक=च्यवन के वंशजों में ऋचीक का नाम तथा वंशवृक्ष लिख चुके हैं। काश्यप संहिता पृ० १६१ पर जीवक को ऋचीक-पुत्र कहा है। यथा—

जीवको निर्गततमा ऋचीकतनयः शुचिः।

स्पष्ट है कि जीवक का पिता ऋचीक था। पूर्व उद्धृत पौराणिक वंशावलि के अनुसार ऋचीक भृगुवंशी था। काश्यप संहिता पृ० १४८, १७७, २०६, २४६ तथा ३०१ पर जीवक को भार्गव कहा है। अतः निश्चय ही जीवक भृगुवंशी च्यवन के वंशज ऋचीक का पुत्र था।

श्री राजगुरु जी का विमर्श—काश्यप संहिता उपो० पृ० ४० पर विद्वद्वर राजगुरु जी लिखते हैं—**अस्य वृद्धजीवकस्य पिता कतमोऽयं ऋचीक इति निश्चेतुं न शक्यते।**

अर्थात्—इस वृद्धजीवक का पिता यह कौन सा ऋचीक है, यह निश्चय नहीं कर सकते।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ऋचीक, भार्गव च्यवन का वंशज था। किसी अन्य ऋचीक का नाम हमारी दृष्टि में अभी तक नहीं पड़ा।

भार्गव जावक बुद्ध का वैद्य जीवक नहीं—अनेक विद्वान् बिम्बिसारपुत्र प्रसिद्ध बौद्ध-वैद्य जीवक को काश्यप-शिष्य जीवक समझते हैं। वस्तुतः इन दोनों आचार्यों का ऐक्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इस विषय में अगले हेतु द्रष्टव्य हैं—

१. वृद्धजीवकीय तन्त्र के रचयिता जीवक का पिता ऋषि ऋचक था।

बौद्ध-वैद्य जीवक महाराज बिम्बिसार से किसी वेश्या में उत्पन्न हुआ था।

२. संस्कृत ग्रन्थ "मूल सर्वास्तिवाद-विनयवस्तु" के अन्तर्गत चीवरवस्तु पृ० २५ के अनुसार राजकुमार अभय से पालित होने के कारण बुद्ध के वैद्य जीवक का नाम कुमारभृत था—

अभयेन च राजकुमारेण भृत इति जीवकः कुमारभृतो जीवकः कुमारभृत इति संज्ञा संवृत्ता।

स्पष्ट है कि बौद्ध जीवक कौमारभृत्य तन्त्र का रचयिता होने के कारण कुमारभृत नहीं कहाया।

३. संस्कृतग्रन्थ "मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु" के अन्तर्गत चीवरवस्तु पृ० २६ पर बौद्ध जीवक को तक्षशिलाचार्य आत्रेय का शिष्य कहा है, परन्तु कौमारभृत्य तन्त्र का रचयिता जीवक प्रजापति कश्यप का शिष्य था।

४. काश्यपसंहिता के सुयोग्य सम्पादक राजगुरु हेमराज जी लिखते हैं कि उपलब्ध काश्यपसंहिता में कहीं भी बौद्ध छाया नहीं मिलती। यदि यह तन्त्र बौद्ध-वैद्य की रचना होती, तो इसमें बौद्ध मत की छाया का होना आवश्यक था।

कौमारभृत्याचार्य जीवक का जैन राजकुमार जीवक से कोई सम्बन्ध नहीं।

श्री राजगुरु जी काश्यपसंहिता, उपोद्घात पृ० ४३ पर लिखते हैं—जैन इतिहास में जीवन्धर जीव स्वामी अपर नाम जीवक एक प्रसिद्ध पुरुष था। गद्य चिन्तामणि आदि में उसका इतिहास उपलब्ध होता है। उसे किसी गन्धर्व ने विषहर मन्त्र सिखाया था।

इस जैन राजकुमार जीवक को काश्यप-शिष्य जीवक समझना उचित नहीं। काश्यप संहिता पृ० ४४ पर उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के काल-विभाग को देख इस तन्त्र की रचना जैन राजकुमार जीवक द्वारा नहीं माननी चाहिए। जैन विद्वानों ने उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी का ज्ञान अति प्राचीन आर्ष-ग्रन्थों से लिया है।

जीवक तथा वृद्ध जीवक—काश्यप संहिता पृ० १६१ पर वर्णित वृत्त से

ज्ञात होता है—महर्षि कश्यप ने पितामह [ब्रह्मा] की आज्ञानुसार ज्ञानचक्षु द्वारा देख कर तप से यह कुमारतन्त्र रचा। निर्गततम, पवित्र, ऋचीक-पुत्र जीवक ने यह महान् तन्त्र ग्रहण किया तथा इसका संक्षेप किया। परन्तु बालक द्वारा उपदिष्ट समझ, मुनियों ने इस तन्त्र का स्वागत नहीं किया। तदनन्तर पांच वर्ष का जीवक सब ऋषियों के सामने कनखल स्थान पर गङ्गाह्लद में निमग्न हुआ। क्षण भर में वह श्वेत-केश तथा श्मश्रु-युक्त होकर बाहर निकला। यह देख ऋषि लोग अति विस्मित हुए। उस बच्चे का नाम वृद्ध-जीवक रखा गया। बौद्ध जीवक के साथ किसी ऐसी घटना का सम्बन्ध नहीं।

काल—पूर्व पृ० १२८ के च्यवन के वंशवृक्ष पर दृष्टि डालने से पता लग जायगा कि जीवक जमदग्नि का समकालिक, अतः त्रेता के लगभग अन्त में था।

ग्रन्थ

वृद्ध जीवकीय तन्त्र—उपलब्ध काश्यप संहिता अथवा वृद्ध जीवकीय तन्त्र प्रजापति कश्यप के उपदेश रूप में जीवक को प्राप्त हुआ। यह तन्त्र वात्स्य से प्रतिसंस्कृत हुआ। सुश्रुत संहिता १।४–७ की व्याख्या में आचार्य डल्हण कौमारभृत्य के आचार्यों में जीवक का नाम स्मरण करता है। यथा—

ये च विस्तरतो दृष्टा इति पार्वतक-जीवक-बन्धक-प्रभृतिभिः कुमाराबाधहेतवः स्कन्दग्रहप्रभृतयः।

इस तन्त्र में अनेक अद्भुत बातें हैं। उनमें से कुछ एक का वर्णन पूर्व पृ० ६९-७० पर हो चुका।

६२. पार्वतक

पार्वतक शब्द तद्धितान्त है। तदनुसार इसके मूल पुरुष का नाम पर्वतक होगा। नारद का भागिनेय पर्वत था। उसका पार्वतक से कोई सम्बन्ध था या नहीं, यह अज्ञात है। पार्वतक का विशेष वृत्त ज्ञात नहीं हो सका। पूर्व उद्धृत डल्हण के वचन से केवल इतना ज्ञात हो सका है कि पार्वतक कौमारभृत्याचार्य था। पर्वतक नाम भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। एक पर्वतक राजा मुद्राराक्षस नाटक में वर्णित है।

६३. बन्धक

पूर्वोद्धृत डल्हण के वचनानुसार बन्धक भी कौमारभृत्याचार्य था।

६४. रावण

वंश—रावण का वंश अभी अन्वेषणीय है। गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग २, पृ० ४२५ पर कुमारतन्त्र के कर्ता रावण तथा प्रसिद्ध लङ्केश्वर

रावण को एक ही माना है। परन्तु संस्कृत वाङ्मय में वैदिक ग्रन्थों के भाष्यकर्ता पण्डित रावण का भी उल्लेख है। उसका रावण-भाष्य भी उपलब्ध है। यह रावण लङ्केश्वर रावण की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन है, अतः विचारणीय है कि कुमारतन्त्र का रचयिता रावण कौन था।

देश—बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार रावण रामठ देश का रक्षक = वैद्य था। रामठ देश पंजाब के उत्तर पश्चिम में है।

कौमारभृत्याचार्य—यह निश्चित है कि रावण कौमारभृत्याचार्य था। तत्त्वचन्द्रिका पृ० ३३८ पर रावणकृत कुमारतन्त्र का उल्लेख है यथा—

इदानीं प्रसिद्धफलं रावणकृतकुमारतन्त्रमाह ओं नारायणाय नमः।

इसके अतिरिक्त रावणकृत कुमारतन्त्र सम्बन्धी अनेक उपलब्ध हस्तलेखों से भी स्पष्ट है कि रावण कौमारभृत्याचार्य था।

ग्रन्थ

१. **रावणकृत बालतन्त्र**—इण्डिया आफ़िस के हस्तलेख संख्या २६८२ के अन्तर्गत रावणकृत बालतन्त्र का उल्लेख है।

२. **रावण बालतन्त्र**—तञ्जोर पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचिपत्र भाग १६, सं० ११०७८ के अन्तर्गत रावण बालतन्त्र सन्निविष्ट है।

रावणकुमारतन्त्र का उल्लेख त्रैमासिक पत्र इण्डियन कलकचर, भाग ७, पृ० २६९–२८६ तक देखने योग्य है।

३. **बालचिकित्सा**—मद्रास पुस्तक भण्डार की हस्तलेख संख्या १३१७५ के अन्तर्गत बालचिकित्सा का उल्लेख है। इस हस्तलेख में लिखा है—**रावणमते बालचिकित्सा कथ्यते।** स्पष्ट है कि यह बालचिकित्सा रावण-लिखित है।

४. **नाडी-परीक्षा**—रावण का यह ग्रन्थ सन् १९१२ में आचार्य यादव जी त्रिकमजी द्वारा आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ था।

५. **अर्कप्रकाश**—रावणलिखित यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। इसके अन्त में लिखा है कि यह लङ्केश्वर रावण की कृति है।

६. **उड्डेशतन्त्र**—दशाध्यायात्मक यह ग्रंथ भी रावणकृत है। यह विचारणीय है कि ये सब ग्रंथ किस रावण के रचे हुए हैं।

चतुर्दश अध्याय

भूतविद्या

भूतविद्या आयुर्वेद का अन्यतम अङ्ग है। कायचिकित्सा आदि अङ्गों के तन्त्र उपलब्ध हैं। शालाक्य, अगद तथा रसायन आदि के तन्त्र उपलब्ध नहीं, पर उद्धरणों से इनका न्यूनाधिक इतिवृत्त ज्ञात हो जाता है, पर भूतविद्या का तनिक इतिवृत्त भी ज्ञात नहीं। तथापि इस विषय का यत्किंचित् बोध आवश्यक है।

भूतविद्या का अस्तित्व

क—पूर्व पृ० १८६ पर अष्टाङ्गसंग्रह के प्रमाण से लिख चुके हैं कि पितामह ब्रह्मा के अष्टाङ्ग आयुर्वेद का ज्ञान परमर्षियों ने प्राप्त किया। अष्टांगों में एक भूतविद्या है, अतः स्पष्ट है कि सर्गादि से ब्रह्मा के उपदेश में भूतविद्या का पूर्ण ज्ञान था।

ख—पूर्व पृ० ११२ पर छान्दोग्य उपनिषद् का प्रमाण उद्धृत है। तदनुसार नारद भगवान् सनत्कुमार से कहता है—मैं भूतविद्या भी जानता हूं। नारद-सनत्कुमार का यह संवाद त्रेता के आरम्भ का प्रतीत होता है।

ग—भेलसंहिता पृष्ट १२० पर भूतवैद्यों का उल्लेख है। निश्चित है कि उस काल में भूतचिकित्सा करने वाले विशेष वैद्य थे।

घ—स्कन्दपुराण प्रभासक्षेत्र ८।६-९ में भूततन्त्र का उल्लेख है।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि कभी भूतविद्या पूर्ण विकसित थी। आगे इसके स्वरूप के विषय में कुछ विचार करेंगे।

भूतविद्या का स्वरूप

यह एक आवश्यक तथा गम्भीर विषय है। निम्नलिखित वचन से इस पर कुछ प्रकाश पड़ेगा। यथा—

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि सः स्मृतः।[1]

---

१. महाभारत, शान्तिपर्व २८०।२० की नीलकण्ठकृत टीका में उद्धृत।

अर्थात्—तन्मात्राओं का भूत-सृष्टि से सम्बन्ध है।

चरकसंहिता चि० ६।१७ में भूतोन्माद का निम्नलिखित लक्षण द्रष्टव्य है। यथा—

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थात्—एक भूतों से होने वाला उन्माद है। सूक्ष्मरूप में विद्यमान तन्मात्राओं पर विशेष प्रभाव होने से शरीर में दोष उत्पन्न होकर यह उन्माद होता है।

चरक-संहिता चि० ६।१८ में बताया है कि सूर्य आदि देव पुरुष पर अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं—

अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं देवादयः स्वैस्तु गुणप्रभावैः ।
विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ ॥

अर्थात्—जिस प्रकार छाया दर्पण में तथा आतप=धूप, सूर्य-कान्तमणि में प्रविष्ट होते हैं, उसी प्रकार इन देव आदियों का प्रभाव अति सूक्ष्मता से अदृश्य रूप में वेगपूर्वक होता है।

चरक-संहिता नि० ७।१३ के निम्नलिखित वचन से ज्ञात होता है कि देव आदि किस कारण से मनुष्य में प्रवेश करते हैं—

प्रज्ञापराधान् ह्ययं देवर्षि-पितृ-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पिशाच-गुरु-वृद्ध-सिद्ध-आचार्य-पूज्यान् अवमत्य अहितान्याचरति अन्यद्वा किंचिदेवंविधं कर्म अप्रशस्तम् आरभते। तम् आत्मना अपहतम् उपघ्नन्तो देवादयः कुर्वन्ति अनुत्तमम् ।

अर्थात्—बुद्धि दोष से कोई पुरुष देवर्षि······आदियों का तिरस्कार करके अर्थात् महान् प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके अकल्याणकारी कर्म करता है······तो देव आदियों से उस पुरुष का अहित होता है। नियमों के उल्लंघन का फल रोगरूप में उसे मिलता है।

वस्तुतः यदि ऊपर के सारे प्रकरण को सम्बद्ध किया जाए तो स्पष्ट होता है कि पञ्चतन्मात्राओं के कार्य सूक्ष्म तत्त्व भूत कहाते हैं। प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से विशेष नक्षत्रों अर्थात् सूर्य चन्द्र आदि देवों का सूक्ष्म प्रभाव मनुष्य में व्याप्त तन्मात्राओं पर पड़ता है। उस समय अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

हमारे शास्त्रों में आचार के अनेक नियमों का वर्णन करते हुए लिखा है—

१. नग्न स्नान न करे।

२. अमुक दिशा की ओर मूत्र तथा पुरीषोत्सर्ग न करे।

३. इन्द्रधनुष किसी को न दिखाए।

४. उत्तर की ओर सिर करके न सोए।

इस प्रकार के आचार के नियमों के उल्लंघन से ग्रह-नक्षत्र आदि का सूक्ष्म प्रभाव तन्मात्राओं पर पड़ता है। इसी को लक्ष्य करके चरक-संहिता नि० ७।१३ के वचन में लिखा है—प्रज्ञापराध से, देवों का अपमान करने से देव मनुष्यों पर क्रुद्ध होते हैं। यदि वर्तमान काल में ऐटम बम्ब का सूक्ष्म प्रभाव सुदूरवर्ती अणुओं तक भी पहुँचता है तो शरीर की क्रियाविशेष का प्रकृति के विशेष देवों, ग्रह आदि से सम्बन्ध होने पर विशेष रोगोत्पत्ति होना आश्चर्यकर नहीं। प्रतीत होता है इन रोगों का अधिक सम्बन्ध मन तथा सूक्ष्म तन्मात्राओं से है। अतएव इनकी निवृत्ति भी जप आदि से कही है। यथा—

भूतं जयेदहिंसेच्छुं जपहोमबलिव्रतैः।
तपश्शीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः ॥अष्टा० सं० उ०, पृ० ६६॥

इन सूक्ष्म प्रभावों के ज्ञान के लिए महती खोज आवश्यक है। एतद्विषयक निम्नलिखित कुछ श्लोक भी द्रष्टव्य हैं—

हिंसाविहारा ये केचिद्देवभावमुपाश्रिताः ॥२६॥
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः।
ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥२७॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते।
तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहितः ॥२८॥
जपैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितुम्। सुश्रुत, उ०अ० ६०।

वर्तमान काल में भूत, चुड़ैल आदि की झाड़-फूंक आदि से चिकित्सा, मुसलमान फ़कीरों के जादू-टोने तथा धागे भूतविद्या का विकृतरूप प्रतीत होता है।

एलोपैथी में इस विद्या का सर्वथा अभाव है। सत्त्व आदि गुणों के ज्ञान के विना इस विद्या का ज्ञान असम्भव है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदश अध्याय

अगदतन्त्र

६५. आलम्बायन

अगद शब्द का सामान्य अर्थ है–**गदस्याभावः अगदः**—अर्थात् रोगरहित होना। परन्तु आयुर्वेद में यह पारिभाषिक शब्द हो गया है। आचार्य डल्हण इसकी व्याख्या करते हुए लिखता है—**अगदो विषप्रतिकारस्तदर्थं तन्त्रम् अगदतन्त्रं**। अर्थात्—विविध विषों की शान्ति का उपाय बताने वाला तन्त्र अगदतन्त्र कहाता है।

अगदतन्त्र के तीन आचार्यों (वृद्ध काश्यप=काश्यप, उशना तथा बृहस्पति) का वर्णन पूर्व अध्यायों में कर चुके हैं। प्रस्तुत प्रकरण में अगदतन्त्राचार्य आलम्बायन का वर्णन करते हैं। वस्तुत: अगदतन्त्र अर्थशास्त्र का एक भाग है।

वंश—यजुर्वेद के चरक चरण का एक शाखाकार आलम्बि था। उसका पुत्र अथवा उसके कुल में आलम्बायन हुआ। महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ४९ में इन्द्रसखा आलम्बायन का नाम है। नहीं कह सकते यह आलम्बायन कौन था।

काल—आलम्बायन का काल भारतयुद्ध से कुछ पूर्व का होना चाहिए।

ग्रन्थ

आलम्बायनतन्त्र—सुश्रुतसंहिता के कल्पस्थान की डल्हण-व्याख्या में स्थान-स्थान पर आलम्बायन के वचन उद्धृत हैं। यह प्रकरण अगदतन्त्रपरक है। इससे निश्चय होता है कि आलम्बायन अगदतन्त्राचार्य था।

वचन—डल्हणकृत निबन्ध-संग्रह में आलम्बायन के अनेक वचन मिलते हैं। इनके अतिरिक्त हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७६० पर आलम्बायन के चार वचन उद्धृत हैं। अष्टाङ्गसंग्रह उ० की इन्दुटीका पृ० ३१४ पर विषप्रकरण में आलम्बायन का एक अन्य वचन उद्धृत है।

६६. दारुवाह=नग्नजित्

वंश—गान्धार के राजवंश में नग्नजित्=दारुवाह का जन्म हुआ था।[1]

नाम—आयुर्वेदीय ग्रन्थों में दारुवाह तथा नग्निजत् दो नाम दृष्टि में पड़ते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रह उ०, पृ० ३१४ पर नग्नजित् का मत उद्धृत है। यथा—

सप्तमे मरणं वेग इति नग्नजितो मतम् ॥

इस वचन की व्याख्या में इन्दु लिखता है।

नग्नजितो दारुवाहिनः अपि अत्र······सप्तवेगा इति मतम् ।

इन्दु के इस वचन से स्पष्ट है कि नग्नजित् को दारुवाह भी कहते थे।

भेलसंहिता पृ० ३० पर नग्नजित् को **राजर्षि** तथा **पार्थिवर्षि** कहा है। काश्यपसंहिता पृ० २६ पर दारुवाह को **राजर्षि** कहा है, अतः दोनों के एक होने में कोई सन्देह नहीं।

स्थान—नग्नजित्=दारुवाह गान्धारराज था। भेलसंहिता पृ० ३० पर इसका उल्लेख है।

शतपथ ब्राह्मण ८।१।४।१० में लिखा है—**नग्नजिद्वा गान्धारः ।**

ऐतरेय ब्राह्मण ३८।८ के **नग्नजिते गान्धाराय**, पाठ से भी स्पष्ट है कि नग्नजित् गान्धारवासी था।

महाभारत आदिपर्व ६३।१०७ में भी नग्नजित् को गान्धारी कहा है।

काल—नग्नजित् निमि आदि का समकालिक था।

गुरु

१. **पुनर्वसु आत्रेय**—भेलसंहिता पृ० ३० के पाठानुसार दारुवाह ने आत्रेय पुनर्वसु से विषयोग सीखे।

२. **प्रजापति कश्यप**—काश्यपसंहिता पृ० २१ पर लिखा है कि दारुवाह ने वृद्धजीवक को कश्यप से वेदना की व्याख्या कराने के लिए प्रेरित किया। स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष रूप से दारुवाह ने कश्यप से भी आयुर्वेद सीखा।

ग्रन्थ

१. **दारुवाहतन्त्र**—चरक संहिता चि० ३। ६३–६७ की जेज्जट टीका मे लिखा है—

दारुवाहे च पठ्यन्ते ।

अर्थात्—दारुवाह के तन्त्र में (ज्वरविषयक) श्लोक पढ़े जाते हैं।

---

१. भेलसंहिता पृ० ३०।

स्पष्ट है कि दारुवाह का आयुर्वेदीय तन्त्र विद्यमान था।

भेलसंहिता के अनुसार नग्नजित् ने पुनर्वसु से विषयोग सीखे। अष्टाङ्ग-संग्रह उ० पृ० ३१४ के नग्नजित् के वचन से नग्नजित् के अगदतन्त्र का होना सिद्ध होता है।

पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार (वि) नग्नजित् सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-प्रवर्तक था। जेज्जटटीका आदि में उद्धृत दारुवाह के वचनों से उसका आयुर्वेदज्ञ होना सिद्ध होता है।

वचन—दारुवाह के सात वचन निम्नलिखित स्थानों में क्रमशः उपलब्ध होते हैं। यथा—काश्यपसंहिता पृ० २६, चरक सं० चि० ३। ६३—६७ की जेज्जट व्याख्या, चरक सं० चि० ३।७४ की चक्रपाणिव्याख्या, अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० ३१३—१४, अष्टाङ्गहृदय सू० ५।२०, शा० १।५, शा० ३।६२, तथा ६३ की सर्वाङ्गसुन्दरा टीका।

२. **वास्तुशास्त्र**—मत्स्यपुराण अध्याय २५२ के अनुसार नग्नजित् वास्तु-शास्त्रोपदेशक था।

६७. आस्तीक

वंश—महाभारत आदिपर्व में आस्तीक की जन्मकथा वर्णित है। इसका जन्म नागवंश में हुआ था। इसका पिता जरत्कारु तथा माता मनसादेवी थी।

ग्रंथ

आस्तीकतन्त्र—चि० क० पृ० ७६ पर आस्तीकके अगदतन्त्र का वर्णन है।

योग—चिकित्साकलिका में लिखा है—आस्तीकनाम अगदम्। यह योग आस्तीक का था।

६८. तार्क्ष्य तन्त्र

इस तन्त्र का अस्तित्व चरक चि० २३।२५०-५३ की जेज्जट टीका से ज्ञात होता है। वहाँ लिखा है—अन्या अपि तार्क्ष्यतन्त्र आम्नाताः।

६९. विषतन्त्र

अष्टाङ्ग हृ० सू० ७।२२-२६ की हेमाद्रि-व्याख्या में विषतन्त्र के अनेक श्लोक उद्धृत हैं। तन्त्रकर्ता का नाम वहां नहीं लिखा।

७०. अगदराजतन्त्र

वैद्यक-विषयक सनामकरण विरचित अगदराजतन्त्र रा० एशियाटिक सो० बङ्गाल, कलकत्ता के सूचीपत्र में संख्या ४५६२ के अन्तर्गत सन्निविष्ट है।

इति कविराजसूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे पञ्चदशोऽध्यायः

षोडश अध्याय

रसायनतन्त्र

रसतन्त्र का महत्त्व—पूर्व लिख चुके हैं कि आयु के पालक वेद का नाम आयुर्वेद है। आयुर्वेद का अतितरां प्रभावोत्पादक अङ्ग रसतन्त्र है। आयुर्वेद के इस अङ्ग में अनेक आयुष्य योग उल्लिखित हैं। रसायनतन्त्र की व्याख्या करते हुए सुश्रुतसंहिता सू० १।७ में लिखा है—

रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापरहरणसमर्थं च।

इस वचन की व्याख्या में डल्हण लिखता है—

वयःस्थापनं वर्षशतमायुःस्थापनम। आयुष्करं शताधिकमपि करोति॥

अर्थात्-सौ वर्ष की आयु देने वाला अथवा सौ वर्ष से भी अधिक आयु देने वाला।

हम अनेक दीर्घायु महर्षियों का वृत्त लिख चुके हैं। वे योगबल तथा रसायनबल से अति दीर्घायु हुए। इस प्रकार आयुर्वेद शब्द को सार्थक प्रमाणित करने में रसतन्त्र अत्यधिक महत्त्व रखता है।

रसतन्त्र-कर्ता कुछ अतिदीर्घायु आचार्यों का वर्णन पूर्व कर चुके हैं। शिव रसतन्त्र का प्रधान आचार्य था। भृगु, अगस्त्य तथा वसिष्ठ भी रसतन्त्राचार्य थे। इन सब आचार्यों के क्रमबद्ध रसतन्त्र-विषयक इतिहास के लिए पृथक् ग्रंथ की आवश्यकता है। इस अध्याय में कुछ एक आचार्यों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे। अगस्त्य आदि के पश्चात् आचार्य माण्डव्य का रसतन्त्र में विशेष स्थान है। अतः उनका वर्णन करते हैं।

७१. माण्डव्य

वंश—अष्टाध्यायी ४।१।१०५ के गर्गादि गण में मण्डू शब्द पढ़ा गया है। मण्डू का गोत्रापत्य माण्डव्य कहाया।

काल—पालकाप्यकृत हस्त्यायुर्वेद १।१।२७ के अनुसार दशरथसखा रोमपाद के दरबार में ऋषि माण्डव्य उपस्थित था। कौषीतकि गृह्य २।५ में माण्डव्य का नाम स्मरण किया है। महाभारत आदिपर्व १०७ में भी माण्डव्य

का वर्णन है। कौटल्य अर्थशास्त्र ४।८ में माण्डव्य विषयक एक घटना वर्णित है। यही घटना बृहस्पति के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट हो जायगी। यथा—

चौरो ऽचोरो साध्वसाधु जायेत व्यवहारतः।
युक्तिं विना विचारेण माण्डव्यश्चौरतां गतः॥

अर्थात् युक्तरहित न्याय से साधु माण्डव्य चोर बना दिया गया।

वस्तुतः यह अन्वेषणीय है कि विभिन्न स्थानों पर वर्णित माण्डव्य एक है अथवा पृथक् पृथक्।

आयु—माण्डव्य अति दीर्घायु था।

पतञ्जलि का योगसूत्र है—

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः। ४।१॥

इस सूत्र के ओषधि शब्द पर व्यासभाष्य में लिखा है।

ओषधिभिरसुरभवनेषु रसायनेन इत्येवमादिः।

इस वचन पर वाचस्पति मिश्र की टीका से ज्ञात होता है कि माण्डव्य मुनि रसायन प्रयोग से दीर्घायु हुआ। यथा—

मनुष्यो हि कुतश्चिन्निमित्तादसुरभवनमुपसंप्राप्तः कमनीयाभिरसुर-कन्याभिरुपनीतं रसायनमुपयुज्याजरामरणत्वमन्याश्च सिद्धिरासादयति। इहैव वा रसायनोपयोगेन—यथा माण्डव्यो मुनी रसोपयोगाद् विन्ध्य-वासी इति।

व्यास मुनि के वचन में असुरभवनों में ओषधि के प्रयोग का अभिप्राय असुर गुरु उशना द्वारा ओषधि रस से निर्मित सुधा प्रतीत होता है। रसायन का प्रयोग पारद योगों के लिए हुआ प्रतीत होता है।

यह निश्चित है कि माण्डव्य रसायन सेवन से दीर्घायु हुआ।

गुरु

वसिष्ठ—पूर्व पृ० ६४ पर लिख चुके हैं कि वसिष्ठ ने अपने शिष्य माण्डव्य को ज्योतिष शास्त्र सिखाया।

ग्रंथ

१. **रसतन्त्र**—रसरत्न समुच्चय में माण्डव्य को रससिद्धि-प्रदायक कहा है। नागार्जुन ने अपने रसरत्नाकर में माण्डव्य को रसतन्त्रकार कहा है। एक अन्य स्थान पर नागार्जुन कहता है—

शास्त्रं वसिष्ठ-माण्डव्यं गुरुपार्श्वे यथाश्रुतम्।
तदहं संप्रवक्ष्यामि साधनञ्च यथाविधि॥

अर्थात्—वसिष्ठ तथा माण्डव्य का शास्त्र गुरु से जैसा सुना है उसे यथा-

विधि कहूंगा ।

वचन—माण्डव्य का कोई वचन तथा योग नहीं मिला ।

७२. व्याडि

वंश—व्याडि शब्द तद्धितान्त है, तदनुसार व्याडि के पिता का नाम व्यड था । मत्स्यपुराण १९।५।२५ में दाक्षि को अंगिरा वंश का कहा है । न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि के लेखानुसार **'व्याडि दाक्षायण'** का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ था । दाक्षी और दाक्षायण नामों से इस वंश के मूल-पुरुष का नाम दक्ष प्रतीत होता है । कोशग्रंथों में व्याडि का एक विशेषण नन्दिनी-सुत है । इससे ज्ञात होता है कि व्याडि की माता का नाम नन्दिनी था । श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० १९५ पर लिखते हैं कि नन्दिनी सुत आदि विशेषण किसी अर्वाचीन व्याडि के हैं, इस व्याडि के नहीं । उनके अनुसार रसतन्त्रकार व्याडि की माता का नाम नन्दिनी नहीं हो सकता । पाणिनी ने ४।१।८० के क्रौडयादि गण में व्याडि का निर्देश किया है । उसके अनुसार व्याडि की किसी भगिनी का नाम व्याड्या प्रतीत होता है । इसका अन्यत्र उल्लेख नहीं । व्याडि पाणिनी का मामा था । एतद्विषयक विशेषवृत्त के लिए देखो व्याकरण शा० इ० पृ० १३१ ।

पर्याय—व्याडि को दाक्षि तथा दाक्षायण भी कहते थे ।

काल—व्याडि का काल भारतयुद्ध पश्चात् २००–३०० वर्षों के मध्य है । गृहपति शौनक ने अपने ऋक्प्रातिशाख्य में अनेक स्थानों पर व्याडि का उल्लेख किया है । ऋक्प्रातिशाख्य का प्रवचन भारतयुद्ध के लगभग २५० वर्ष के पश्चात् महाराज अधिसीम कृष्ण के काल में हुआ था ।

स्थान—पुरुषोत्तमदेव आदि ने व्याडि का एक विशेषण विन्ध्यस्थ=विन्ध्य-वासी=विन्ध्यनिवासी लिखा है । तदनुसार किसी काल में वह विन्ध्य पर्वत का निवासी था । काशिका २।४।६० में किसी दाक्षि पिता तथा दाक्षायण पुत्र का उल्लेख है । इससे आगे काशिका ४।१।१६० में दाक्षि को प्राग्देशीय लिखा है । अभिनव शाकटायन व्याकरण २।४।११७ की चिन्तामणि वृत्ति में अंगवंग प्राग्देशवासियों के साथ दाक्षि पद पढ़ा है । दाक्षि या दाक्षायणों का कुल बहुत विस्तृत और समृद्ध था । काशिका में दाक्षि पूर्वपद नामक अनेक ग्रामों का उल्लेख मिलता है ।

ग्रन्थ

१. **रसतन्त्र**—वाग्भट के रसरत्नसमुच्चय के आरम्भ में स्मृत २७ रसाचार्यों में व्याडि का नाम है । महाराज समुद्रगुप्त के कृष्णचरित की कथा प्रस्ताव-

नान्तर्गत मुनिकवि-कीर्तन में व्याडि को रसाचार्य कहा है। यथा—

रसाचार्यः कविर्व्याडिः शब्दब्रह्मैकवाङ्मुनिः।
दाक्षीपुत्रवचोव्याख्यापटुर्मीमांसकाग्रणीः ॥१६॥

पार्वतीपुत्र नित्यनाथ सिद्ध विरचित रसरत्न के वादिखण्ड, उपदेश १, श्लोक ६६–७० में उल्लिखित रसाचार्यों के नामों में व्यालाचार्य का नाम स्मरण किया गया है। 'ड' 'ल' के अभेद से सम्भव है यहाँ शुद्धपाठ व्याड्याचार्य हो। रामराजा के रसरत्नप्रदीप में भी व्याडि का उल्लेख है। निश्चय ही आचार्य व्याडि रस=पारद शास्त्र का प्रमुख आचार्य था। अल्बेरूनि ने अपनी पुस्तक के भाग १, अध्याय १७, पृ० १८९ पर एक रसज्ञ व्याडि का उल्लेख किया है। अल्बेरूनि के अनुसार वह व्याडि विक्रमसमकालिक था।

२. **मीमांसा**—कृष्णचरित में व्याडि को मीमांसकाग्रणी लिखा है।

३. **संग्रह**—दाक्षायण व्याडि ने व्याकरण के संग्रह ग्रंथ की रचना की। भरत नाट्यशास्त्र ६।९ में संग्रह का निम्नलिखित लक्षण उपलब्ध है—

विस्तरेणोपदिष्टानाम् अर्थानां सूत्रभाष्ययोः।
निबन्धो यः समासेन संग्रहं तं विदुर्बुधाः॥

चरकसंहिता में प्रकरण-समाप्ति पर लिखे गए संग्रह श्लोकों पर यह लक्षण यथारूप घटता है, परन्तु कैय्यट आदि के अनुसार व्याडि का संग्रह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों में था। क्या वह समासरूप में था ? यहाँ यह लक्षण चिंत्य है।

४. **व्याकरण**—व्याडि का एक व्याकरण शास्त्र भी था।

५. **परिभाषापाठ**—अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है कि व्याडि ने परिभाषापाठ की रचना की।

६. **लिङ्गानुशासन**—व्याडिकृत लिङ्गानुशासन का उल्लेख मिलता है।

७. **बलचरित**—महाराज समुद्रगुप्त के पूर्वोद्धृत वचनानुसार व्याडि ने महाभारत से भी अधिक प्रसिद्ध **'बलचरित'** नामक महाकाव्य लिखा।

८. **विकृतिवल्ली**—विकृतिवल्ली संज्ञक ऋग्वेद का एक परिशिष्ट उपलब्ध होता है। वह आचार्य व्याडिकृत माना जाता है। परन्तु यह ग्रंथ या तो किसी अर्वाचीन व्याडि का है, अथवा इसमें नमस्कार का श्लोक पीछे से मिलाया गया है।

९. **कोष**—व्याडि के कोष के उद्धरण कोश ग्रंथों की अनेक टीकाओं में उपलब्ध होते हैं। यह कोश विक्रमकालिक अर्वाचीन व्याडि का है।

७३. पतञ्जलि

वंश—पतञ्जलि की माता का नाम गोणिका कहा जाता है, परन्तु संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० २३५ पर श्री पं० युधिष्ठिर जी लिखते हैं—हमारा विचार है कि गोणिका-पुत्र भी पतञ्जलि से पृथक् व्यक्ति है। पतञ्जलि के पिता का नाम सर्वथा अज्ञात है।

नामान्तर—पतञ्जलि को गोनर्दीय, गोणिका-पुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत्, चूर्णिकार और पदकार आदि नामों से स्मरण किया है।

अन्य सम्भावना—आगे ऐसे प्रमाण लिखेंगे जिनसे ज्ञात होता है कि चरक संहिता का प्रतिसंस्कर्ता एक पतञ्जलि था। श्री पं० युधिष्ठिर जी अपने व्या० इतिहास के पृ० २५३ पर लिखते हैं—क्या चरक पतञ्जलि का ही नामान्तर है ? पतञ्जलि अधिकतर काठक संहिता के पाठों को उद्धृत करता है। काठक संहिता चरक चरणान्तर्गत है। यदि उपर्युक्त विचार ठीक हो तो पतञ्जलि का एक विशेषण चरक होगा। इस विचार की पुष्टि के लिए सब वैदिक पाठों की तुलना आवश्यक है।

स्थान—पतञ्जलि का एक विशेषण गोनर्दीय है, परन्तु श्री मीमांसक जी अपने इतिहास के पृ० २३४ पर लिखते हैं—हमारा विचार है कि गोनर्दीय पतञ्जलि से भिन्न व्यक्ति है। यदि पतञ्जलि का एक विशेषण गोनर्दीय है तो पतञ्जलि गोनर्द देशवासी था।

काल—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७८ पर पतञ्जलि की तिथि ईसा-पूर्व दूसरी शती लिखी है। यह तिथि पाश्चात्य लेखकों द्वारा कल्पित है। महाभाष्यान्तर्गत अनेक उद्धरणों से स्पष्ट है कि पतञ्जलि पुष्यमित्र का समकालिक था। पौराणिक काल-गणना के अनुसार, जो सर्वथा ठीक है, पुष्यमित्र विक्रम से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ। अतः पतञ्जलि का भी वही काल है।

ग्रन्थ

पतञ्जलि-विरचित तीन ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं।

१. सामवेदीय निदानसूत्र।

२. योगसूत्र।

३. महाभाष्य।

निम्नलिखित ग्रन्थ नाममात्रोपलब्ध हैं।

४. रसतन्त्र—रसरत्नसमुच्चय में पतञ्जलि को रसतन्त्रकर्ता कहा है।

५. चक्रपाणि तथा भोजदेव आदि के अनुसार पतञ्जलि ने चरक संहिता

का प्रतिसंस्कार किया परन्तु इसके लिए प्रबल प्रमाण अपेक्षित हैं। उपलब्ध चरक संहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में लिखा है—**अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते**। पूर्व पृ० पर लिख चुके हैं कि सम्भवतः चरक शाखा का अध्येता होने के कारण पतञ्जलि का एक नाम चरक था। यह विचारणीय विषय है। महाराज समुद्रगुप्त ने अपने कृष्णचरित की प्रस्तावना में लिखा है—

महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि ने चरक में धर्मानुकूल कुछ योग सम्मिलित किए, और योग की विभूतियों का निदर्शक योग व्याख्यानभूत "महानन्द-काव्य" रचा।

इससे स्पष्ट है कि पतञ्जलि ने चरक संहिता में कुछ योग सन्निविष्ट किए।

चक्रपाणि, पुण्यराज और भोजदेव आदि अनेक ग्रन्थकार मानते हैं कि—महाभाष्य, योगसूत्र तथा चरक संहिता का प्रतिसंस्कर्ता एक ही पतञ्जलि था। परन्तु यह विचारणीय विषय है। षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

योगाचार्यः स्वयं कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः।

इसके अनुसार योगदर्शन तथा सामवेदीय निदानसूत्र का कर्ता एक ही व्यक्ति है। यह अति प्राचीन ऋषि है। महाभाष्यकार पतञ्जलि इसकी अपेक्षा अर्वाचीन है। एक आङ्गिरस पतञ्जलि का उल्लेख मत्स्य १९५।२५ में मिलता है।

७४. नागार्जुन

वंश—कहा जाता है कि नागार्जुन ब्राह्मणकुलोत्पन्न था। पर उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

स्थान—पूर्व पृ० २५१ पर लिख चुके हैं कि लामा तारानाथ के अनुसार वह मध्यप्रदेश, दक्षिण तथा श्रीपर्वत नामक विभिन्न स्थानों पर समय-समय पर रहा।

काल—पूर्व लिख चुके हैं कि नागार्जुन शक-प्रवर्तक साहसाङ्क विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व था।

चीनी ग्रन्थों का साक्ष्य—नागार्जुन सातवाहन महाराज मन्तलक=पत्तलक का समकालिक प्रतीत होता है। पं० भगवद्दत्त जी भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० २९० पर लिखते हैं—ह्यूनत्सांग की जीवनी में लिखा है—नागार्जुन के समय में देश का राजा **सो-तो-पो-हो** था। (अंग्रेजी अनुवाद पृ० १३५)। यह सातवाहन शब्द का चीनी रूपान्तर है।" इति।

वाट्टर्स के अनुवाद में **श-तो-पो-ह** पाठ है।[1]

---

१. भाग २, पृ० २०६।

पूर्वलिखित दोनों चीनी पाठ सातवाह (न) शब्द का रूपान्तर हैं।

पुराणों के मुद्रित पाठों के अनुसार मत्तलक का राज्यकाल ५ वर्ष था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार नागार्जुन का आश्रयदाता राजा चिरजीवी था। इस स्थल पर पुराण पाठ चिन्त्य है।

चीनी यात्री ह्यूनत्सांग के अनुसार अश्वघोष और नागार्जुन समकालिक थें।

मन्तलक की समकालिकता का हेतु—प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्री ०. भगवद्दत्त जी ने सर्वप्रथम नागार्जुन को मन्तलक का समकालिक सिद्ध किया है। वे भारतवर्ष का इतिहास, ितीय संस्करण, पृ० २६० पर लिखते हैं—"जीवनी के अनुवादक ने चीनी ग्रन्थों के आधार पर इस राजा का नाम **शि-यन-तो-किया** लिखा है। इत्सिंग इस राजा का नाम **त्रि-इन-त-क** लिखता है। इन चीनी रूपान्तरों से मूल नाम **चिन्तक** अथवा **सन्तक** प्रतीत होता है।" मन्तलक के पाठान्तरों में चन्तक पाठ भी उपलब्ध है।

जैन परम्परा का साक्ष्य—नागार्जुन का यथार्थ काल समझने के लिए जैन गुरु परम्परा का एक वंशवृक्ष हम नीचे उद्धृत करते हैं। यह वृक्ष पं० भगवद्दत्तकृत भा० व० इ०, द्वि० सं०, पृ० २६८ पर मुद्रित है। इस वृक्ष में हमने कुछ परिवर्धन किया है।

समकालिक सातवाहन राज[1]—श्री कालिकाचार्य[2]—गर्दभिल्ल-दण्डनार्थ शकराज निमन्त्रयिता।

|

आर्य नागहस्ती[2]

|

शकारि-शूद्रक विक्रम, सातवाहन (मत्तलक)[3], कालिदास[4] प्रथम — [2]पादलिप्तक[2]-नागार्जुन[3]। पाटलिपुत्र में मुरुण्ड

|

स्कन्दिलाचार्य[4]—ज्योतिष-ग्रन्थ रचयिता

|

मुकुन्द वृद्धवादी[4]

|

सिद्धसेन दिवाकर[5]—संवत्-प्रवर्तक साहसाङ्क विक्रम[6] का समकालिक

---

१. प्रभावक चरित, श्री कालकसूरिप्रबन्ध, श्लोक ११३-११६।

२. प्रभावक चरित, श्री पादलिप्तप्रबन्ध, श्लोक १५। प्रबन्धकोष, पृ०

इस वृक्ष में हमने दो स्थानों पर परिवर्धन किया है। प्रथम स्थान पर ५ का अङ्क लिखा गया है। इसका आधार है तिब्बतीय वर्णन। तदनुसार कालिदास, नागार्जुन और सातवाहन समकालिक थे। दूसरा परिवर्धन स्कन्दिलाचार्य नाम के सामने का पाठ है। इसके प्रमाण के लिए देखो इण्डियन कलचर भाग ११, अंक १, पृ० ४ पर ज्योतिषग्रन्थ सारावलि का पाठ।

यह गुरु-परम्परा-वृक्ष दृढ़ प्रमाणों के आधार पर बनाया गया है। अतः स्वीकरणीय है तदानुसार संवत् प्रवर्तक सिद्धसेन दिवाकर से बहुत पूर्व नागार्जुन हो चुका था।

पाश्चात्य लेखकों की भ्रष्ट काल-गणना—पाश्चात्य लेखक और उनके एतद्देशीय शिष्य सातवाहनों को ईसा की दूसरी शती में मानते हैं। यह काल-गणना कल्पित अर्थात् बनावटी है। पुराणों का सर्वसम्मत मत है कि आन्ध्रों अथवा सातवाहनों के आरम्भ पर शन्तनु-पिता प्रतीप के काल से आरम्भ होने वाला एक सप्तर्षि-चक्र पूरा हो गया था। यह सप्तर्षि काल की गणना अकाट्य है। पाश्चात्य लेखकों ने इस गणना को छुआ भी नहीं, अतः उन्होंने अपनी गणनाएँ कल्पित की हैं। हमने इन मन-घड़न्त तिथियों का सर्वथा त्याग किया है।

१२। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह पृ० ६२।

३. नागार्जुन सातवाहन का गुरु तथा पादलिप्तक का शिष्य। प्रबन्धकोष पृ० ८४। प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ११९।

४. भद्रेश्वर सूरि की कथावलि (संवत् ११३० के समीप) में सिद्धसेन और विक्रम की समकालिकता स्वीकृत है। देखो, अपभ्रंश काव्यत्रयी, भूमिका, पृष्ठ ७४। प्रभावकचरित, वृद्धवादि प्रबन्ध ९१, श्लोक ४,५। प्रबन्धकोष पृ० १५।

५. देखो, गङ्गानाथ झा रिसर्च जर्नल, भाग १, अंक ४, पृ० ४०३-४०६।

६. कालिकसूरिः प्रतिमां सुदर्शनाय व्यधापयद्यां प्राक्। साकाशे गच्छन्ती निषेधिता सिद्धसेनेन॥ प्रभावकचरित, श्री विजयसिंह सूरि प्रबन्ध, श्लोक ७८। प्रबन्धकोष पृ० १६।

७. श्री सिद्धसेनसूरेर्दिवाकरात् बोधमाप्य तीर्थेऽस्मिन्। उद्धारं ननु विदधे राजा श्री विक्रमादित्यः॥ प्रभावक चरित, श्री वि० सिं० सूरि प्र० श्लोक ७७। विविध तीर्थकल्प, कुडुंगेश्वर युगादि देवकल्प, पृ० ८८, ८९।

चीनी ग्रन्थों में नागार्जुन का काल—विभिन्न चीनी ग्रंथों में नागार्जुन को बुद्धनिर्वाण से ७००,५०० अथवा ४०० वर्ष[1] पश्चात् माना है।[2] स्मरण रहे कि चीनी ग्रंथ बुद्ध को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व मानते हैं। अतः उनकी गणना के अनुसार नागार्जुन का काल ईसा अथवा विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व पड़ेगा। यही हम पहले लिख चुके हैं।

अरबी ग्रंथों में नागार्जुन—अलबेरूनी रसायनज्ञ नागार्जुन के काल-विषय में लिखता है—वह हमारे काल से लगभग १०० वर्ष पूर्व जीवित था। इति।[3] यह लेख हमारी समझ में नहीं आया।

संस्कृत के अन्य ग्रंथों में नागार्जुन

क—राजगुरु श्री हेमराज जी काश्यपसंहिता उपो० पृ० ६५ पर अपने पुस्तकसंग्रह के एक संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथ **शालवाहन चरित्र** का वचन उद्धृत करते हैं—

दृष्टतत्त्वो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महाराजगुरुः श्रीनागार्जुनाभिधानः शाक्यभिक्षुराजः। इति।

ख—महाकवि भट्ट बाण अपने हर्ष-चरित के उत्तर उच्छ्वास ८ में नागार्जुन तथा सातवाहन को समकालिक कहता है—

समतिक्रामति च कियत्यपि काले तामेकावलीं तस्मान्नागराजान्नागार्जुनो नाम······लेभे च, त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहनाय नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम्।

इन प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध है कि सातवाहन, कनिष्क तथा अश्वघोष

---

१. चन्द्रकीर्ति अपने मध्यमिकावतार षष्ठ प्रकरण श्लोक ३ में आर्य नागार्जुन का स्मरण करता है। इस श्लोक की अपनी टीका में वह नागार्जुन विषयक लङ्कावतार सूत्र के दो श्लोक उद्धृत करता है। इससे आगे वह आर्य द्वादशसहस्रमहामेघ ग्रंथ का पाठ उद्धृत करता है। यथा—

लिच्छविकुमारोऽयं···························।
निर्वाणात् चतुःशतेषु वर्षेषु व्यतीतेषु।
नागाह्वयो भिक्षुर्भूत्वा ··········।
भविष्यति·························॥

जर्नल ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास सन् १९२९, अन्त में पृ० ४,५।

२. देखो वाट्र्स भाग २, पृ० २०४।

३. भाग १, पृ० १८९।

समकालिक थे तथा विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व हुए।

आयु—नागार्जुन की आयु पर्याप्त दीर्घ थी।

१. तिब्बती ग्रन्थों में—पूर्व पृ० २५१ पर लिख चुके हैं कि लामा तारानाथ के लेखानुसार नागार्जुन की आयु ५२९ अथवा ५७१ वर्ष हुई।

२. चीनी ग्रन्थों का सार—वाट्टर्स अपनी पुस्तक के भाग २, पृ० २०४ पर लिखता है—

In the apocraphycal line of succession he (नागार्जुन) is placed as the 14th or the 13th Patriarch, and he is said to have died in B. C. 212. He is said to have been born in B. C. 482, and he is described as contemporary with, or a little later than, Kanishka in the first century of our era.

अर्थात्—बुद्ध की उत्तरवर्ती-परम्परा में नागार्जुन १४वां अथवा तेरहवां प्रधान-पुरुष था। कहते हैं वह २७० वर्ष की आयु में ईसा से २१२ वर्ष पहले निधन को प्राप्त हुआ। वर्तमान लेखक उसे ईसा की प्रथम शती में रखते हैं।

वस्तुतः शूद्रक, नागार्जुन, कनिष्क और अश्वघोष आदि विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व हुए थे।

नागार्जुन २०० वर्ष से न्यून नहीं जिया।

३. बौद्ध ग्रन्थों में—पूर्व लिख चुके है बौद्ध ग्रन्थों में नागार्जुन के आश्रयदाता राजा का नाम चिर-जीवी लिखा है। वस्तुतः नागार्जुन के रसायन-बल से दीर्घ आयु प्राप्त करने के कारण वह चिरजीवी कहाया।

मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक "बुद्धिज्म" के पृ० १९९ पर एक कथा उद्धृत करता है। उसमें लिखा है—नागार्जुन जादू जानता था। इस जादू के बल से उसने अपनी तथा एक भारतीय राजा की आयु अति दीर्घ की थी।

यह सुनिश्चित है कि नागार्जुन रसायनज्ञ था, तथा रसायन-बल से वह स्वयं दीर्घायु हुआ।

प्रतिसंस्कर्ता—आचार्य डल्हण के अनुसार नागार्जुन ने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार किया।

प्रफुल्लचन्द्र रे का हिन्दू इतिहास पर अत्याचार

हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री, भाग १, भूमिका पृ० २४ पर रे महोदय लिखते हैं।

Here for the first time in the history of Hindu

medicine and Chemistry, we come across a personage who is historical rather than mythical.

अर्थात्—हिन्दू औषध तथा रसशास्त्र के इतिहास में हम नागार्जुन पर एक ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं, जो ऐतिहासिक है, कल्पित नहीं।

परिणाम—रे महोदय के वाक्य से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—

१. भारतीय वैद्यक तथा रसशास्त्र में नागार्जुन ही पहला व्यक्ति है जो कल्पित नहीं, अर्थात् नागार्जुन से पूर्व के सब आचार्य कल्पित थे।

२. भारतीय आयुर्वेदिक इतिहास का प्रारम्भ ही नागार्जुन से हुआ।

आलोचना—हम अब तक नागार्जुन से पूर्व के ७३ आचार्यों का क्रमवद्ध संक्षिप्त इतिहास लिख चुके हैं। आचार्य रे ने उन सब पर हड़ताल फेर कर कहा है कि नागार्जुन ही सर्वप्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति था।

काश्यपसंहिता, चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता विद्वज्जगत् को अपना साक्ष्य स्वयं दे रही है कि ये निश्चित ही नागार्जुन से पूर्व की कृतियाँ हैं। क्या इनकी ओर से आँखें मूंद कर कहना होगा कि ये भी मिथिकल अर्थात् कल्पित लेखकों की कृतियां हैं ?

आर्य इतिहास को लिखने का साहस करने वाले, भारत की भूमि में जन्म लेने वाले, ऋषियों के उत्तराधिकारी रे महोदय का उपरिलिखित वाक्य पढ़ कर किस सच्चे ज्ञानवान् भारतीय का मन नहीं फटता। क्या इसी प्रकार सारा भारतीय इतिहास नष्ट-भ्रष्ट नहीं किया गया ? क्या आज के स्वतंत्र भारत में भी यही भावनाएं फैलेंगी।

वस्तुतः पश्चिमी लेखकों ने प्रच्छन्न-धारणा से भारतीय गौरव को नष्ट करने के लिए यह विष फैलाना आरम्भ किया और नाममात्र के कतिपय भारतीय इतिहास लेखकों ने आखें मूंद कर उस बने-बनाए मार्ग पर चलना स्वीकार कर लिया। तथा गौरांग प्रभुओं की धूर्तता को भारतीय इतिहास के नाम से सारी जाति पर मढ़ कर भयङ्कर अत्याचार किया।

रसतन्त्रकार

ग्रंथ

१. **लोहशास्त्र**—चक्रदत्त ने मुनीन्द्र नागार्जुन के लोहशास्त्र का उल्लेख किया है। रसेन्द्रचिन्तामणि तथा तत्त्वचन्द्रिका में भी इसका संकेत मिलता है।

२. **रसरत्नाकर**—यह रसतन्त्र भी नागार्जुनकृत माना जाता है।

३. **कक्षपुटम्**—यह ग्रंथ नागार्जुन का कहा जाता है। इसका हस्तलख उपलब्ध है।

४. **आरोग्य मंजरी ।**

५. **योगसार**—नेपाल पुस्तकभण्डार की हस्तलेख सूचि संख्या २२, हस्त-लेख संख्या ११३७ के अन्तर्गत नागार्जुन के इस ग्रन्थ का उल्लेख है। वङ्गसेन में भी इसका उल्लेख है।

६. **रसेन्द्र मङ्गल** ।

७. **रतिशास्त्र**—संवादात्मक यह ग्रंथ भी नागार्जुन रचित है।

८. **रसकच्छपुट ।**

९. **सिद्ध नागार्जुन**—C. P. B. सूची की हस्तलेख संख्या ६४६४ के अंतर्गत इस ग्रंथ का उल्लेख है।

वचन—नागार्जुन के ६ वचन हि० ई० मे०, भाग ३, पृ० ८३३,३४ पर उद्धृत हैं।

योग—नागार्जुन के १६ योग हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ८३४,३५ पर उद्धृत हैं।

इति कविराज सुरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे षोडशोऽध्याय:।

सप्तदश अध्याय

प्रतिसंस्कर्तृ-युग

७५. चरक–विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व

प्रास्ताविक—द्वापर की समाप्ति हो गई। अब मनुष्यों का ज्ञान, स्मृति और आयु किञ्चित् न्यून हुई। मूल ग्रंथों के समझने में परिश्रम पड़ने लगा। उस समय संसार पर कृपा करके अनेक ऋषियों ने मूल तन्त्रों के प्रतिसंस्करण निकाले। ऐसा ही एक प्रतिसंस्करण चरक ने अग्निवेशतन्त्र का किया।

प्रतिसंस्करण का स्वरूप—ब्रह्मा का उपदेश आगम वा आम्नाय था। इन्द्र का उपदेश शास्त्र था। आत्रेय पुनर्वसु और अग्निवेश ने तन्त्र कहे वा लिखे। चरक ने प्रतिसंस्कार करके अग्निवेश तन्त्र की संहिता बनाई। यह संहिता सूत्र, भाष्य तथा संग्रह युक्त है।

चरकसंहिता सि० १२।६३, ६४ में प्रतिसंस्कार का निम्नलिखित लक्षण लिखा है—

विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम्।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम्॥

सूत्र-संग्रह भाष्यात्मिका चरकसंहिता—चरक चि० ३।३२-३५ की जेज्जट व्याख्या से ज्ञात होता है कि यह प्रतिसंस्कृत संहिता सूत्र, संग्रह तथा भाष्यात्मिका है। यथा—

सुप्रणीत-सूत्र-संग्रह-भाष्यं चेदं तन्त्रम्। पृ० ८७६

इसी बात को पृ० ८९३ पर जेज्जट पुन: स्पष्ट करता है—

न केवलं तन्त्रान्तरप्रामाण्याद् अस्माच्च सन्ततसूत्रभाष्यात् प्रतिपादयिष्यति आचार्यः।

चार प्रकार के सूत्र—चरक संहिता सू० १।२ की व्याख्या में चक्रपाणि पुरातन आचार्यों के मतानुसार लिखता है कि चरक संहिता में सूत्र चार प्रकार के हैं। यथा—

चतुर्विधं सूत्रं भवति—गुरुसूत्रं, शिष्यसूत्रं, प्रतिसंस्कर्तृ सूत्रं, एकीय-सूत्रम् च इति ।

प्रतिसंस्कर्तृ-सूत्र का स्वरूप—आचार्य डल्हण सुश्रुतसंहिता सू० १।२ की व्याख्या में प्रतिसंस्कर्तृ-सूत्र का स्वरूप स्पष्ट करता है । यथा—

यत्र-यत्र परोक्षे लिट्प्रयोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृ-सूत्रं ज्ञातव्यम् इति ।

अनुव्याख्यानात्मक भाष्य—चरकसंहिता नि० ६।१ में लिखा है—**अथातः शोषनिदानं व्याख्यास्यामः** । इसके आगे चरकसंहिता नि० ६।४ में लिखा है—

तत्र यदुक्तं साहसं शोषस्यायतनं इति तद् अनुव्याख्यास्यामः ।

नाम—अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता, कृष्णद्वैपायन व्यास के शिष्य वैशम्पायन का अपरनाम चरक था ।

भगवद्दत्त जी का अनुसंधान—संवत् १९८४ में सर्वप्रथम पं० जी ने अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० ७१ पर अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति ४।३।१०४ का निम्नलिखित पाठ उद्धृत किया—

चरक इति वैशम्पायनस्याख्या तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्च चरका इत्युच्यन्ते ।

अर्थात्-वैशम्पायन का ही अपरनाम चरक था । इस सम्बन्ध से उसके सब अन्तेवासी चरक कहे जाते थे ।

पं० जी द्वारा उद्धृत इस प्रमाण से निश्चित होता है कि वैशम्पायन का दूसरा नाम चरक था ।

राजगुरु की अनुमति—संवत् १९९५ में राजगुरु श्री हेमराजजी ने काश्यपसंहिता उपो० पृ० ९५ पर इसी प्रमाण को उद्धृत किया है । इस से उन्होंने भी पूर्व निष्कर्ष ही निकाला है ।

रघुवीरशरण जी का अनुसरण—इसके पश्चात् सं० २००७ मे श्री रघुवीरशरणजी ने भी अपने धन्वन्तरि-परिचय में यही प्रमाण उद्धृत किया ।

वस्तुतः वेदव्यास का शिष्य वैशम्पायन, कृष्ण यजुर्वेद का अध्येता था । वह सर्वशाखाध्यायी अर्थात् कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं का प्रवचनकर्ता था । उसका प्रधान चरण चरक कहाया । उसके सब शिष्य गुरु के नामानुसार चरक हुए । तत्पश्चात् आयुर्वेदीय चरकसंहिता के अध्येता भी चरकाचार्य अथवा चरक कहाए ।

मूल चरक एक—भारतीय इतिहास की परम्परानुसार मूल रूप से चरक नाम एक व्यक्ति का था । तदुपरान्त अन्य व्यक्तियों का गौण नाम चरक हुआ ।

किसी व्यक्ति के गौण नाम पर कोई ग्रंथ प्रसिद्ध हो जाए, यह अन्वेषणीय है। अतः अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता वैशम्पायन ही था, जिसकी आख्या चरक थी।

वैशम्पायन चरक बहुविध वैद्य—वैशम्पायन चरक न केवल नर-वैद्यक का ज्ञाता था, अपितु हस्त्यायुर्वेद तथा अश्वायुर्वेद का भी विशेषज्ञ था। अतः द्वैपायन शिष्य वैशम्पायन चरक ही अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता था।

भारत कथा सुनाते हुए शान्तिपर्व अ० १६ में वैशम्पायन भीमसेन का मत सुनाता है—

शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं च तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥ ११॥

यहां शीत तथा उष्ण से कफ और पित्त का तात्पर्य है। पंजाब में प्रतिश्याय को ठण्ड अर्थात् शीत अब भी कहते हैं। वैशम्पायन इन सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित था। महाभारत में आयुर्वेद-विषयक शतशः श्लोक विद्यमान हैं। भावी लेखकों को वैशम्पायन की रचनाओं में शीत-उष्ण की परिभाषाओं का प्रयोग ढूंढ़ना चाहिए।

इन दोनों विषयों पर लिखे उसके दो ग्रंथ अब भी उपलब्ध हैं। देखो इसी प्रकरण का अगला ग्रंथ शीर्षक।

काल

काल का आरम्भ—वैशम्पायन कृष्णद्वैपायन व्यास का शिष्य था। उसने कलि के आरम्भ में कुरु महाराज जनमेजय को प्रसिद्ध सर्पसत्र में भारत की कथा सुनाई। प्रतीत होता है उन्हीं दिनों वैशम्पायन ने चरकसंहिता का प्रतिसंस्कार किया। यह काल-कलि का आरम्भ था।

चरकसंहिता का अन्तःसाक्ष्य—चरकसंहिता शा० ६।२६ के वचन से स्पष्ट होता है कि चरकसंहिता का प्रतिसंस्कार कलि के आरम्भ में हुआ। यथा—

वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले।

अर्थात्—इस [कलि] काल में [मानव] आयु-परिमाण सौ वर्ष है। चरक के अनुसार यह परिमाण कलि के आरम्भ में होता है। तत्पश्चात् यह कुछ-कुछ न्यून होता जाता है।

चरक, ऋषि—अधिसीमकृष्ण के काल में नैमिषारण्य में दीर्घसत्र हुआ। उस समय ऋषि विद्यमान थे। तत्पश्चात् ऋषियुग शनैः शनैः समाप्त हुआ। यह गति कलि के ३००-४०० वर्ष व्यतीत होने तक थी।

वैशम्पायन चरक भी ऋषि था। अतः उसका भी वही काल है।

चरक का ऋषित्व वाग्भट सम्मत—आयुर्वेद-शास्त्रनिष्णात्, आयुर्वेदीय आचार्य-परम्परा से पूर्ण परिचित, बौद्ध आचार्य वाग्भट चरक को ऋषि मानता था। यथा—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

फलतः ऋषि होने से चरक कलि के प्रारम्भ में हुआ। यदि ऋषि चरक ही बौद्ध कनिष्क का वैद्य चरक होता तो बौद्ध आचार्य वाग्भट उसे ऋषि न लिखता।

अलबेरूनी का साक्ष्य—आज से ९०० वर्ष पूर्व होने वाले तथा किञ्चित् भारतीय शिक्षा प्राप्त करने वाले मुसलमान यात्री अलबेरूनी के समय तक भारतीय इतिहास में यह परम्परा सुरक्षित थी कि चरक ऋषि था तथा वह गत द्वापर में हुआ। अलबेरूनी के यात्रावृत्त के ज़खाउ कृत अंग्रेजी अनुवाद में भाग १, पृ० १५९ पर लिखा है—

According to their belief, Caraka was a Rishi in the last Dvapara-yuga, when his name was Agnivesha, but afterwards he was called Caraka.

यद्यपि इस भाव में कुछ भ्रान्ति है तथापि यह निश्चित है कि चरक ऋषि था। सम्भवतः यहां अनुवादक ने अलबेरूनी का अभिप्राय न समझा हो। परन्तु पूर्व प्रमाणों से इतना निर्विवाद है कि अग्निवेश-तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक कलियुग के आरम्भ में हुआ।

चरक-काल-विषयक आधुनिक भ्रान्ति का कारण

सिल्वेन लेवी द्वारा प्रस्तावित-काल—फ्रांस के प्रो० सिल्वेन लेवी ने युर्नल एशियाटीक संख्या ३२, सन् १८९६, पृ० ४४७-५१ पर चीनी ग्रन्थ "Tsa Tao Ching" (संयुक्त रत्नपिटक सूत्र ?) के पाठ से यह अनुमान किया कि अग्निवेश तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक कनिष्क की राजसभा का वैद्य चरक था।

रे कृत खण्डन—सन् १९०४ में प्रफुल्लचन्द्र जी रे ने हि० हि० कैमिस्टरी, भाग १, भूमिका पृ० १५ पर लेवी के इस मत का बलपूर्वक खण्डन किया है। यथा—

प्रथम युक्ति—We confess we are by no means convinced by M. Levi's theory. If we are to go by name alone we can claim a still higher antiquity for our

author..........in short Panini felt it necessary to compose a special Sutra.........

अर्थात्––हम सिल्वन लेवी के मत से सर्वथा सहमत नहीं। यदि केवल नाम [ऐक्य] का विचार हो तो...लेखक चरक पर्याप्त प्राचीन है। पाणिनि ने भी उसके लिए विशेष सूत्र बनाना आवश्यक समझा।

वस्तुतः पाणिनि के सूत्र कठचरकाल्लुक[1] से स्पष्ट है कि चरक वैयाकरण पाणिनि का पूर्ववर्ती था। इसके विपरीत महाराज कनिष्क पाणिनि का पर्याप्त उत्तरवर्ती था। अतः अग्निवेश-तन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता चरक को कनिष्क की राज-सभा का वैद्य चरक नहीं माना जा सकता।

दूसरी युक्ति––इसके आगे के रे के लेख से ज्ञात होता है कि चक्रपाणि-दत्त तथा योगवार्तिक के कर्ता भोज के अनुसार चरकसंहिता का एक प्रति-संस्कर्ता पतञ्जलि था। अतः अग्निवेश तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक बौद्ध वैद्य चरक से जो पतञ्जलि का उत्तरवर्ती था, बहुत पूर्व हुआ।

योरोपियन आघात––आचार्य रे के इस खण्डन के पश्चात् भी विदेशी इतिहास-लेखकों ने जान-बूझ कर लेवी की भ्रान्त-कल्पना को भारतीय इति-हास के माथे मढ़ा।

सन् १९०७ में हर्नलि ने आस्टिओलोजी की भूमिका पृ० ९ पर लिखा—

According to a Budhist tradition Charaka was the trusted physician of the celebrated 'Indo Scythian' king Kanishka. Unfortunately the date of Kanishka himself is still in dispute, opinions varying from the first century B. C. to the third century A. D.

अर्थात्—एक बौद्ध परम्परानुसार चरक उत्तर भारत के तुरुष्क राज कनिष्क की सभा का विश्वस्त वैद्य था। दुर्भाग्य से कनिष्क की तिथि अनि-श्चित है। यह ईसा पूर्व प्रथम शती से ईस्वी सन् की तीसरी शती तक मानी जाती है। इति।

रे के खण्डन की सर्वथा उपेक्षा कर हर्नलि ने लेवी की कल्पना को सत्य मान कनिष्क से पर्याप्त पूर्ववर्ती अग्निवेश-तन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता आचार्य चरक को कनिष्क का समकालिक ठहरा दिया।

इसके पश्चात् अनेक विदेशी तथा भारतीय इतिहास-लेखक आंख मूंद कर

---

१. ४। ३। १०७॥

सिल्वेन लेवी के अनुमान को सत्य मानते रहे।

गिरिन्द्रनाथ कृत पाश्चात्य मत खण्डन—सन् १९११ में नाथ जी ने एक लेख लिखा। यह लेख सन् १९२९ में हि० इ० मे० भाग तीन के रूप में ग्रन्थाकार मुद्रित हुआ। उसमें योरोपियन युक्तियों का सहेतुक खण्डन है।

राजगुरुजी द्वारा इस भ्रान्त मत का खण्डन—सन् १९३८ में राजगुरु श्री हेमराज जी ने काश्यपसंहिता उपो० पृ० ९६, ९७ पर अनेक प्रबल युक्तियों से लेवी के अनुमान का खण्डन किया। यथा—

तन्त्रप्रतिसंस्कर्तुश्चरकस्यैव कनिष्कराजकुलवैद्यत्वोल्लेखे प्रामाण्य-विषये मतविभेदोऽस्ति।

अल्तेकर जी का योरोपियन अनुकरण—सन् १९४६ में श्री सदाशिव अल्तेकर ने लेवी के भ्रान्त मत का अनुसरण करते हुए, ए न्यू हिस्टरी ऑफ दि इण्डियन पीपल, भाग ६, पृ० ४१९ पर चरकसंहिता की तिथि ईसा की दूसरी शती के अन्त में मानी है। यथा—

The Charaka-Samhita and the Sushruta-Samhita, which had practically assumed their present form towards the end of the 2nd century A. D.

वस्तुतः विदेशी गुरुओं के इस अनुकरण से अनेक वर्तमान भारतीय इतिहास-लेखकों ने भारतीय इतिहास के वास्तविक तिथिक्रम पर हड़ताल फेर दी है। इससे बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है।

अल्तेकर आदि पर पाश्चात्यों का आतंक—अध्यापक अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने State and Government in Ancient India (प्राचीन भारत में राष्ट्र और शासन) नामक एक ग्रन्थ सन् १९४९ में अंग्रेजी में लिखा। उसके पृ० १९ तथा २५४ पर उन्होंने ऋग्वेद का काल ईसा पूर्व लगभग २५०० वर्ष लिखा। ऋग्वेद की यह कल्पित-तिथि अत्यन्त अर्वाचीन तथा भारतीय इतिहास के वास्तविक तिथि-क्रम-वेत्ता विद्वानों को अमान्य है। पाश्चात्यों की कल्पित-तिथि की अपेक्षा कुछ प्राचीन होने से अल्तेकर जी की कल्पित-तिथि पाश्चात्यों को चुभी। अल्तेकर जी के ग्रन्थ की आलोचना करते हुए कोई पाश्चात्य अध्यापक A. L. Basham लिखता है—

Few European scholars would agree with professor Altekar (p. 19) that the Rigveda dates from 2500 B.C.[1]

---

1. J. R. A. S. 1950 A. D., parts 3. 4., p. 202.

अर्थात्—ऋग्वेद की तिथि ईसा पूर्व २५०० वर्ष है। अल्तेकर के इस मत से योरुप के संस्कृताध्यापक सहमत नहीं होंगे।

अध्यापक अल्तेकर बदला—अध्यापक बाशम के विचार कई क्षेत्रों से अल्तेकर जी तक पहुंचे। देहली में ७ नवम्बर १९५० को एक सभा जुटी। उसमें ऋग्वेद आदि के काल पर विचार प्रकट किए गए। अल्तेकर जी आर० सी० मजुमदार जी के साथ सहमत हुए। ऋग्वेद का काल ईसापूर्व २००० से १५०० वर्ष मान लिया गया।[1]

तत्पथानुगामी विमलचरण ला—सन् १९४७ में श्री विमलचरण ला ने अपनी पुस्तक 'अश्वघोष' के पृ० ५ पर लेवी के भ्रान्त मत पर विश्वास करके उसे ऐतिहासिक तथ्य का रूप देना चाहा है। यथा—

And on the strength of the tradition in the Chinese 'Tsa pao tsang ching' (संयुक्त रत्नपिटक सूत्र ?) the court of king Kanishka is believed to have been adorned by three wise men,.........an experienced physician called Caraka, who was the well-known author of the Caraka Samhita.

अर्थात्—चीनी परम्परा के बल पर यह विश्वास किया है कि कनिष्क की सभा तीन बुद्धिमान् मनुष्यों से सुशोभित थी।......वहाँ एक अनुभवी वैद्य चरक था, जो प्रसिद्ध चरक-संहिता का कर्ता था।

वस्तुतः इतिहास की वास्तविक परम्परा से अनभिज्ञ लेखक ही विश्वासों के आधार पर ऐतिहासिक तिथियों का निर्णय करते हैं।

फिलियोज़ट का सार्थक कथन—फ्रांस के अध्यापक फिलियोज़ट ने अपने ग्रन्थ में लेवी के अनुमान को ठीक नहीं माना।

अभारतीय मत के खण्डन में दो प्रबल हेतु

प्रथम हेतु—सिल्वेन लेवी, हर्नलि, अल्तेकर और ला जी ने चिकित्सा का ज्ञान उपलब्ध करने की दृष्टि से चरक-संहिता कभी नहीं पढ़ी, यह निश्चित है। अनुभवी वैद्य जानते हैं, चरक-संहितान्तर्गत सेव्य औषध की मात्रा वर्तमान मात्रा की अपेक्षा कहीं अधिक है। जिन अर्वाचीन ग्रन्थकारों ने चरक आदि के योग

---

१. Proceedings of the National Institute of Sciences of India, vol. XVIII, No. 4, 1952. Symposium on History of Sciences in South Asia, p. 331.

संगृहीत किए हैं, उन्होंने मूल में चरक आदि की मात्राएँ रहने दी हैं परन्तु यत्र-तत्र वर्तमान समयोपयोगी मात्राओं का भी संकेत कर दिया है। चिकित्सा-कलिका के सम्पादक, लाहौर निवासी, परलोकगत बाबू नरेन्द्रनाथ मित्र जी ने इसी दृष्टि से कलिका के अनेक पाठ ही बदल दिए हैं। चरक-प्रदर्शित मात्राएं उस काल की हैं, जब मनुष्यों की शारीरिक शक्ति बहुत अधिक थी। वह काल दूसरी शती ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व था। अतः चरक-संहिता का काल कनिष्क का काल कदापि नहीं।

द्वितीय हेतु—अगले अध्याय से ज्ञात हो जाएगा कि भट्टार हरिश्चन्द्र संवत्-प्रवर्तक विक्रम की प्रथम शती में जीवित था। उसने चरक-संहिता के दृढ़बल-प्रतिपूरित भाग पर भी व्याख्या की। दृढ़बल चरक का उत्तरवर्ती है, क्योंकि उसने चरक-संहिता के अपूरित भाग को पूरित किया।

पं० भगवद्दत्त जी का लेख—सन् १९४० में पं० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास पृ० १७२ पर हर्नलि आदि की इस भूल का सबल युक्ति से खण्डन किया परन्तु अल्तेकर तथा ला जी ने ऐसे प्रबल प्रमाणों का खण्डन किए बिना सन् १९४६ में विदेशी गुरुओं के कल्पित-मत का अनुसरण किया। इससे ज्ञात होता है कि उनका अध्ययन अत्यल्प है।

दृढ़बल विक्रम संवत् के आरम्भ से कई शती पूर्व हो चुका था। फलतः चरक का काल अति पुराना है, तथा पाश्चात्यों ने भारतीय ऐतिहासिक तिथि-क्रम को बिगाड़ने की दृष्टि से वृथा कल्पना की है।

७६. पतञ्जलि

पतञ्जलि का इतिवृत्त पूर्व पृ० २७८ पर लिखा गया है। पतञ्जलि ने भी चरक-संहिता का किंचित् संस्कार किया। भोजराज के योगवार्तिक, चक्रपाणिदत्त की चरक टीका तथा नागेश की लघुमञ्जूषा से ज्ञात होता है कि पतंजलि ने चरक-संहिता का संस्कार किया। इस संस्कार का अति स्पष्ट रूप महाराज समुद्रगुप्त रचित कृष्ण चरित[1] में मिलता है। यथा—

पतञ्जलिमुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा ॥१९॥
कृतं येन व्याकरणभाष्यं वचनशोधनम् ॥
धर्मावियुक्ताश्चरके योगा रोगमुषः कृताः ॥२०॥
महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम् ॥
योगव्याख्यानभूतं तद्रचितं चित्तदोषहम् ॥२१॥

---

१. पाश्चात्य मतानुयायी इस ग्रन्थ को कूट बताते हैं। पं० भगवद्दत्त जी ने उनका खण्डन भा०वर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ०३५३ पर किया है।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट है कि—मुनिवर पतंजलि ने चरक में कुछ योग जोड़े। अतः चरक-संहिता पतंजलि से पूर्व विद्यमान थी।

वृद्धजीवकीय–तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता

७५. वात्स्य

वंश—काश्यप संहिता कल्पस्थान पृ० १६१ पर लिखा है कि वृद्धजीवकीय-तन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता वात्स्य वृद्धजीवक–वंशोत्पन्न था। यथा—

ततः कलियुगे नष्टं तन्त्रमेतद्यदृच्छया ॥२४॥
अनायासेन यक्षेण धारितं लोकभूतये ।
वृद्धजीवकवंश्येन ततो वात्स्येन धीमता ॥२५॥
अनायासं प्रसाद्याथ लब्धं तन्त्रमिदं महत् ।

अर्थात्—कलियुग में अकस्मात् नष्ट हुआ यह तन्त्र **अनायास यक्ष** ने लोककल्याण के लिए सुरक्षित रखा। फिर वृद्धजीवक के वंश में होने वाले **बुद्धिमान् वात्स्य** ने अनायास यक्ष से यह तन्त्र प्राप्त किया।

स्पष्ट है कि वात्स्य वृद्धजीवक का वंशज था। पूर्व पृ० १२८ पर जीवक का वंशवृक्ष लिख चुके हैं। उससे स्पष्ट है कि जीवक भृगुवंशी था। अतः वात्स्य भी भृगुवंशी था। इस वंश के मूलपुरुष का नाम वत्स था। इस वंश का कुछ वृत्त बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है।

महाभारत शान्तिपर्व ४७।५ में एक वात्स्य का उल्लेख है। वह व्यास आदि के साथ भीष्मजी का उपदेश सुन रहा था।

प्रतिसंस्कर्ता—काश्यपसंहिता के पूर्व उद्‌धृत श्लोक के अगले भाग से स्पष्ट है कि वात्स्य वृद्धजीवकीयतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता था। तदनुसार इस संहिता का परम्परा-वृक्ष निम्नलिखित है—

कश्यप प्रजापति
|
जीवक = वृद्धजीवक
|
अनायास यक्ष
|
वात्स्य भार्गव

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे सप्तदशोऽध्यायः।

अष्टादश अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थ-प्रवक्ताओं और आयुर्वेद-कर्ताओं का अभेद

भारतीय इतिहास की रक्षा में आयुर्वेदेतिहास का परम साहाय्य है। हम पूर्व पृष्ठों में लिख चुके हैं कि आयुर्वेद के अनेक कर्ता ही वेदमन्त्रों के द्रष्टा तथा ब्राह्मणग्रंथों के प्रवक्ता थे।

चरकसंहिता के अनुसार इन्द्र से मिलने वाले भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषि ब्रह्मवित्, ज्ञानधन तथा ब्रह्मर्षि अर्थात् मन्त्रों के द्रष्टा तथा ब्राह्मणों के प्रवक्ता थे। उन ऋषियों ने ही इन्द्र, से उपदेश लेकर आयुर्वेद शास्त्र रचे। उनके शास्त्रों के अनेक वचन आज भी याथातथ्येन उपलब्ध होते हैं। ये वचन लोक-भाषा में हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिन ऋषियों ने लोक-भाषा में आयुर्वेद-शास्त्र रचे, उन्हीं ऋषियों के प्रोक्त अनेक ब्राह्मण ग्रंथ थे।

इन्द्र ने इन्हीं ऋषियों को ब्राह्मण भी दिए। इन्द्र स्वयं ब्राह्मण ग्रंथों का प्रवक्ता तथा आयुर्वेदादि शास्त्रों का रचयिता था। इस सत्य ऐतिहासिक तथ्य को जानते हुए वात्स्यायन मुनि ने न्यायशास्त्र २।२।६७ तथा ४।१।६२ के भाष्य में क्रमशः लिखा––

क—य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनाम्। इति।[1] इति।

ख—य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहास-पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य च। इति।[1] इति।

अर्थात्—जो आप्त पुरुष वेदार्थ के द्रष्टा तथा ब्राह्मण प्रवक्ता थे, वे ही आयुर्वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि के रचयिता थे। पाणिनि आदि मुनि भी इसी आर्य-सिद्धान्त को मानते थे।

पाश्चात्य-मत––पूर्वलिखित ऐतिहासिक तथ्य भारत में कभी विस्मृत नहीं हुआ। परन्तु अंग्रेजी राज्य के काल में ईसाई और यहूदी लेखकों ने

---

१. ये वचन वात्स्यायन ने किसी पुरातन आचार्य से लिए हैं।

प्रच्छन्न-भावनाओं के कारण इस सत्य पर कुठाराघात किया। भारतीय इतिहास की प्राचीनता को नष्ट करने के लिए मैक्समूलर आदि महापक्षपाती जर्मन लेखकों ने एक मत कल्पित किया कि आयुर्वेद तथा रामायण, महाभारत आदि इतिहास-ग्रंथ ब्राह्मण-ग्रंथों से सैकड़ों वर्ष पश्चात् बने। इस कल्पना के फलस्वरूप भारतीय-इतिहास का निम्नलिखित काल-विभाग बनाया गया।

मन्त्रकाल, ब्राह्मण काल, सूत्रकाल तथा रामायण, महाभारत काल।

इस कल्पित काल-विभाग से यह सिद्ध करने का यत्न किया गया कि यदि कोई ऋषि ब्राह्मणप्रवक्ता था और उसी का रचा आयुर्वेद-धर्मशास्त्रादि का कोई ग्रंथ था, तो कहा गया कि इस नाम के दो व्यक्ति थे, अथवा वे लोग मिथिकल थे, अथवा ब्राह्मणप्रवक्ता के नाम से किसी अन्य ने ऐसा ग्रंथ प्रसिद्ध कर दिया था।

ब्राह्मण का लक्षण – पाश्चात्य लेखकों ने ब्राह्मण का स्वरूप नहीं समझा। इसी कारण ब्राह्मण-ग्रन्थों की भाषा तथा शैली विषय में वे यथार्थ ज्ञान उपलब्ध नहीं कर पाए। यदि वे कर पाए, तो उन्होंने जान बूझकर मिथ्या मत के प्रचार के लिए उलटा मार्ग पकड़ा। वायुपुराण (विक्रम से २७०० वर्ष पूर्व) अध्याय ५९।१३२-१४१ तक ब्राह्मण का प्राचीन लक्षण सव्याख्य उद्धृत है। यथा—

लक्षणं ब्राह्मणस्यैतद् विहितं सर्वशाखिनाम् ॥१३२॥

अर्थात्—ब्राह्मण का यह लक्षण सम्पूर्ण वेद-शाखाओं के ब्राह्मणों पर लागू होता है।

इस लक्षण के अनुसार ब्राह्मणों में दस विधियां अथवा उपदेश के प्रकार हैं। यथा—

१. हेतु। २. निर्वचन। ३. निन्दा। ४. प्रशंसा। ५. संशय। ६. विधि। ७. परक्रिया। ८. पुराकल्प। ९. व्यवधारण कल्पना। १०. उपमान।

इनमें से उपमान के विषय में वायुपुराण में अति सुन्दर व्याख्या है। यथा—

यथा हीदं तथा तद्वै इदं वापि तथैव तत्।
इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥१३९॥

इन कारणों से ब्राह्मणों की शैली और भाषा में—यथा हीदं, तथा तद्वै आदि प्रयोग अत्यधिक हो गए हैं। तथा ब्रह्मणोऽवनात् ।१४१, अर्थात् ब्रह्मा, अथवा वेद का प्राण होने से उनमें कुछ मन्त्रगत नाम तथा क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हैं। परन्तु हैं ये ब्राह्मण ग्रन्थ उन्हीं ऋषियों की रचना, जिन्होंने विद्याओं के

अन्य अनेक ग्रन्थ, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और आयुर्वेद आदि रचे।

मीमांसा भाष्यकार शबर स्वामी (प्रथम शती विक्रम) जैमिनीय न्याय-माला सूत्र २।३२ के भाष्य में प्राचीन वृत्तिकार (उपवर्ष अथवा बोधायन) का एतद्विषयक व्याख्यान उद्धृत करता है—

वृत्तिकारस्तु शिष्यहितार्थं प्रपञ्चितवान्-इतिकरणबहुलम्।...
हेतु निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः। इत्यादि।

वायुपुराण-गत श्लोकों और वृत्तिगत श्लोकों के पाठ का पूरा साम्य है। संभवतः वायुपुराण के संकलन-कर्ता सूत ने यह पाठ वृत्ति से लिया है, अथवा दोनों ने यह पाठ पुराने ग्रन्थों से लिया है।

ब्राह्मणों में इन ग्रन्थों का उल्लेख—शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।८ का वचन है—

यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यम् इतिहासपुराणं गाथा......।

तथा शतपथ १४।६।१०।६ का वचन है—

इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि-अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ......।

यहां ब्राह्मण ग्रन्थों के ऐसे पाठों की विस्तृत व्याख्या का स्थान नहीं है। शतपथान्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् के अंग्रेजी अनुवादक मैक्समूलर, ऐगलिङ्ग, ह्यूम आदि तथा राधाकुमुद मुकर्जि आदि एतद्देशीय लेखक इन ब्राह्मण वचनों का यत्किञ्चित अर्थ भी समझ नहीं सके। इसी कारण इनमें से मैक्स-मूलर ने इनका अर्थ ही नहीं किया। विशाल संस्कृत वाङ्मय के व्यापक अध्ययन के बिना यह बात थी भी असंभव।

हम आगे इन वचनों के कुछ एक आवश्यक पदों का अति संक्षिप्त अर्थ करते हैं। उससे हमारे पक्ष की सत्यता स्वयं स्पष्ट हो जायगी।

१. **अनुशासन**—इस शब्द से वे सब ग्रन्थ अभिप्रेत हैं, जो अनुशासन रूप में शतपथ के काल के पूर्ववर्ती ऋषियों ने रचे। यथा—

(क) इति ह स्माह भगवान् शालिहोत्रोऽनुशासनम्।[1]
(ख) अथ शब्दानुशासनम्।
(ग) अथ योगानुशासनम्।

---

१. देखो, श्री पण्डित भगवद्दत्त जी का लेख, अश्वशास्त्र, हयवेद। वेद-वाणी, मार्गशीर्ष विक्रम २००८, पृ० ११।

(घ) अपह्नुते तद् द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् । मनु ८।१३६॥

अनुशासन शैली पर रचे ग्रन्थ अनेक शास्त्र भी थे। अतः शतपथ से पूर्व, शालिहोत्र, भरद्वाजीय व्याकरण और मानवधर्मशास्त्र आदि अनुशासन ग्रन्थ थे।

२. विद्या—वाजसनेय शतपथ के प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य ने स्वरचित स्मृति में चौदह विद्याएं गिनाई हैं। कहीं-कहीं विद्याएं अठारह कही हैं। इस शब्द के अन्तर्गत वे सब विद्याएँ समझनी चाहिएँ। इनमें अनेक धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा और वेदाङ्ग आदि सम्मिलित हैं।

३. सूत्राणि—इस शब्द के अन्तर्गत आयुर्वेद, ज्योतिष और अर्थशास्त्र आदि समझे जाते हैं। यथा—

(क) आयुर्वेद ग्रन्थों में सूत्र, संग्रह और भाष्य मिलते हैं। पूर्व पृष्ठ २८६ पर यह बात स्पष्ट की गई है।

(ख) अर्थशास्त्र के ग्रन्थ भी सूत्र ग्रन्थ थे। आचार्य कौटल्य अपने अर्थशास्त्र के अन्त में लिखता है—

स्वयमेव विष्णुगुप्तः चकार सूत्रं च भाष्यं च।

अर्थात्—कौटल्य विष्णुगुप्त ने स्वयं ही सूत्र रचे और उन पर अपना भाष्य किया।

(ग) महाभारत, सभापर्व ५।१०६, ११० में हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र, धनुर्वेद सूत्र और यन्त्रसूत्रों का उल्लेख है।

ये सब ग्रन्थ भी सूत्राणि पद से अभिप्रेत हैं।

(घ) ज्योतिष-विषयक पराशर संहिता में लिखा है—

यत्सूत्रमुक्तं भगवता युद्धम् इति।[1]

इससे निश्चित होता है कि अनेक ज्योतिष ग्रन्थ भी सूत्राणि पद से अभिप्रेत हैं।

राधाकुमुद का अधूरा अर्थ—श्री राधाकुमुद मुखोपाध्याय लिखते हैं—

"Sutra (or prose formulae) used in the Brhd. Up. in the sense of a work of rules for the guidance of sacrifices and other ritual."

अर्थात्—सूत्राणि का अर्थ है—बृ० उप० २।३।१०॥ ४।१।६ तथा ४।५।११ में वर्णित यज्ञों के नियमों के प्रदर्शक ग्रन्थ।

---

१. अद्भुतसागर, पृ० २०८ पर उद्धृत।

इस अर्थ की अपेक्षा मुखोपाध्याय जी यदि कल्पसूत्र अर्थ करते, तो कुछ ठीक होता। पर उनका prose formulae अर्थ सर्वथा अस्पष्ट है।

४. **व्याख्यानानि**—इस शब्दान्तर्गत वे ग्रन्थ हैं, जो ग्रन्थारम्भ में **व्याख्यास्यामः** का प्रयोग करते हैं।

५. **अनुव्याख्यानानि—अनुव्याख्यास्यामः** की शैली पर रचे ग्रन्थ।

अतएव जब ब्राह्मण स्वयं अपने से पूर्वकाल का इतना साहित्य मानते हैं, तो मैक्समूलर, कीथ और विण्टर्निट्ज के पक्षपात पूर्ण लेखों का क्या मूल्य है।

वात्स्यायन प्रामाण्य—अतः वात्स्यायन मुनि का लेख सर्वथा सत्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवक्ता ही आयुर्वेद के रचयिता थे। वात्स्यायन का पूर्ववर्ती अक्षपाद-गौतम जो द्वापर के अन्त में जीवित था, स्वयं इस बात का संकेत अपने न्याय सूत्र में करता है।

वात्स्यायन का काल—पाश्चात्य लेखकों ने वात्स्यायन का काल ईसा की चतुर्थ शती माना है। यह उपहास की बात है। हम नागार्जुन के काल-विषय में पहले पृ०२८० पर लिख चुके हैं। नागार्जुन अपने ग्रन्थों में वात्स्यायन के अनेक वचन उद्धृत करता है। अतः वात्स्यायन नागार्जुन का पूर्ववर्ती ठहरता है। हमारा विचार है कि वात्स्यायन विक्रम-संवत् से कई शताब्दी पूर्व का आचार्य था। इतने प्राचीन आचार्यों के स्वीकृत ऐतिहासिक तथ्य को मैक्समूलर के कल्पित-मत के कारण त्यागा जाए, यह विद्वानों को शोभा नहीं देता।

अतः हमारे इस इतिहास में पुराने ऋषियों के वैदिक, लौकिक आदि अनेक विषयों पर रचे ग्रन्थों का जो वर्णन है, वह सत्य इतिहास का स्वल्प-प्रकाशन है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे प्रथमो भागः समाप्तः

परिशिष्ट

१. हरिचन्द्र भट्टार।
|
२. अङ्गिरि, हिमदत्त (भीमदत्त ? भासदत्त ? भगदत्त ?), स्वामिदास, क्षीरस्वामिदत्त (=चरक वार्तिककार)
|
३. आषाढ़ वर्मा, सुवीर, सुकीर, सुधीर, नन्दि, वराह, बेल्लदेव। अमितप्रभ (चरक न्यास-कार)
|
४. वाग्भट, अच्युत (आयुर्वेदसार कर्ता)
|
५. जेज्जट, तीसट, अमृतमाला।

६. रविगुप्त, चन्द्रट (योगरत्न समुच्चय-कर्ता)

७. ईश्वरसेन (सं० ५७० से पूर्व) चरक सं०-व्याख्याता। धर्मकीर्ति का गुरु।

८. ईशानदेव (=ईशान चन्द्र) (सं० ७५०)

९. गयदास (पंजिका-कार), भास्कर (महापञ्जिका-कार), माधवकर (सुश्रुत टिप्पनकार)

१०. कार्तिक कुण्ड

११. ब्रह्मदेव, गदाधर, वृन्द, जिनदास (कर्मदण्डी-कर्ता)।

१२. चन्द्रनन्दन (संवत् १०००) पदार्थ-चन्द्रिका-कार। गोवर्धन (योगशत व्याख्या कर्म-माला), नरदेव=नरदत्त।

१३. चक्रपाणि, विजयरक्षित (संवत् ११०० के समीप), बकुल-कर, त्रिलोचन।

१४. श्रीकण्ठदत्त, निश्चल-कर (संवत् ११७०)

१५. अरुणदत्त

१६. डल्हण

१७. गुणाकर, श्वेताम्बर जैन (संवत् १२९६) नागार्जुन कृत योगमाला का टीकाकार, वोपदेव–पिता केशव।

१८. हेमाद्रि (संवत् १३२०), वोपदेव।

१९. शिवदास (संवत् १५५०)

२०. नारायण

यह वृक्ष संख्या ४–२० तक सुदृढ़ प्रमाणों पर आश्रित है। संख्या २, ३ के अन्तर्गत नामों का क्रम अधिक सामग्री मिलने पर ठीक निश्चित हो सकेगा। संख्या १ का भट्टार हरिश्चन्द्र प्रथम शती विक्रम का ग्रन्थकार था। दृढ़बल आदि उस से बहुत पूर्व हो चुके थे। इस वृक्ष के सब उपयोगी प्रमाण भाग द्वितीय में उपस्थित किए जाएँगे। अत्यावश्यक समझ कर इस मूल अन्वेषण को यहीं दे दिया है।